श्री श्री गौरगधाधरो विजयेताम्

# श्रीसाधनदीपिका

श्रीमद्राधाकृष्णगोस्वामिपाद विचरिता
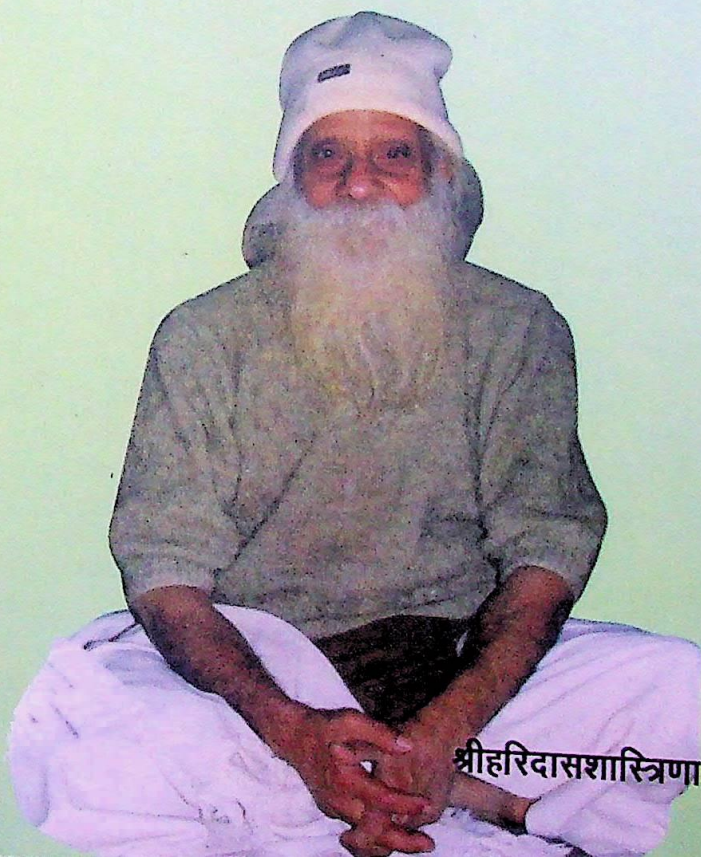
श्रीहरिदासशास्त्रिणा सम्पादिता

※ श्रीश्रीगौरगदाधरौ विजयेताम् ※

# श्रीसाधनदीपिका

श्रीमद् राधाकृष्ण गोस्वामिपाद विरचिता

## साच

श्रीवृन्दाबनधामवास्तव्येन

न्याय-वैशेषिकशास्त्रि, न्यायाचार्य, काव्य, व्याकरण,

सांख्य, मीमांसा वेदान्त, तर्क, तर्क, तर्क,

वैष्णवदर्शनतीर्थ, विद्यारत्नाद्युपाध्यलङ्कृतेन

श्रीहरिदासशास्त्रिणा सम्पादिता।

सद्ग्रन्थप्रकाशक :—

श्रीगदाधरगौरहरि प्रेस

श्रीहरिदास निवास, कालीदह।

पो०—वृन्दाबन, जिला—मथुरा। (उत्तर प्रदेश)

॥ श्रीश्रीगौरगदाधरौ विजयेताम् ॥

# विज्ञप्तिः

श्रीश्रीराधागोविन्ददेवसेवाधिपति श्रीहरिदासगोस्वामीचरणानुजीवि श्रीराधाकृष्णदास रचित 'साधन दीपिका' प्रकाशित हुआ। ग्रन्थकार स्वरचित दशश्लोकीभाष्यग्रन्थ में स्वारसिकी भजनपरिपाटि का प्रदर्शन विशेष रूप से किए हैं। मन्त्रमयी उपासना का प्रसङ्ग प्राप्त उस में न होने से ही साधनदीपिका नामक प्रस्तुत ग्रन्थ में उक्त विषय की ही वर्णना मुख्य रूप से किए हैं। इस में दशकक्षा ( अध्याय है। स्वारसिकी मन्त्रमयी उपासना का प्रसङ्ग श्रीकृष्ण सन्दर्भ के १५३--१५४ अनुच्छेद में है, नानालीला प्रवाहरूपतया स्वारसिकी गङ्गेव। एकैक लीलात्मकतया मन्त्रोपासनामयी तु लब्ध तत् सम्भव ह्रद श्रेणिरिव ज्ञेया। गङ्गा प्रवाह की भाँति निरवच्छिन्न नाना लीला प्रवाह को स्वारसिकी कहते हैं, उस प्रवाह से ही उत्पन्न ह्रदश्रेणि की भाँति एक एक लीला का नाम मन्त्रमयी है। स्वारसिकी मन्त्रमयी उपासना का यथार्थ समाधान इस ग्रन्थ में है।

श्रीमद् गोविन्ददेव--सेवाधिकारी श्रीश्री गदाधर पण्डित गोस्वामी के अनुशिष्य सुप्रसिद्ध श्रील हरिदास पण्डित के शिष्य रूप में ग्रन्थकार श्री-राधा गोविन्द देव की सेवा में नियुक्त थे, अतः प्रात्यहिक एवं वार्षिक सेवा की रीतिनीति का दर्शन आचरण से जो विशेष अभिज्ञता हुई, प्रस्तुत ग्रन्थ में उसका ही सुविशद वर्णन आपने किया हैं।

श्रीराधाकृष्ण मन्त्रोपासना के लिए विविध मन्त्रोद्धार एवं स्तव कवच प्रभृति के समावेश से प्रस्तुत ग्रन्थ की प्रयोजनीयता वृद्धि हुई है।

श्रीगौर लीला की उपासना में भी श्रीगदाधर पण्डित गोस्वामी पाद के आनुगत्य से भजन का ही सर्वश्रेष्ठत्व प्रतिपादन के द्वारा इस ग्रन्थ का स्वारस्य भी सुप्रकाशित हुआ है।

रागानुगा भजन धारा में परकीया की श्रेष्ठता प्रदर्शन पूर्वक श्रीरूपानुगत भक्त वृन्द के तात्पर्य का विशद वर्णन आपने किया है, प्रसङ्ग क्रम से श्रीजीव चरण के स्वकीया वर्णन में परेच्छा प्रणोदितत्व का प्रदर्शन हुआ है। अतएव इस ग्रन्थ की आलोचना से श्रीगौर गोविन्द उपासकों का विशेष उपकार होगा। प्राचीन इतिहास पर्यालोचकों की गवेषणा के लिए पर्य्याप्त विषय इस में अन्तर्निहित है।

इस ग्रन्थ का नामोल्लेख श्रीनरहरि चक्रवर्त्ती विरचित भक्तिरत्नाकर ग्रन्थ के २।४२२-३२, ४४४-५, ४५१-३, ४७८, ४।२८९-९०, ३२७-९, ६।८५-६, ९२-४, २८७-७, २९०, ४४८, १३।३१५-१६ में है, अतः सप्तदश शकाब्दा में इस का प्रचार अत्यधिक था।

❋❋ श्रीश्रीगौरगदाधरौ जयतः ❋❋

❋❋❋❋

# सूची-पत्र

❋❋❋❋

त्रैलोक्य मङ्गल कवच, ध्यानादि, स्मरण मङ्गल । पृ०—४८–७०

**पञ्चम कक्षा**—श्रीवृन्दावन माहात्म्य, वृहद्ध्यान, पद्मपुराणीय वृन्दावनवर्णना, आथर्वण पुरुषबोधिनी मेंवृन्दावन वर्णना पृ०-७१-९५

**षष्ठ कक्षा** श्रीराधा की प्राकट्य कथा, उनके प्रेमोत्कर्षादि, अष्टोत्तर शतनाम–मन्त्रादि गोपेश्वरी साधन, पञ्चवाणेश्वरी मन्त्रादि दीपदान विधि । कृपाकटाक्ष स्तोत्र त्रैलोक्य विक्रम कवच, कर चरण चिह्नादि आभरणादि । पृ०–९६–१२५

**सप्तम कक्षा**—श्रीगदाधर पण्डित गोस्वामि पाद के आनुगत्य से श्रीगौर भजन को सर्वोत्कृष्टता की वर्णना, प्रसङ्ग से उनके तत्त्वादि का निरूपण श्रीनित्यानन्द, श्रीअद्वैत प्रभृति की तत्त्व कथा श्रीगौर–गणोंद्देश । पृ०—१२६–१५६

**अष्टम कक्षा**—श्रीरूप गोस्वामिचरण के वृत्तान्त, महिमा, अष्टकादि । पृ०—१५६-१६६

**नवम कक्षा**—रागात्मिका–रागानुगा भक्ति का निरूपण, प्रसङ्ग से परकोया का उत्कर्ष स्थापन । परकोया स्थापन के प्रमाण में श्रीस्वरूप श्रीरामानन्दादि प्रमुख भागवत गणों के ग्रन्थ रत्नों का उल्लेख, श्रीजीव गोस्वामी चरण के परेच्छा प्रणोदन में हेतु का उट्टङ्कन । पृ०—१६३

**दशम कक्षा**—साधन भक्ति प्रभृति का निरूपण पृ०-६३–७५

**हरिदास शास्त्री**

❋ श्रीश्रीगदाधरगौराङ्गौ जयतः ❋

# ❀श्रीरामकृष्णाष्टकम्❀

❋❋❋❋

परिव्राजाचार्यः सकलबुधचूड़ामणिरसौ ।
जगद् वन्द्यः स्तोतुं भवति कविवाचां न विषयः ।
गुरू रामकृष्णस्तदपि च तदीयैं र्गुणे गणैः
समाकृष्टं चेतो विरमति न चादोऽवशमिव ।।१

समुच्छिद्यग्रावव्रजमिव जगद्बन्धमखिलं
वहन्ती स्वच्छन्दं परम शिशिरा तापदलनी ।
वियद् गङ्गेवोक्तिः सरस सरसा यस्यविबुधो
गुरू रामकृष्णो दिशतु स पदाब्जाश्रयमसौ ।२।

व्यतीयाय श्रित्वा करकनय कौपीन मपि यो
जगज्जालं हित्वा क्षितिरुह तलेऽवायुरखिलम् ।
व्रजे कन्थाधारी मधुकर कुलाचार शरणिः
कदा रामकृष्णो भवति भजनानन्दरसदः ।३।

निखिल वुध जनगण के अग्रणी, वन्दनीय चरण यतिवर श्री रामकृष्ण दास महाशय यद्यपि कविगण की वाणीयों से वर्णित नहीं हो सकते हैं, तथापि उनकी गुणाबली से समाकृष्ट चित्त होकर अवश की भाँति वुध गण उनकी वर्णना करने में प्रवृत्त होते हैं ।१।

दुर्लङ्घ्य संसार बन्ध रूप पाषाण समूह को चूर्णविचूर्ण करके स्वच्छन्द रूप से प्रवाहित होने वाली परम शीतल, त्रिताप दलन परमसुखद मन्दाकिनी की भाँति जिनकी वाणी है, इसप्रकार विश्व वन्द्य श्रीराम कृष्णदास महोदय कब निज चरण कमल का आश्रय दान करेंगे ।२।

करङ्ग कौपीन कन्थाधारी तथा मधुकरी वृत्ति में रत होकर जिन्हों ने वृक्षावलीयों के नीचे समस्त जीवन अति वाहित किया है, वे श्रीराम कृष्णदास महाशय कब भजनानन्द प्रदान करेंगे ।३।

सदा कृष्णस्याङ्घ्रि स्मरणरस मग्नोऽरुणलसद्
दृगम्भोज द्वन्द्वो मधुरिममयाङ्गद्युति रसौ।
गुरू रामकृष्णो विबुधवर वन्द्यः करुणया
दृशोर्द्वन्द्वानन्दं वितरति कदा नः श्रमजुषाम् ।४।

व्रजागारा यस्य प्रभवदधिदेवा इव हृदो
जनानां भक्तानामभवदिह यश्चैक शरणः।
बुधो रामकृष्णः स किल परमाराध्यचरणः
कदा नो भृत्यत्वे पुनरपि समीहेत महितः ।५।

जनिः श्रीगोविन्दस्थितिसरसगेहे जयपुरे
ततो विप्रश्रेष्ठो जगति परमश्रोत्रिय वरः।
परं मग्नो भक्तेः सरसरिति प्रेमभरितो
बुधो रामकृष्णः प्रदिशति कदा दास्यममलम् ।६।

स्वभावे वात्सल्यं परमरुचिरं मातृसदृशं
सदैकान्तप्रीतिर्भगवति विभौ यस्य विपुला।
अदोषेक्षी धीरः स जनहितकृत् पण्डितवरो
गुरू रामकृष्णो नयन विषयं यास्यति कदा ।७।

निरन्तर श्रीकृष्ण चरण स्मरण में निमग्न चित्त प्रेमभर से अरुण नयन, मनोरम अङ्गद्युति युक्त विबुधवर श्रीरामकृष्ण दास महोदय,–कब नेत्रद्वय का आनन्दविधान करेंगे ।४

व्रजवासीजनगण जिनके अधिदेव के समान होते थे, जो भक्त जनों के शरण्य थे, ऐसे पूज्य चरण श्रीरामकृष्ण दास महोदय कब मुझे सेवा सौभाग्य प्रदान करेंगे ।।५।।

श्रीगोविन्द देव कीं क्रीड़ा विलास भूमि जयपुर में आविर्भूत श्रोत्रिय विप्रश्रेष्ठ, भक्तिरस निमग्न पण्डित श्रीरामकृष्णदास महोदय कब मुझे दास्य दान करेंगे ।६।

मातृकोटि वत्सल, श्रीकृष्ण चन्द्र के चरणारविन्दकी भक्ति रस से सदाप्लुत हृदय, अदोषदर्शी, धैर्य्यादिगुण सम्पन्न श्रीरामकृष्ण

निरीक्षा यस्यासीदखिलजनसन्तापहरणी
रजो हन्त्री सद्यः कलिमलतमोराशिशमनी।
श्रितः श्रीराधायाः परमविभवं कृष्णरसिकः
गुरू रामकृष्णश्चरण शरणं दास्यति कदा।८।

वन्दे बुधेन्द्र मुकुटोत्कट कोटिरत्न
न्यञ्चत् प्रभापटलसम्वलिताङ्घ्रि पद्मम्।।
भक्तैकतानमरविन्ददलानुकारि
नेत्रं गुरुं सहृदयं बुधरामकृष्णम्।९।

भक्तिप्रदं परम सुन्दरमन्तराधि
व्याधिप्रकोपशमनं च तमोनिहन्तृ।
श्रीरामकृष्णपदपद्मपरागसङ्गी
श्रुत्वाष्टकं भवति को न सुखी जगत्याम्।।१०।।

इति श्रीरामकृष्णदासपण्डितमहोदयानां गुणलेशसूचकाष्टकं सम्पूर्णम्

दास महाशय कव नयन गोचर होंगे।७।

दृष्टि मात्र से ही निखिल जनों के दुःखादि सन्ताप अपहरण कारी, रजोगुण एवं कलि दोष विनाशी श्रीकृष्ण भक्ति रस निमग्न भानुनन्दिनी के प्रिय भृत्य पण्डित श्रीरामकृष्ण दास महोदय कव हमें श्रीचरणों में आश्रय प्रदान करेंगे? ।।८।।

वुधगणवन्दनीय, श्रीराधाकृष्ण भक्ति रस निमग्न सहृदय सौम्य दर्शन पण्डित श्री रामकृष्ण दास महाशय को प्रणाम करता हूँ।९।

कृष्णभक्तिप्रद परमनोहर, आधिव्याधिविनाशक, अज्ञान नाशक श्रीरामकृष्ण गुण लेश सूचक स्त्रोत्र श्रवण से कौन व्यक्ति सुखी नहीं होगा? १०।

इति श्रीरामकृष्ण दास पण्डित महोदय के गुण
लेश सूचक अष्टक सम्पूर्ण।।
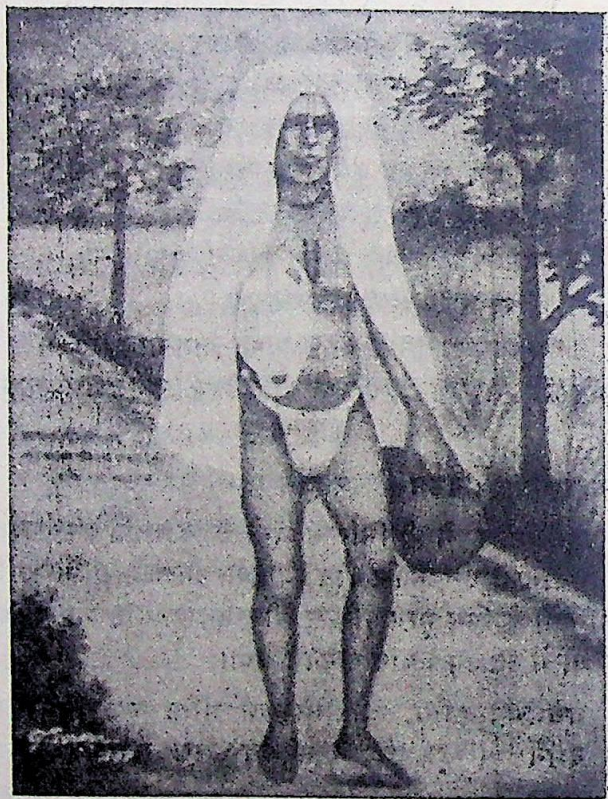
※ सिद्ध पण्डित श्रीरामकृष्ण दास बाबा महाराजजी ※

**** श्रीमद्राधागदाधर-गौरगोविन्दौ जयतः ****

****

# श्रीसाधनदीपिका

****

## प्रथमकक्षा

अमन्द-वृन्दाबन-मन्दिरोदरे
सुहेम-रत्नावलि-चित्रकुट्टिमे ।
सहोपविष्टं प्रियया समानया
गोविन्द-साक्षाद्भगवन्तमाश्रये ।।१।।

संसारकूपे पतितानशेषान्
उद्धर्त्तुं कामः कलिकाल-लोकान् ।
यः प्रादुरासीत् किल गौड़देशे
चैतन्यचन्द्रं तमहं प्रपद्ये ।।२।।

श्रीचैतन्य-प्रियतमः श्रीमद्राधागदाधरः ।
तत् परीवार-रूपस्य श्रीगोविन्द-प्रसेवनम् ।।
तयोः सत्प्रेमसत्पात्रं श्रीरूपः करुणाम्बुधिः ।
तत्पाद-कमलद्वन्द्वे रतिर्मे स्याद्व्रजे सदा ।।३।।

तदीयसेवाधिपतिं महाशयं
समस्तकल्याणगुणैकमन्दिरम् ।
वारेन्द्रविप्रान्वयभूषणं गुरुं
भजेऽनिशं श्रीहरिदास-संज्ञकम् ।।४।।

यत्सेवया वशः श्रीमद्गोविन्दो नन्दनन्दनः ।
पयसा संयुतं भक्तं याचते करुणाम्बुधिः ।।५।।

किञ्चास्मिन् कदाचिद्वसन्तवासरावसरे रात्रौ रासमण्डले भ्रमति सति सञ्चारिण्याः श्रीवृषभानुसुताया आश्चर्यं रूपं दृष्ट्वा

तमालस्य मूले मूच्छितवानिति महती प्रसिद्धिः ।

तस्यैव कान्ता-परिचारकोऽसौ
तयोश्च दासः किल कोऽपि नाम्ना ।
स्वकीयलीकस्य तदीयदास्यै
मति-प्रवेशाय करोति यत्नम् ।।६।।

श्रीमद्राधाप्राणबन्धोर्नैत्यिकं चरितं हि यत् ।
श्रीमत्कृष्णकवीन्द्रेण कृपया प्रकटीकृतम् ।७।
श्रीमद्रूपाज्ञया तेषां परमाप्तवरेण तु ।
कृतं तस्मिन् मया भाष्यं तेषां वाक्य-प्रमाणतः ।८।
अथ तस्मात् पृथक्त्वेन साक्षाद्भगवतो हरेः ।
मन्त्रमय्यां समासेन सेवा किञ्चिद्विलिख्यते ।९।
तत्तत्प्रसङ्ग-सङ्गत्या सिद्धान्तोऽपि च लिख्यते ।
तस्य मध्ये न लिखितो ग्रन्थविस्तार-भीतितः ।
कक्षा-दशमसंपूर्णो ग्रन्थोऽस्य संभविष्यति ।१०।
तत्र प्रथमकक्षायां श्रीमत्सेवा-प्रकाशनम् :
द्वितीये श्रीलगोविन्द-साक्षाद्भगवतः कथा ।११।
तृतीये मध्यकैशोरे रसोत्कर्ष-निरूपणम् ।
चतुर्थेऽष्टादशार्णस्य मन्त्रस्यार्थो विलिख्यते ।१२।
पञ्चमेऽस्य व्रजभुवो माहात्म्यं परिकीर्त्तितम् ।
षष्ठे श्रीभानुनन्दिन्याः प्रकाशस्य कथा शुभा ।१३।
श्रीमन्महाप्रभोस्तस्य भक्तवृन्दस्य चैव हि ।
तत्त्वात्मिका-कथा प्रोक्ता तत्तद्ग्रन्थ-प्रमाणतः ।१४।
सप्तमे त्वष्टमे प्रोक्ता पुनः श्रीरूपसत्कथा ।
रागात्मिका तथा रागानुगा-भक्ति-निरूपणम् ।।*१५।।
कक्षाया नवमे लेख्यं दशमे लिख्यते पुनः ।
श्रीमद्भगवतस्तस्तद्भक्त्यादेस्तत्त्व-वर्णनम् ।।१६।।

अथ श्रीमद्रूप-सनातनाभ्यां श्रीलपण्डितगोस्वामिशिष्य श्री परमानन्दगोस्वामिना च श्रीवृन्दावन-योगपीठादिषु सर्व एवरूपराज-

स्वयंभगवत: श्रीमद्गोविन्ददेवस्य श्रीमन्मदनगोपाल-गोपीनाथयोश्च सेवा श्रीमदीश्वरेच्छया स्वस्वस्थाने स्वस्वसेवा: प्रकाशिता:, एकस्यापि तस्य तत्तल्लीला-भेदेनैव प्रकाशभेद: श्रीविग्रहवत् ;— प्रकाशस्तु न भेदेषु गण्यते स हि न पृथक्' ( लघुभाग-१।१८) इति ।

स्वयंभगवत: श्रीमद्गोविन्दस्य सुखाधिका ।
वृन्दावने योगपीठे सेवा सु प्रकटीकृता ।
श्रीचैतन्यकृपारूप-रूपेण करुणाकृता ॥१७॥
सेवा गोपालदेवस्य परमानन्ददा शुभा ।
श्रीसनातन-रूपेण तत्रैव प्रकटीकृता ॥१८॥
परमानन्ददे श्रीमन्नीप-पादप-भूतले ।
कालिन्दीजल-संसर्गि-शीतलानिल-कम्पिते ॥१९॥
राधा-गदाधरच्छात्र: परमानन्द-नामक: ।
यस्तेनाशु प्रकटितो गोपीनाथो दयाम्बुधि: ॥
वंशीवटतटे श्रीमद्यमुनोपतटे शुभे ।२०।

तत: सर्वस्वरूपं जानता श्रील-रूपेण श्रीसनातनेन च मूल-स्वरूपशक्ति-श्रीराधागदाधरपरिवारे श्रीमन्महाप्रभोराज्ञानुसारेण स्व-स्वस्थाने स्वस्वसेवा समर्पिता । तत्रापि श्रीपण्डित-गोस्वामिशिष्य प्रेमिकृष्णदास-गोस्वामिने तदनुगश्रीहरिदास-गोस्वामिने समर्पिता श्रीरूपेण ; तथा हि—

'श्रीमद्गदाधरस्यास्य स्वरूपं पूर्वलक्षणम् ।
जानता श्रीलरूपेण सेवा तस्मै समर्पिता ।२१।

श्रीसनातन-गोस्वामिना स्वस्यातीवान्तरङ्गाय श्रीकृष्णदास ब्रह्मचारिणे श्रीमदनगोपालदेवस्य सेवा समर्पिता । एवं श्रीमद्रूपाद्वैत रूपेण श्रीमद्रघुनाथेन श्रीयुत-कुण्डयुगल-परिचर्य्या तत्परिसर भूमिश्च श्रीगोविन्दाय समर्पिता । एवं श्रीगोपीनाथस्य सेवा श्री-परमानन्द-गोस्वामिना श्रीमधुपण्डित-गोस्वामिने समर्पिता । किञ्च त्रयाणां श्रीविग्रहाणां प्रेयसी किल श्रीहरिदासगोस्वामि-श्रीकृष्णदास ब्रह्मचारिगोस्वामि-श्रीमधुपण्डित-गोस्वामिभिश्च प्रकाशिता ।

**इति प्रथमकक्षा**

# ❁ द्वितीयकक्षा ❁

*****

अथ श्रीवृन्दावनोत्तमाङ्ग-योग पीठाष्टदल कमल-कर्णिका-राजसिंहासन-विराजमान: सर्वस्वरूपराज: सर्व्वप्रकाशमूलभूत: स्वयं भगवत्-श्रीव्रजेन्द्रनन्दनो मध्यकैशोरावस्थित: श्रीगोविन्ददेव एव श्री-वृन्दावनाधिराज:;—यथा वहूनां राजपुत्राणां राजपुत्रत्वे साम्ये तथाप्येको राजसिंहासनार्हो राजा भवति, श्रुति-स्मृति-पुराणादावस्यैव प्राधान्यात् ; यथा व्रजे महारासे धाम्नोऽभेदेऽपि परिकरभेदेन सर्वेषु यूथेषु पूर्णतम-प्रकाशेन स्थित: सन् श्रीराधिकाया: पार्श्वे स्वयमेव विराजते, तथा। अतएव मौनमुद्रादिकं प्रकाश्य विग्रहवल्लीलाकाले सर्व्वेषां श्रीकृष्णप्रकाशानां तत्रैवान्यत्र स्थित: सन् श्रीकृष्णचैतन्यमहाप्रभोस्तत् पार्षदानाञ्च निरतिशयकृपा प्रकाशरूप-श्रीरूपसेवामङ्गीकृत्य श्रीगोविन्ददेव: स्वयमेव विराजते। तथा ह्लादिनीशक्तिसारांश-महाभाव-स्वरूपया श्रुतिस्मृतिपुराणादिषु वृन्दावनाधीशात्वेन प्रसिद्धया श्रीराधया सह विराजमानत्वेनास्यैव प्रसिद्धे:; यथा व्रह्मसंहितायां ( ५।३१ )—

'आनन्दचिन्मयरस-प्रतिभाविताभि-<br>
स्ताभिर्य एव निजरूपतया कलाभि: ।<br>
गोलोक एव निवसत्यखिलात्मभूतो<br>
गोविन्दमादिपुरुषं तमहं भजामि ।।'

यथा हरिवंशे—

'अहं किलेन्द्रो देवानां त्वं गवामिन्द्रतां गत:।<br>
गोविन्द इति लोकास्त्वां स्तोष्यन्ति भुवि शाश्वतम् ।।'

श्रीभागवते च ( १०।२१।२३)—

'इन्द्र: सुरर्षिभि: साकं चोदितो देवमातृभि: ।<br>
अभ्यषिञ्चत दाशार्हं गोविन्द इति चाभ्यधात् ।।'

टीका च—देवमातृभिरिति; गाः पशून् गां स्वर्गं वा इन्द्रत्वेन विन्दतीति कृत्वा च गोविन्द इत्यभ्यधात् नाम कृतवान् ।
पुनस्तत्रैव दशमस्कन्धे ( श्रीभा १०।२७।२८) —

'इति गोगोकुलपतिं गोविन्दमभिषिच्य सः ।
अनुज्ञातो ययौ शक्रो वृतो देवादिभिर्दिवम् ।'

पद्यावल्यां—

' कालिन्दीतीर-कल्पद्रुमतलविलसत्-पद्मपादारविन्दो
मन्दान्दोलाङ्गुलीभिर्मुखरित-मुरली मन्दगीताभिनन्दः ।
राधा-वक्त्रेन्दु-मन्दस्मितमधुरसुधास्वाद-सन्दोह-सान्द्रः
श्रीमद्वृन्दावनेन्द्रः प्रभवतु भवतां भूतये कृष्णचन्द्रः ।'

स्कान्दे मथुराखण्डे नारदोक्तौ—

'तस्मिन् वृन्दावने पुण्यं गोविन्दस्य निकेतनम् ।
तत्सेवक-समाकीर्णं तत्रैव स्थीयते मया ॥
भुवि गोविन्द-वैकुण्ठं तस्मिन् वृन्दावने नृप ।
यत्र वृन्दादयो भृत्याः सन्ति गोविन्द-लालसाः ॥
वृन्दावने महासत्त्व यैर्दृष्टं पुरुषोत्तमैः ।
गोविन्दस्य महीपाल ते कृतार्था महीतले ॥'

तथा हि श्रीकृष्णसन्दर्भे श्रीभागवत-षष्ठ-स्कन्धे ( श्रीभा ६।८।२० )—'मां केशवो गदया प्रातरव्याद्गोविन्द आसङ्गवमात्त-वेणुः' इति ।

टीका च—तौ हि श्रीमथुरा-वृन्दावनयोः सु प्रसिद्ध-महायोग पीठयोस्तत्तन्नाम्नैव सहितौ प्रसिद्धौ; तौ च तत्र तत्र प्रापञ्चिकलोक-दृष्ट्या श्रीमत्प्रतिमाकारेण भातः, स्वजन-दृष्ट्या साक्षाद्भूतौ च; तत्रोत्तररूपं ब्रह्मसंहिता-गोविन्दस्तवादौ प्रसिद्धम्; अत एवात्रापि साक्षाद्रूपवृन्द प्रकरण एवैतौ पठितौ—इत्यादि-सन्दर्भटीकेत्यर्थः ।
तथा हि—'साक्षाद्भगवतः श्रीमद्गोविन्दस्य सुखाधिका ।'
तथा हि श्रीचैतन्यचरितामृते ( आदि ८म पः )

'वृन्दावने कल्पवृक्ष सुवर्ण-सदन।
महायोगपीठ ताँहा रत्नसिंहासन॥
ताते वसि' आछेन साक्षात् व्रजेन्द्रनन्दन।
'श्रीगोविन्द' नाम-साक्षात् मन्मथमदन॥' इत्यादि।

ननु सर्वत्र देशे यथा श्रीकृष्णप्रकाशादीनां नवीन-प्राचीना धातुशीलाद्याकाराः क्वचिद्भक्तवत्सलतया चलच्छक्तिप्रकाशिका अर्चायमानाः क्वचित् सामान्याकाराश्च श्रीनन्दनन्दन-प्रकाशा दृश्यन्ते, तथासौ स्वयंभगवान् श्रीगोविन्ददेवोऽपि (इति चेत्)?-न; किन्त्वसौ तथात्वे दृश्यमानोऽप्यर्चायमानविशेषः स्वयं प्रकाशः साक्षाद् व्रजेन्द्रनन्दन एव। अत्र युक्ति-सुदृष्टान्तां प्राचीन-पौराणिकां कथामाह—प्रेमनगरापरपर्य्यायि प्रतिष्ठानपुरे कोऽपि राजासीन्; स च पञ्चपुत्रः; वार्द्धकदशायां मनसि एवं विचारितवान्,—'मत्पुत्रेषु यो राज्यादिपालने समर्थो मयि प्रेमवांश्च भवेत्, तस्मिन् राज्यादि समर्पयिष्यामि' इति मनसि कृत्वा वहिर्जड़वदाचरितवान्। तं दृष्ट्वा सर्वे जना मनसि दुःखिता अभवन्। पुत्राणां मध्ये तु ये दुष्टाचारास्ते मनसि हृष्टा राज्यादिकं नेतुं विषयसुखञ्च कर्त्तुं प्रवृत्ता अभवन्। तेषु कोऽपि पण्डितो ज्ञानवान् पूर्वतोऽपि पित्रोः प्रीतिं कृत्वा सेवायां प्रवृत्तः। राजा तु तस्य भक्तिं दृष्ट्वा तस्मिन् राज्यादिभारं समर्पितवान् अन्ये पुत्रास्तु तच्छ्रुत्वा तदुपरि दण्डादिकं कृतवन्तः। तान् दृष्ट्वा-मात्याः सर्वे तद्वृत्तान्तं राज्ञि निवेदितवन्तः। राजा तु तच्छ्रुत्वा कृत्रिमजड़-स्वभावादिकं त्यक्त्वा तान् पुत्रान् निरस्य तस्मिन् पुत्रे स्वच्छन्दमभिषेकं कृतवान्। तथायं श्रीगोविन्ददेवः साक्षाद्व्रजेन्द्र-कुमारोऽप्याधुनिक-भक्तानां प्रेमतारतम्यं कर्त्तुं मौनमुद्रादिकमङ्गी-कृत्य राधिकया सह विराजते। अत्रापि श्रुति-स्मृति-पुराणादि-प्रमाणानि वहूनि सन्ति। तत्र श्रीगोपाल-तापन्यां (पूर्व १०)—

'सत्पुण्डरीकनयनं मेघाभं वैदुय्यताम्वरम्।
द्विभुजं मौनमुद्राढ्यं वनमाला-विभूषितम्॥
गोपीगोपगवावीतं सुरद्रुमलताश्रयम्॥' इत्यादि।

( पूर्व ३८ )—'तमेकं गोविन्दं सच्चिदानन्दविग्रहम्' इत्यादि ।

'गोपालाय गोवर्द्धनाय गोपीनाथाय नमो नमः ॥'

तथा हि ऊर्द्ध्वाम्नाये—

'गोपाल एव गोविन्दः प्रकटाप्रकटः सदा ।
वृन्दावने योगपीठे स एव सततं स्थितः ॥
असौ युग-चतुष्केऽपि श्रीमद्वृन्दावनाधिपः ।
पूजितो नन्दगोपाद्यैः कृष्णेनापि सुपूजितः ॥
चीरहर्त्ता व्रजस्त्रीणां व्रत-पूर्त्ति-विधायकः ।
चिदानन्दशिलाकारो व्यापको व्रजमण्डले ॥'

तत्र—'चन्द्रावलीदुराधर्षं राधा-सौभाग्य-मन्दिरम् ।'

तथा हि अथर्ववेदे—'गोकुलारण्ये मथुरामण्डले वृन्दावनमध्ये सहस्र दलपद्मे षोड़शदलमध्येऽष्टदलकेशरे गोविन्दोऽपि श्यामः पीताम्बरो द्विभुजो मयूरपुच्छशिरो वेणुवेत्रहस्तो निर्गुणः सगुणो निराकारः साकारो निरीहः सचेष्टो विराजते ।' इति ।

'द्वे पार्श्वे चन्द्रावली राधा च' इत्यादि ।

तथा हि सम्मोहनतन्त्रोक्तिः—

'गोविन्द-सहितां भूरिहावभाव-परायणाम् ।
योगपीठेश्वरीं राधां प्रणमामि निरन्तरम् ॥'

तथा हि स्कान्दे—

'गोबिन्दस्वामि-नामात्र वसत्यर्च्चात्मकोऽच्युतः ।
गन्धर्वैरप्सरोभिश्च क्रीड़मानः स मोदते ॥'

तथा हि ब्रह्मसंहितायां ( ५।१)—

'ईश्वरः परमः कृष्णः सच्चिदानन्दविग्रहः ।
अनादिरादिर्गोविन्दः सर्वकारणकारणम् ॥'

अत्र श्लोके कृष्णो विशेष्यः । अन्यत्रापि गोबिन्दस्य विशेष्यत्वम्; यथा—

'व्रजे गोविन्दनामा यः पशूनामिन्द्रतां गतः ।
स एव कृष्णो भवति मनोनेत्रादि-कर्षणात् ॥'

ब्रह्मसंहितायाश्च ( ५।३९ )—

'रामादिमूर्त्तिषु कलानियमेन तिष्ठन्
नानावतारमकरोद्भुवनेषु किन्तु ।
कृष्णः स्वयं समभवत् परमः पुमान् यो
गोविन्दमादिपुरुषं तमहं भजामि ॥

टीका च यो गोविन्दो रामादि-मूर्त्तिषु कलानियमेन तिष्ठन् सन् नानावतारमकरोत्, स देवः स्वयं कृष्णः समभवत् तं भजामीति ।
श्रीगोपालतापन्यां ( पूर्व ४० )—

'कृष्णाय गोपीनाथाय गोविन्दाय नमो नमः ॥'

तथा हि—'वेणुवादनशीलाय गोपालायाहिमर्दिने ।
कालिन्दीकूललोलाय लोलकुण्डलवल्गवे ॥
वल्लवीनयनाम्भोजमालिने नृत्यशालिने ।
नमः प्रणतपालाय श्रीकृष्णाय नमो नमः ॥
नमः पाप-प्रणाशाय गोवर्द्धनधराय च ।
पूतना-जीवितान्ताय तृणावर्त्तासुहारिणे ॥
निष्कलाय विमोहाय शुद्धायाशुद्धवैरिणे ।
अद्वितीयाय महते श्रीकृष्णाय नमो नमः
केशव क्लेशहरण नारायण जनार्द्दन ।
गोविन्द परमानन्द मां समुद्धर माधव ॥' इत्यादि ।

तत्र ऊर्द्ध्वाम्नाये—'श्रीमन्मदनगोपालोऽप्यत्रैव सु प्रतिष्ठितः इति । श्रीदशमे ( श्रीभा० १०।१९।१६ )—

'गोपीनां परमानन्द आसीद्गोविन्ददर्शने' इति ।

तथा हि ( श्रीभा १०।२१।१० )—

'वृन्दावनं सखि भुवो वितनोति कीर्त्ति
यद्देवकीसुत-पदाम्बुजलब्धलक्ष्मि ।
गोविन्दवेणुमनुमत्तमयूरनृत्यं
प्रेक्ष्याद्रिसान्ववरतान्यसमस्तसत्त्वम् ॥'इति ।

तथा हि श्रीगोविन्दलीलामृते च (२१।२८ )—

'श्रीगोविन्दस्थलाख्यं तटमिदममलं कृष्णसंयोगपीठं
वृन्दारण्योत्तमाङ्गं क्रमननमभितः कूर्मपीठस्थलाभम् ।
कुञ्जश्रेणीदलाढ्यं मणिमयगृहसत्कर्णिकं स्वर्णरम्भा-
श्रेणीकिञ्जल्कमेषा दशशतदल-राजीवतुल्यं ददर्श' । इति
श्रीपद्मपुराणे वृन्दावन-माहात्म्ये ( पाताल ३८ )—

पार्वत्युवाच—

'गोविन्दस्य किमाश्चर्य्यं सौन्दर्य्यामृतमव्ययम् ।
तदहं श्रोतुमिच्छामि कथयस्व कृपानिधे ॥'८२

ईश्वर उवाच,—

मध्ये वृन्दावने रम्ये मञ्जुमन्दार-शोभिते ।
योजनोच्छ्रित-तद्वृक्षैः शाखापल्लवमण्डितैः ।८३।
महत्पदं महद्धाम महानन्द-रसाश्रये ।
प्रवाल-कुसुमैर्गन्धैर्मत्तालिवृन्द-सेवितैः ।८४।
तत्राधस्तात् सिद्धपीठे गोविन्दस्थलमव्ययं ।
सप्तावरणकं स्थानं श्रुतिमृग्यं निरन्तरं ॥८५॥
तत्र शुद्धे हेमपीठे मणिमण्डप-मण्डिते ।
तन्मध्ये मञ्जुनिर्माणं योगपीठं समुज्ज्वलं ।८६।
तत्राष्टकोणनिर्माणं नानाद्वीप-मनोहरं ।
तत्रोपरि च माणिक्यस्वर्णसिंहासनोज्ज्वलं ।८७।
तस्मिन्नष्टदलं पद्मं कर्णिकायां सुखाश्रये ।
गोविन्दस्य प्रियस्थानं किमस्य महिमोच्यते । ८८।
श्रीमद्गोविन्दमत्रस्थं वल्लवीवृन्द-सेवितं ।
व्रजेन्द्रं सन्ततैश्वर्य्यं व्रजरामैकवल्लभं ।
दिव्यव्रज-वयोरूपं कृष्णं वृन्दावनेश्वरं ।८९।
यौवनोद्भिन्नवयसाद्भुत-विग्रहधारिणं ।९०।

वराह-संहितायाञ्च ( म मा ३९८ )

'वृन्दावने तु गोविन्दं ये पश्यन्ति वसुन्धरे ।
न ते यमपुरं यान्ति यान्ति पुण्यकृतां गतिम् ॥'

अस्य टीका च—अथ सर्वासामर्चानां दर्शन-माहात्म्यं वदन् उपर्य्युपरि स्फूर्त्या श्रीमदर्चाविशेषायमाणस्य साक्षाद्भगवतः श्रीगोविन्ददेवस्य दर्शनमाहात्म्यमाह—वृन्दावन इति ।

तथा हि वराहतन्त्रे पञ्चमपटले; यथा श्रीवराह उवाच,—

'कर्णिका तन्महद्धाम गोविन्दस्थानमव्ययं ।
तत्रोपरि स्वर्णपीठे मणिमण्डप-मण्डितं ॥

अथा हि—कर्णिकायां महालीला तल्लीलारस-तद्गिरी ।
यत्र कृष्णो नित्यवृन्दाकाननस्य पतिर्भवेत् ।४३।
कृष्णो गोविन्दतां प्राप्तः किमन्यैर्बहुभाषितैः ।
दलं तृतीयकं रम्यं सर्वश्रेष्ठोत्तमोत्तमं ।४४।

तथा हि—गोविन्दस्य प्रियस्थानं किमस्य महिमोच्यते ।
गोविन्दं तत्र संस्थश्च वल्लवीवृन्द-वल्लभ ।४५।
दिव्यव्रजवयोरूपं वल्लवीप्रीति-वर्द्धनं ।
व्रजेन्द्रं नियतैश्वर्य्यं व्रजवालैक-वल्लभं ।४६।

तथा हि पृथिव्युवाच,—

परमं कारणं कृष्णं गोविन्दाख्यं परात्परं ।
वृन्दावनेश्वरं नित्यं निर्गुणस्यैक-कारणं ।४७।

वराह उवाच,—

राधया सह गोविन्दं स्वर्णसिंहासने स्थितं ।
पूर्व्वोक्तरूपलावण्यं दिव्यभूषं सुसुन्दरं ।४८।
त्रिभङ्ग मञ्जुसुस्निग्धं गोपीलोचन-तारकं ।
तत्रैव योगपीठे च स्वर्णसिंहासनावृते ।४९।
प्रत्यङ्गरभसावेशाः प्रधानाः कृष्णवल्लभाः ।
ललिताद्याः प्रकृतयो मूलप्रकृती राधिका ।५०।
सम्मुखे ललिता देवी श्यामलापि च वायवे ।
इत्तरे श्रीमधुमती धन्यैशान्यां हरिप्रिया ।।५१।।
विशाखा च तथा पूर्व्वे शैव्या चाग्नौ ततः परं ।
पद्मा च दक्षिणे भद्रा नैरृते क्रमशः स्थिताः ।५२।

योगपीठस्य कोणाग्रे चारुचन्द्रावली प्रिया ।
प्रकृत्यष्टौ तदन्याश्च प्रधाना: कृष्णवल्लभा, ।५३।
प्रधाना प्रकृतिश्चाद्या राधिका सर्बसाधिका ।
चित्ररेखा च वृन्दा च चन्द्रा मदनसुन्दरी ।५४।
सुप्रिया च मधुमती शशीरेखा हरिप्रिया ।
सम्मुखादिक्रमे दिक्षु विदिक्षु च तथा स्थिता: ।५५।
षोड़शी प्रकृति-श्रेष्ठा प्रधाना कृष्णवल्लभा ।
वृन्दावनेश्वरी राधा तद्वत्तु ललिता प्रिया ।५६।

गौतमीयतन्त्रे —

'रत्नभूधर-संलग्न-रत्नासन-परिग्रहम् ।
कल्पपादप-मध्यस्थहेममण्डपिका-गतम् ॥'

इत्यनेन गोविन्दस्यैव विशेषणमिति विवेचनीयम् ।

तापनी च ( पूर्व ३८ )—

'तमेकं गोविन्दं सच्चिदानन्दविग्रहम् ॥' इति ।

श्रीजयदेवचरणैश्च ( गीत-गो, २य स: )—

'गोविन्दं व्रजसुन्दरीगणवृतं पश्यामि हृष्यामि च ।

श्रीभक्तिरसामृतसिन्धौ ( द: वि: १।३५ )—

'लीला-प्रेम्णा प्रियाधिक्ये माधुर्य्ये वेणुरूपयो: ।
इत्यसाधारणं प्रोक्तं गोविन्दस्य चतुष्टयम् ॥'इति

तत्रैव ( पू: वि:, २।४५ )—

स्मेरां भङ्गीत्रय-परिचितां साचिविस्तीर्णदृष्टिं ।
वंशीन्यस्ताधरकिशलयामुज्ज्वलां चन्द्रकेण ।
गोविन्दाख्यां हरितनुमित: केशितीर्थोपकण्ठे
मा प्रेक्षिष्ठास्तव यदि सखे बन्धुसङ्गेऽस्ति रङ्ग: ॥

श्रीदानकेलिकौमुद्यां ( ३२६ )—'अर्ज्जुन:—विसाहे इदं वि थोअं च्चेअ ता सुणाहि । सो किर अस्सुदअरसाहम्मो सम्मोहण-माहुरीभरणव्वो सव्वोवरि विरेहन्तो पिअवअस्सस्स सअलगोउल-वइत्तणेण गोइन्दाहिसेअ महूसवो कस्स वा गव्वं ण क्खु खव्वेदि ?

इत्येवंभूतस्य मौनमुद्रादिकं प्रकाश्य विग्रहवत् स्थितस्य श्रीगोविन्द-देवस्य प्रकटलीलाकाले मौनमुद्रादिकमाच्छादितमभवत्। तथाच-प्रकटलीलाकाले भक्तानां भक्तिसन्दर्शनार्थं प्रकटितमेव। तत्र श्री-गोपाल-तापन्यादि-प्रसिद्धं—'कदाचित् प्रकटीभूय' इति ( पूर्वं १० ) 'द्विभुजं मौनमुद्राढ्यम्' इति च।

किञ्च, श्रीकृष्णसन्दर्भे ( १५३ अनु )—"श्रीकृष्णलीला द्विधा—अप्रकटरूपा प्रकटरूपा च, प्रापञ्चिकलोकाप्रकटत्वात् तत्प्रकट-त्वाच्च। तत्राप्रकट—'यत्रासौ संस्थितः कृष्णस्त्रिभिः शक्त्या समाहितः। रामानिरुद्ध प्रदुय्म्नै रुक्मिण्या सहितो विभुः॥' इति मथुरातत्त्व-प्रतिपादक श्रीगोपाल-तापन्यादौ (उः ४० ); 'चिन्तामणि प्रकरसद्मसु' इत्यादि-वृन्दावनतत्त्व-प्रतिपादक-ब्रह्मसंहितादौ (५।२९) च प्रकटलीलातः किञ्चिद्विलक्षणत्वेन दृष्टा, प्रापञ्चिकलोकैस्तद्-वस्तुभिश्चामिश्रा कालवदादिमध्यावसान-परिच्छेद-रहितस्यप्रवाहा, यादवेन्द्रत्व-व्रजनवयुवराजाद्युचिता, अहरहर्महासभोपवेश-गोचारण विनोदादिलक्षणा, प्रकटलोकवस्तु-संवलिता तदीयजन्मादि-लक्षणा।

**तत्राप्रकटा द्विधा—मन्त्रोपासनामयी, स्वारसिकी च**

तत्र प्रथमा, यथा—तत्तदेकतरस्थानादि-नियतस्थितिका, तत्तन्मन्त्रध्यानमयी।' इति।

यथा वृहद्ध्यान-रत्नाभिषेकादिप्रस्तावः क्रमदीपिकायां ( ३।१-१६ ); यथा वा श्रीगौतमीयतन्त्रे ( ४।१७ )—

'अथ ध्यानं प्रवक्ष्यामि सर्वपाप-प्रणाशनम्।
पीताम्बरधरं कृष्णं पुण्डरीकनिभेक्षणम्॥' इत्यादि।

यथा वा ( ब्र स० ५।३०-३१ )—

'वेणुं क्वणन्तमरविन्ददलायताक्षं
बर्हावतंसमसिताम्बुद-सुन्दराङ्गम्।
कन्दर्पकोटि-कमनीयविशेषशोभं
गोबिन्दमादिपुरुषं तमहं भजामि॥
आलोल-चन्द्रक-लसद्वनमाल्य-वंशी-

रत्नाङ्गदप्रणयकेलिकलाविलासम् ।
श्यामं त्रिभङ्गललितं नियत-प्रकाशं
गोविन्दमादिपुरुषं तमहं भजामि ॥'

तथा—'होमस्तु पूर्ववत् कार्य्यो गोविन्द-प्रीतये ततः' इत्याद्यनन्तरं-
'गोविन्दं मनसा ध्यायेद् गवां मध्ये स्थितं शुभम् ॥
बर्हापीड़क-संयुक्तं वेणुवादनतत्परम् ।
गोपीजनैः परिवृतं वन्यपुष्पावतंसकम् ।' इति वौधायनकर्म-
विपाक-प्रायश्चित्त-स्मृतौ ।

"तदुहोवाच,—'हैरण्यो गोपवेशमभ्राभं तरुणं कल्पद्रुमा-
श्रितम् । तदिह श्लोका भवन्ति—
'सत्पुण्डरीकनयनं मेघाभं वैद्युताम्बरं ।
द्विभुजं मौनमुद्राढ्यं वनमालिनमीश्वरं ॥
गोपगोपी-गवावीतं सुरद्रुमतलाश्रयं ।
कालिन्दीजलकल्लोल-सङ्गिमारुत-सेवितं ।
चिन्तयेच्चेतसा कृष्णं मुक्तो भवति संसृतेः ॥'

इति गोपालतापन्यां ( पूर्व ८-१० )
'गोविन्दं सच्चिदानन्दविग्रहम्' इत्यादि च ( पूर्व ३८ ) ।

अथ स्वारसिकी च यथोदाहृतमेव;
'वत्सैर्वत्सतरीभिश्च सदा क्रीड़ति माधवः ।
वृन्दावनान्तरगतः सरामो बालकैर्वृतः ॥' इत्यादि च ।

अत्र च-कारात् श्रीगोपेन्द्रादयोऽपि गृह्यन्ते । राम-शब्देन रोहिण्यपि; तथा तेनैव 'क्रीड़ति' इत्यादिना व्रजागमनशयना-दिलीलापि । क्रीड़ा-शब्दस्य विहारार्थत्वात् विहारस्य नानास्थानानु-सरणरूपत्वादेकस्थाननिष्ठाया मन्त्रोपासनादिमय्या भिद्यतेऽसौ यथा वसरविविधस्वेच्छामयी स्वारसिकी ।

एवं ब्रह्मसहितायां ( ५।२९ )—'चिन्तामणिप्रकरसद्मसु कल्प वृक्षलक्षावृतेषु सुरभीरभि' इत्यादि, 'गोविन्दमादिपुरुषं तमहं भजामि' इति, ( ब्र, सं ५।५६ ) 'कथा गानं नाट्यं गमनमपि'

इत्यत्राप्यनुसन्धेयम्। तदेतत् सर्वं मूलप्रमाणेऽपि दृश्यते; तत्र प्रकट रूपा विस्पष्टैव।

**अथाप्रकटायां मन्त्रोपासनामयीमाह,—'मां केशवो** गदया प्रातरव्याद्गोविन्द आसङ्गवमात्तवेणुः इति;

टीका च—आत्तवेणुरिति विशेषणेन गोविन्दः श्रीवृन्दावनदेव एव; तत्सहपाठात् केशवोऽपि मथुरानाथ एव।

तौ हि श्रीवृन्दावन-मथुरयोः प्रसिद्ध-महायोगपीठयोस्तत्तन्नाम्नैव सहितौ प्रसिद्धौ। तौ च तत्र तत्र प्रापञ्चिकलोक-दृष्ट्या श्रीमत् प्रतिमाकारेण भातः; स्वजनदृष्ट्या साक्षाद्रूपेणैव च। तत्रोत्तररूपं ब्रह्मसंहितायां गोविन्दस्तवादौ प्रसिद्धम्। अतएवात्रापि साक्षाद्रूपवृन्द-प्रकरणे एवैतौ पठितौ। ततश्च नारायण-वर्माख्य-मन्त्रोपास्य-देवतात्वेन श्रीगोपाल-तापन्यादि-प्रसिद्ध-स्वतन्त्रमन्त्रान्त-देवतात्वेन मन्त्रोपासनामय्यामिदमुदाहृतम्।

तथा हि ललितमाधवे (१।३३)—"राधिका कृष्ण-मुखेन्दुमवलोक्य—'हन्त हन्त णिव्भरूक्कण्डिदाए मम मुद्धत्तणं, ज गोइन्दस्स पड़िमं जेव्व गोइन्दं मण्णेमि।' तथा राधिका—

'पुरो धिन्वन् घ्राणं परिमिलति सोऽयं परिमलो
घनश्यामा सेयं द्युतिविततिराकर्षति दृशौ।
स्वरः सोऽयं धीरस्तरलयति कर्णौ मम वला-
दहो गोविन्दस्य प्रकृतिमुपलब्धाप्रतिकृतिः॥'

स्कान्दे—'दोलायमानं गोविन्दं मञ्चस्थं मधुसूदनम्।
रथे च वामनं दृष्ट्वा पुनर्जन्म न विद्यते॥'

(द्वारकायां श्रीपुरुषोत्तमे च। एतत्पद्यद्वये गोविन्दशब्दस्तु सर्वप्रकाशमूलभूतस्य श्रीवृन्दावननाथस्य गोविन्दस्य प्रकाशापेक्षया। स च 'प्रकाशस्तु न भेदेषु गण्यते स हि न पृथक' इति। (-लघुभाग १।१८)।

'दक्षिणाभिमुखं देवं दोलारूढं सुरेश्वरं।

सकृद्दृष्ट्वा तु गोविन्दं मुच्यते ब्रह्महत्यया: ॥
वर्त्तमानं च यत् पापं यद्भूतं यद्भविष्यति ।
तत् सर्वं निर्दहत्याशु गोविन्दानलकीर्त्तनात् ॥
गोविन्देति यथा प्रोक्तं भक्त्या वा भक्तिवर्जितं ।
दहते सर्वपापानि युगान्ताग्निरिवोत्थित: ॥
गोविन्दनामा य: कश्चिन्नरो भवति भूतले ।
कीर्त्तने तस्य पापस्य भेदं याति सहस्रधा ॥
तन्नास्ति कर्मजं लोके वाङ्मानसमेव वा ।
यन्न क्षपयते पापं कलौ गोविन्द-कीर्त्तनम् ॥'
'किं तत्र वेदागमशास्त्रविस्तरै-
स्तीर्थैरनेकैरपि किं प्रयोजनम् ?
यद्यात्मनेच्छसि मोक्षकारणं
गोविन्द गोविन्द इति स्फुटं रट ॥'

( श्रीचैतन्यचरितामृते, आदि ८म प:; ५म प: )—

'वृन्दावने कल्पवृक्ष सुवर्ण-सदन ।
महायोगपीठ ताँहा रत्नसिंहासन ॥
ताते वसि' आछेन साक्षात् व्रजेन्द्रनन्दन ।
श्रीगोविन्ददेव साक्षात् मन्मथमदन ॥
याँर ध्यान निज-लोके करे पद्मासन ।
अष्टादशाक्षरमन्त्रे करे उपासन ॥
साक्षात् व्रजेन्द्रनन्दन इथे नाहि आन ।
ये अज्ञजन करे प्रतिमा-हेन ज्ञान ॥
सेइ अपराधे तार नाहिक निस्तार ।
घोर नरकेते पचे, कि बलिब आर ॥'

ब्रह्मवैवर्त्ते—

'प्राप्यापि दुर्लभतरं मानुष्यं विबुधेप्सितम् ।
यैराश्रितो न गोविन्दस्तैरात्मा वञ्चितश्चिरम् ॥
द्रष्टुं न योग्या वक्तुं वा त्रिषु लोकेषु तेऽधमा: ।

श्रीगोविन्दपादद्वन्द्वे विमुखा ये भवन्ति हि ॥'

असौ रसिकशेखरो गोविन्ददेवः कदाचिदृतुभेदेन स्वसेवाकाले यथोचितभोजनादिनिमित्ताय स्वाधिकार-नियुक्तेन केनापि सहगोप-किशोररूपेण रात्रौ स्वप्नस्फूर्त्या साक्षाद्रूपेण वा कथोपकथनं कुरुते। एतच्च लोकपरम्परया श्रूयते, किन्तु अतीवरहस्यत्वात् आचार्य्यवचनाद्यनुरोधाच्च प्रकाश्य न लिख्यते इत्यादि।

अथोद्र्ध्वाम्नायतन्त्रवाक्यान्याह; " श्रीपार्वत्युवाच,—

'कोऽसौ गोविन्ददेवोऽस्ति यस्त्वया सूचितः पुरा।
कीदृशं तस्य माहात्म्यं किं स्वरूपञ्च शङ्कर ?'

श्रीमहादेव उवाच,—

'गोपाल एव गोविन्दः प्रकटा प्रकटः सदा।
वृन्दावने योगपीठे स एव सततं स्थितः ॥
असौ युगचतुष्केऽपि श्रीमद्वृन्दावनाधिपः।
पूजितो नन्दगोपाद्यैः कृष्णेनापि सुपूजितः ॥
चीरहर्त्ता व्रजस्त्रीणां व्रतपूर्त्ति-विधायकः।
चिदानन्द-शिलाकारो व्यापको व्रजमण्डले ॥
किशोरतामुपक्रम्य वर्त्तमानो दिने दिने।
ताम्बुल-पूरितमुखो राधिकाप्राणदैवतः ॥
रत्नवद्धचतुःकूलं हंमपद्मादिसङ्कुलं।
ब्रह्मकुण्ड-नाम कुण्डं तस्य दक्षिणतो दिशि ॥
रत्नमण्डपमाभाति मन्दार-तरुभिर्वृतं।
तन्मध्ये योगपीठाख्यं साम्राज्यपदमुत्तमम् ॥
वृन्दावनेश्वरी-प्राज्यसाम्राज्यरसरञ्जितः।
इहैव निर्जितः कृष्णो राधया प्रौढ़हासया ॥
तस्यां गो श्रीः सदा वृन्दा वीरा चाखिल-साधना।
योगपीठस्य पूर्वत्र नाम्ना लीलावती स्थिता ॥
दक्षिणस्यां स्थिता श्यामा कृष्णकेलिविनोदिनी।
पश्चिमे संस्थिता देवी भोगिनी नाम सर्वदा ॥

उत्तरत्र स्थिता नित्यं सिद्धेशी नाम देवता ।
पञ्चवक्त्रः स्थितः पूर्वे दशवक्त्रश्च दक्षिणे ॥
पश्चिमे च चतुर्वक्त्रः सहस्रवक्त्र उत्तरे ।
सुवर्ण–वेत्रहस्ता च सर्वतः शासने स्थिता ॥
मदनोन्मोदिनी नाम राधिकायाः प्रिया सखी ।
पादयोः पातयत्येव गोविन्दं मानविह्वलं ॥

रतिपतिमतिमानदेऽपि साक्षादिह युगलाकृतिधाम कामदम्भे ।
हरिमणि–नवनील–मधुरीभिः पदि पदि मन्मथसौधमुच्चिनोति ॥

मन्मथ-द्वितयं पश्चात् श्रीकृष्णायेति सत्पदं ।
गोविन्दाय ततः पश्चात् स्वाहायं द्वादशाक्षरः ॥
गोविन्दस्य महामन्त्रः काले पूर्वानुरागभाक् ।
ततः परं प्रवक्ष्यामि गोविन्दं युगलात्मकं ।
लक्ष्मीमन्मथराधेति गोविन्दाभ्यां नमः पदं ।
एतस्य ज्ञानमात्रेन राधाकृष्णौ प्रसीदतः ॥
अनयोस्तु ऋषिः कामो विराट् छन्द उदाहृतं ।
देवता नित्यगोविन्दो राधागोविन्द एव च ॥
योगपीठेश्वरी शक्तिः षड़ङ्गं कामबीजकैः ॥

ध्यायेद्गोविन्ददेवं नवघनमधुरं दिव्यलीला नटन्तं
विस्फूर्जन्मल्लकच्छं करयुगमुरली-रत्नदण्डाश्रितञ्च ।
अंसन्यस्ताच्छ–पीताम्बरविपुलदशाद्वन्द्वगुच्छाभिरामं
पूर्णश्रीमोहनेन्द्रं तदितर-चरणाक्रान्त-दक्षाङ्‌घ्रिनालं ॥

एवं ध्यात्वा जपेन्मन्त्रं यावल्लक्षचतुष्टयं ॥
तिलाज्यहवनस्यान्ते योगपीठेश्वरी यजेत् ।
चम्पकाशोकतुलसी-कह्लारैः कमलैस्तथा ॥
राधागोविन्द-युगलं साक्षात् पश्यति चक्षुषा ।
श्रीमन्मदनगोपालोऽप्यत्रैव सुप्रतिष्ठितः ॥
कैशोररूपी गोपालो गोविन्दः प्रौढ़विग्रहः ।
उभयोस्तारतम्येन गोपीनाथोऽतिसुन्दरः ॥

धीरोद्धतस्तु गोपाली धीरोदात्ततयोच्यते ।
गोविन्दो गोपिकानाथो यो धीरललिताकृतिः ॥
सिंहमध्यस्तु गोपालस्त्रिभङ्गललिताकृतिः ।
गोविन्दो गोपिकानाथः पीनवक्षस्थलो विटः ॥
त्रिसन्ध्यमन्यदन्यद्धि माधुर्य्यं गोविदां पतौ ।
गोवर्द्धनदरीधातु–पल्लवादि–विचित्रिते ॥
बाल्यतः समतिक्रान्तः कैशोरान् परतो गतः ।
वगाहमानः कन्दर्पं श्रीगोविन्दो विराजते ॥
नानारत्नमनोहारीण्येतस्मिन् योगपीठके ।
सहजो हि प्रभावोऽयं माचिरात् परितुष्यति ॥
अन्येषु सिद्धपीठेषु या सिद्धिर्बहुहायनैः ।
वृन्दावने योगपीठे सैकेनाह्ना प्रजायते ॥
प्रातर्वालार्क–सङ्काशं सङ्कवे मङ्गलच्छवि ।
मध्याह्ने तरुणार्काभं पराह्ने पद्मपत्रवत् ॥
सायं सिन्दूरपूराभं रात्रौ च शशि–निर्मलं ।
तमस्विनीष्विन्द्रनीलमयूखमेचकप्रभं ॥
वर्षासु च सदाभाति हरित्तृणमणिप्रभं ।
शरत्सुचन्द्रबिम्बाभं हेमन्ते पद्मरागवत् ॥
शिशिरे हीरकप्रख्यं वसन्ते पल्लवारुणं ।
ग्रीष्मे पीयूषपूराभं योगपीठं विराजते ॥
माधुरीभिः सदाच्छन्नमशोकलतिकावृतं ।
अधश्चोर्द्ध्वं महारत्न–मयूखैः परितो वृतम् ॥
चन्द्रावली–दुराधर्षं राधा–सौभाग्यमन्दिरं ।
श्रीरत्नमण्डपं नाम तथा श्रृङ्गार–मण्डपं ॥
सौभाग्य–मण्डपं नाम महामाधुर्य्यमण्डपं ।
साम्राज्यमण्डपं नाम तथा कन्दर्प–मण्डपं ॥
आनन्द–मण्डपं नाम तथा सुरत–मण्डप ।
इत्यष्टौ योगपीठस्य नामानि शृणु पार्व्वति ॥

नामाष्टकं यः पठति प्रभाते, श्रीयोगपीठस्य महत्तमस्य ।
गोविन्ददेवं वशयेत् स तेन, प्रेमानमाप्नोति परस्य पुंसः ॥
इत्यूर्द्ध्वाम्नाये योगपीठ–प्रकाशनो नाम एकोनत्रिंशपटलः ।

अथ मन्त्रमय्यां सदाचारविधिर्लिख्यते । मन्त्रमयी द्विधा । तत्र श्रीभागवतादि-वर्णित–जन्मकर्मगोचारणादि-लीला एकविधा; सा तु स्मरण मङ्गल-श्रीगोविन्द-लीलामृताद्यनुसारेण कर्त्तव्या । द्वितीया तु अर्चायमानविशेष-मौनमुद्राढ्य-श्रीविग्रहहरिशेष-सेवा । सा च सर्वस्मृति-सम्मता श्रीहरिभक्तिविलासे (३य, ८म, विः) लिखितास्ति । तदनुसारेण प्रेमयुक्तया भक्त्या कर्त्तव्या । तस्मात् किञ्चित् प्रकाश्य लिख्यते;—ब्राह्ममूहूर्त्तादुत्थाय पूजकादयः सर्वे पार्षदाः सेवानामापराध-रहिता भगवत् परिचर्य्यां विना प्रसादान्नमप्यस्वीकुर्व्वन्तः, किं पुनर्भगवद्द्रव्यं स्वेच्छया वलात्कारेण वा । विधिवत् गुर्वादिप्रणाम-दन्तधावन-यथोचितस्नानादिविधि कृत्वा स्व सेवायां सावधानाः श्रीमन्दिरे प्रविशन्ति । पूजकस्तु विधिवत् घण्टादिवाद्यं कृत्वा प्रभोः श्रीमदीश्वर्य्याश्च प्रबोधनं कारयेत् । ग्रीष्मशीतवर्षाद्यनुसारेण देवादिदुर्लभ-सेवां (यथा साधकः सिद्धरूपेण मानसीं लीलां दण्डात्मिकां भावयेत्, तथा तेनैव गुरुपरम्परया रागानुगा–मतेन मौन--मुद्राढ्य; दण्डात्मिका लीला सेवा चैका, नाम्ना भेदः पृथग् भवेत्; अतस्तयोरैक्य-सेवनं च)। ततः श्रीमुखप्रक्षालनादिकं; यथा श्रीगोविन्द-लीलामृते (१।२४)—

'समुच्छ्रिपाणिद्वयमुन्नमय्य, विमोटयन् सोऽथ रसालसाङ्गम् ।
जृम्भाविसर्पद्दशनांशुजाल,-स्तमालनीलः शयनादुदस्थात् ॥'

तद्यथा—'उत्थाय तल्पवरतः स वरासनस्थो

दत्तैर्जलैः कनकझर्झरिनालतोऽपि ।
सरकारतः पतितपत्रविनिर्मितेन
वीटीवरेण परिममार्ज सुदिव्यदन्तान् ॥
एवं श्रीमदीश्वर्य्यश्च ( श्रीकृष्णाह्निक-कौमुद्यां २।४६, ५२ )—
'उत्थाय तल्पतलतः कनकासनस्था
निद्रावसान-विगलन्नियतव्यवस्था ।
सा पादपीठमधिदत्तपदारविन्दा
रेजे तदा परिजनैर्विहिताभिनन्दा ॥
आमृज्य सूक्ष्मवसनेन सितेन कान्तान्
सा दन्तकाष्ठशकलेन विघृष्टदन्तान् ।
ताम्वुलरागपरभागवतीं मनोज्ञां
जिह्वां विशोधनिकया व्यलिखद्रसज्ञाम् ॥'
ततः सुस्वादुमिष्टदधिसमर्पणं; ततो मङ्गलमारात्रिकं; तत्र ध्यानं—
'कर्पूरावलिनिन्दि चारुवसनं विभ्रन्नितम्वे वह-
न्नुष्णीषं वरमूर्ध्नि कान्तमरुणं निद्राविमिश्रेक्षणम् ।
स्वीकुर्वन् सुखदं मनोरथकरं माङ्गल्यमारात्रिकं
गोविन्दः कुशलं करोति भवतो-रात्र्यन्तकाले सदा ॥'
ततो हैमन्ते फलगुला-धारणं—
कौशेयवस्त्र-परिनिर्मित-फलगुलाख्यं
प्रालेय-वारणकं वहुमूल्यलभ्यम् ।
सौवर्णचित्र परिचित्रित-सर्वदेश-
मामस्तकात् पदयुगावधि शोभमानम् ॥
गोविन्दमादिपुरुषं व्रजराजपुत्रं
पश्यन्तमग्निममलं भगवन्तमीड़े ॥
वर्णेनारुणमतुलं वहुरत्नचित्रचित्रितफलगुलकम् ।
विभ्राणं गोविन्दं विहसद्वदनं कदा पश्ये ॥
अथ **ग्रीष्मे तनियाधारणं**—
सूक्ष्मवस्त्रनिर्मितं त्रिभागरूपखण्डितं ।

सर्वप्रान्तदेशस्वर्णसूत्रमौक्तिकाश्चितं ।।
कृष्णदेवमध्यदेशराजितं विराजितं ।
ग्रीष्मतापशोषकं सुशीतवस्त्रमाश्रये ।।

**मुकुलितकञ्चुक-धारणं—**

उष्णीषं दधदरुणं घटीं विचित्रां तदुपरि च बिभ्राणः
मुकुलित-कञ्चुकवन्धः श्रीगोविन्दो हृदि स्फुरतु ।।

ततः सर्वे मिलित्वा आरात्रिक-दर्शनं । एवं देवमुणीन्द्रादयोऽपि गीतावाद्यकीर्त्तनादि कुर्वन्ति ।

( श्रीश्रीशिक्षाष्टकम्—१ )

चेतोदर्पणमार्जनं भवमहादावाग्निनिर्वापणं
श्रेयः कैरवचन्द्रिकावितरणं विद्यावधू जीवनम् ।
आनन्दाम्वुधिवर्द्धन प्रतिपदं पूर्णामृतास्वादनं
सर्वात्मस्नपनं परं विजयते श्रीकृष्णसंकीर्त्तनम् ।।

अथ दर्शनफलं—

सर्वाभीष्टप्रदं श्रीमन्मङ्गलारात्रिदर्शनं ।
प्रेमभक्तिप्रदं सर्वदुःस्वप्नादि-निवर्त्तकं ।।

एवं पाचकादयः सर्वे स्वस्वसेवायां परमभक्त्या च सावधाना वर्त्तिष्यन्ते । सेवायां मुख्योऽधिकारी तु स्वप्रतिनिधिं कर्मचारिणमुदिश्य तस्मिन् स्वसर्वकर्म समर्प्य सेवायां सावधानः स्वयं करिष्यति अभावे पूजकादिद्वारा च । एवं श्रीमदीश्वर्य्या दधिभोजनं मङ्गलनीराजनञ्च कर्त्तव्यम् ।।

**अथ भृङ्गारारात्रिविधि लिख्यते । ततः सुगन्धतैला**दिभिर्मर्द्दनोन्मार्जनादिकं हिम-ग्रीष्म-वर्षादिकालोचितमुष्णशीतल-जलादिभिः स्नानं च, सूक्ष्मवस्त्रेन श्रीमदङ्ग-सम्मार्जनं; यथा श्रीगोविन्दलीलामृते ( ४।८-१४ )

तमागतं स्नापनवेदिकान्तरं, भृत्यः समुत्तार्य्य विभूषणं तनोः ।
सुकुञ्चितं चीननवीनमंशुकं, सारङ्गनामा लघु पर्य्यधापयन् ।।

अभ्यज्य नारायणतैललेपैः, प्रत्यङ्गनानामृदुवन्धपूर्वम् ।
सुवन्धनामा क्षुरिसूनुरस्य, प्रेम्णाङ्गसम्मर्द्दनमाततान ।।
उद्वर्त्तनेनास्य मुदा सुगन्धः, शीतेन पीतेन सदा सुशीतम् ।
स्निग्धेन मुग्धो नवनीतपिण्डा,-दुद्वर्त्तयामास शनैस्तदङ्गम् ।।
धात्रीफलार्द्रकल्केन केशान् शीतसुगन्धिना ।
स्निग्धः स्निग्धेन सुस्निग्धान् कर्पूरोऽपि समस्करोत् ।
मन्दपक्व-परिवासितकुम्भ,-श्रेणि-संभृतजलैरथ दासाः ।
शातकुम्भ-घटिकात्तविमुक्तैः, स्वेश्वरं प्रमुदिताः स्नपयन्ति ।।

इति श्रीगोविन्ददेवस्य साक्षाद्व्रजेन्द्रनन्दनत्वेन पूजकादिभि-र्भावयुक्तेन मनसा स्नानादिकं कर्त्तव्यम् । ततः पीतारुणादि-नाना विधस्वर्णचित्रवस्त्रादि,एवं स्वर्णरूप्यमौक्तिकरत्नजटित-नानालङ्कार गुञ्जामालादि-विदग्धपूजकेन परिधापनीयम् । कदाचित् सेवावसरे लोकोत्तर-चमत्कारस्वादपक्वान्नादिकं प्रेमयुक्तेन मनसा तत्सेवा-सुख-पराधीनोऽर्पयेत् ।

**तत्र कञ्चुकादि-धारणं यथा (भ, र, सि, द १।१८०)-**

'स्मेरास्यः परिहित-पाटलाम्वरश्री-
श्छन्नाङ्गः पुरटरुचोरुकञ्चुकेन ।
उष्णीषं दधदरुणं धटीं च चित्रां
कंसारिर्वहतु महोत्सवे मुदं नः ।।'

**क्वचिच्च नटवरवेशं यथा ( भ, र, सि, द १।१८१)**

'अखण्डित-विखण्डितैः सितवसन्तनीलारुणैः
पटैः कृतयथोचित-प्रकटसन्निवेशोज्ज्वलः ।
अयं करभराड़िव प्रचुर-रङ्गश्रृङ्गारितः
करोति करभोरु मे घनरुचि मुदं माधवः ।।'

ऊद्‌र्ध्वाम्नाये---

" ध्यायेद्‌गोविन्ददेवं नवघनमधुरं दिव्यलीला नटन्तं
विस्फूर्जन्मल्लकच्छं करयुग-मुरलीरत्नदण्डाश्रितञ्च ।

अंसन्यस्ताच्छपीताम्बर-विपुलदशाद्दन्द्रगुच्छाभिरामं
पूर्णश्रीमोहनेन्द्रं तदितरचरणाक्रान्तदक्षाङ्घ्रिनालम् ॥'
'एव ध्यात्वा जपेन्मन्त्रं यावल्लक्ष-चतुष्टयं ।
तिलाज्यहवनस्यान्ते योगपीठेश्वरी यजेत् ॥
चम्पकाशोकतुलसी-कह्लारैः कमलैः स्तथा ।
राधागोविन्द-युगलं साक्षात् पश्यति चक्षुषा ॥
श्रीमन्मदनगोपालोऽप्यत्रैव सुप्रतिष्ठितः ।'

एवं श्रीतापन्यां ( पूर्व ४० )—

'कृष्णाय गोपीनाथाय गोविन्दाय नमो नमः ॥'

**तत्र आकल्पः ( भ, र, सि, द १।३५।४ )—**

'केश-वन्धनमालोपो मालाचित्रविशेषकः ।
ताम्बूलकेलिपद्मादिराकल्पः परिकीर्त्तितः ॥

यथा ( भ, र, सि द १।३५८ )—

ताम्बूलस्फूरदाननेन्दुरमलं धम्मिल्लमुल्लासयन्
भक्तिच्छेदलसत्सुघृष्टघुसृणालेपश्रिया पेशलः ।
तुङ्गोरःस्थलपिङ्गलस्रगलिकभ्राजिष्णुपत्रागुलिः
श्यामाङ्गद्युतिरद्य मे सखि दृशो र्दुग्धे मुदं माधवः ॥'

**अथ मण्डनं ( भ, र, सि द १।३५६ )**

किरीटं कुण्डले हारश्चतुष्की वलयोर्मयः
केयूरनूपुराद्यश्च रत्नमण्डनमुच्यते ॥

यथा ( भ, र, सि द १।३६० )—

काञ्ची चित्रा मुकुटमतुलं कुण्डले हारहीरे
हारस्तारो वलयममलं चन्द्राचारुश्चतुष्की ।
रम्या चोर्मि र्मधुरिमधुरे नूपुरे चेति शौरे-
रङ्गैरेवाभरणपटली भूषिता दोग्धि भूषाम् ॥'

**यथा मुकुन्दाष्टके—**

' कनकनिवहशोभानिन्दि पीतं नितम्बे

तदुपरि नवरत्नं वस्त्रमित्थं दधानः ।
कनकनिचितमुष्णीषं दधच्चोत्तमाङ्गे
व्रजनवयुवराजः कोऽपि कुर्य्यात् सुखं ते ।'

एतदुपलक्षणं समयक्रमे ऋतुक्रमे नानावेशभूषादिमुकुलित-वन्धकञ्चुकादिकं ज्ञेयम् । यथा—

उष्णीषं दधदरुणं घटीं विचित्रां तदुपरि च बिभ्राणः ।
मुकुलितकञ्चुकवन्धः श्रीगोविन्दो हृदि न स्फुरतु ॥

यथा—पुष्पैश्चूड़ां मुकुटमतुलं कुण्डले चारुहीरे
वक्षस्यारोहयन्ती विविधसुकुसुमैर्वन्यमाला वहन्तम् ।
जानुन्यारोहयन्तीं भ्रमर-कर्षिणीं बिभ्रतं कान्तयान्यां
नाम्ना तां वैजयन्तीं निजप्रियतमया पश्य गोविन्ददेवम् ॥
गोविन्द कर्णयुगकुण्डलयुग्ममध्ये
कण्ठस्थले करयुगाङ्गुलि-पर्वमध्ये ।
पादाब्जयोरुपरि चाङ्गुलिषु प्रभातितान्
हीरकान् सुकृतिनो हृदि चिन्तयन्ति ॥
मुक्तादिहेमजटित उष्णीषसव्ये मुख्योपरिष्टाच्च ।
हरिहृदयस्थे सुन्दरि हीरकराजे मनो लग्नं ॥

श्रीगोविन्दलीलामृते ( ४।१४ )—

'भक्तिच्छेदाढ्यचर्च्चां मलयजघुसृणं धातुचित्राणि बिभ्रद्
भूयिष्ठं नव्यवासः शिखिदलमुकुटं मुद्रिकाः कुण्डले द्वे ।
गुञ्जाहारं सुरत्नस्रजमपि तरलं कौस्तुभं वैजयन्तीं
केयूरे कङ्कणे श्रीयुतपदककटकौ नूपुरौ शृङ्खलाश्च ॥'

श्रीकृष्णाह्निककौमुद्यां ( ३।१८ )—

'चूड़ाचुम्बितचारुचन्द्रकलसद्गुञ्जालतः कर्णयोः
पुन्नागस्तवकी लवङ्गलतिका श्रीकुण्डला पूर्णयोः ।
श्रीवक्षः प्रतिमुक्त-मौक्तिकलता श्रीरञ्जिगुञ्जा सरः
क्रीड़ाकाननयानकौतुकमना रेजे स पीताम्वरः ॥

अथ पौर्णमास्यादियुगलदर्शनं—

'विद्युद्घनाङ्गौ घनविद्युदम्बरौ
निसर्गमन्दस्मितसुन्दराननौ।
मिथः कटाक्षाशुगकीलितान्तरौ
राधामुकुन्दौ प्रणमामि तौ मुदा॥
श्रीराधा-सहित-श्रीमद्गोविन्दमुखदर्शनं।
यज्ञायुतसमं पुण्यं महारासप्रवेशकं॥

एवं श्रीमदीश्वर्य्या द्वादशाभरण-षोड़शशृङ्गारादिकं कर्त्तव्यं; तद् यथा ( उ, नी राधा ९ )

'स्नाता नासाग्रजाग्रन्मणिरसितपटा सूत्रिणी बद्धवेणी
सोत्तंसा चर्च्चिताङ्गी कुसुमितचिकुरा स्रग्विणी पद्महस्ता
ताम्बूलास्योरुविन्दुस्तवकितचिबुका कज्जलाक्षी सुचित्रा
राधालक्तोज्ज्वलाङ्घ्रिः स्फुरति तिलकिनी षोड़शाकल्पिनीयम्॥

**द्वादशाभरणं यथा—( उ, नी राधा १० )**

' दिव्यश्चूड़ामणीन्द्रः पुरटविरचिताः कुण्डलद्वन्द्वकाञ्ची-
निष्काश्चक्रीशलाकायुगवलयघटाः कण्ठभूषोर्मिकाश्च।
हारास्तारानुकारा भुजकटकतुलाकोटयो रत्नक्लृप्ता-
स्तुङ्गाः पादाङ्गुलीयच्छविरिति रविभिर्भूषणैर्भाति राधा॥'

यथा—

: संगोप्याङ्गाभरणपटलीं रक्तचित्रान्तरीयं
श्रोणी चेलं तदुपरि वरं दण्डिकाख्यञ्च नीलम्॥
सर्वाङ्गानावरयितुमये देवि किन्ते प्रयोज्यं
दृष्ट्वा चान्त र्मुदितमनसोत्फुल्लतामेति नाथः॥
या ते कञ्चुलिरत्र सुन्दरि मया वक्षोजयोरर्पिता
श्यामाच्छादनकाम्यया किल न सा तत्त्वेति विज्ञायताम्।
किन्तु स्वामिनि कृष्ण एव सहसा तत्तामवाप्य स्वयं
प्राणेभ्योऽप्यधिकं स्वकं निधियुगं सङ्गोपयत्येव हि॥'

( भ, र, सि प ५।८ )

मदचकितचकोरीचारुता-चोरदृष्टि-

वदनदमितराकारोहिणीकान्तकीर्त्तिः ।
अविकलकलधौतोद्धूतधौरेयकश्री-
मधुरिममधुपात्री राजते पश्य राधा ॥'

एवं समयानुरूपवस्त्रादि-परिधापनं कर्त्तव्यं, तथा स्वर्णरौप्य-मौक्तिकरत्नजटितनानालङ्कारादिकं च ।

अथ तिलकादिदर्शनार्थमादर्शदर्शनं यथा ( श्रीगोविन्दलीलामृते २।१०४-१०५ ) श्रीमदीश्वर्य्याः—

'तदैव समयाभिज्ञा पुरस्तान्मणिवन्धनम् ।
आदर्शं दर्शयामास सुगन्धा नापितात्मजा ॥
सा कृष्णनेत्र-कुतुकोचित-रूपवेषं
वर्ष्मावलोक्य मुकुरे प्रतिविम्बितं स्वम् ।
कृष्णोपसत्ति-तरलास वराङ्गनानां
कान्तावलोकनफलो हि विशेष-वेषः ॥'

अथ श्रीमदीश्वरस्य श्रीभागवते ( १०।३५।१० )—

'दर्शनीय-तिलको वनमाला,-दिव्यगन्धतुलसीमधुमत्तैः ।
अलिकुलैरलघुगीतमभीष्ट,-माद्रियन् यर्हि सन्धितवेणुः ॥'

तत्र रागानुगीयविधिवत् पूजा-तुलसी-समर्पणं यथा (श्रीभा १०।३०।१

'कच्चित् तुलसि कण्याणि गोविन्द-चरणप्रिये' इत्यादि ।

तद् यथा—

'मातस्तुलसि ! गोविन्दहृदयानन्दकारिणी' इत्यादि ॥

**ततो धूपदीपादि-निवेदनं—**

' सधूपदीपकं श्रीमद्गोविन्द-मुखपङ्कजम् ।
शृङ्गारे ये तु पश्यति ते यान्ति परमं पदम् ।
तेनापि सह दिव्यन्ति तल्लोके शाश्वतीः समाः ॥'

ततः पक्वान्न-निवेदनं,—ततः कर्पूरादि-संस्कृत-ताम्बूल-समर्पणं, ततो नानाविधान्न-व्यञ्जनपिष्टपूप-पायस-सरस-रसालादि निवेदनम् ।

अत्रैव श्रीगोविन्दः प्रिय-पूजारि-गोस्वामिनं प्रति दधिकड़-

मान्नं स्वयं याचितवान्; यथा—

'दधिकड़मान्नं मिष्टं, गोविन्दप्रियपूजकं स्वस्य।
याचित्वा येन नीतं, तं वन्दे स्वयं भगवन्तम्॥'

तत आरात्रिकं, सर्वे मिलित्वा तद्दर्शनम्।

अथारात्रिकदर्शनफलं—

'श्रृङ्गारारात्रिकं नाम गोविन्दस्य सुखावहम्।
प्रेमभक्ति-प्रदातारं दर्शनात् पापनाशकम्॥'

अथ **राजभोगविधि** लिख्यते—वस्त्रभूषादिकं (समर्प्य) तथैव मन्दिरसेवकस्तु तत आगत्य मन्दिरधौतादिकं कृत्वा ततो धूप दीपञ्च (निवेदयेत्) तत्तु सङ्गोपनम्। ततः पाचकाः परम रसिकाः परम-सावधाना नियतेन्द्रिया नानाप्रकारशाकाद्यन्न-व्यञ्जन रोटिका-पूप-पायस-पिष्टकादि-शिखरिणी-रसालादिकं लेह्यचोष्य-पेयचर्व्वषड्रसनिर्मितं सुवर्णपात्रादिषु परिवेषयन्ति, स्वस्वर्त्तुभवं फलादिकञ्च। एवमेकादश्यादिव्रतदिनानि, सदाचारानुसारेण श्री-प्रभोः श्रीमदीश्वर्य्या नित्यनियमित्तपाकरचनादि कर्त्तव्यम्। पूजको नियतेन्द्रियः सावधानः सन् भोजन-सामग्रीं विधिवद् रागानुगीयमतेन दशघटिकान्तः समर्प्य समयान्निवर्त्ति निवसेत्। पूजकस्य तु नैवेद्य समर्पणे विज्ञप्तिर्यथा श्रीरूपगोस्वामिपादैः श्रीपद्यावल्यां (११८)—

'क्षीरे श्यामलयार्पिते कमलया विश्राणिते फाणिते
दत्ते लड्डुनि भद्रया मधुरसे सोमाभया लम्भिते।
तुष्टिर्या भवतस्तवः शतगुणां राधानिदेशान्मया
न्यस्तेऽस्मिन् पुरत स्त्वमर्पय हरे रम्योपहारे रतिम्॥'

आह्निककौमुदीये (३।६, १०)—

'शाकादिक्रमतोऽभितोषवशतः सर्वाणि सद्व्यञ्जना-
न्यादन् मातृमुदे भवेदपि यथा पक्त्रीमनोरञ्जना।
तान् सर्वान् सहभोजिनः सरसया वाचा सहन् हासयन्
भुञ्जध्वं न परित्यजन् किमपीत्येकान्तमाह्लादयन्॥'

'अन्नं व्यञ्जनवत् कियत् कियददंशचक्रेऽन्नवद् व्यञ्जनं

पर्य्याप्तं न तथापि लालसतया वाभूदनुव्यञ्जनम् ।
प्रत्येकञ्च तदिष्टपिष्टककुलं तां गोरसानां भिदा-
मेकैकाञ्च कृताभिनन्दनमदन् संपिप्रिये सर्वदा ॥

पूजकस्तु शीतलजलादि समर्प्य मन्दिरान्निर्गत्य नियम-जपादि कुर्य्यात् । जप-नियमान्ते च विधिवद् घण्टादिवाद्यं कृत्वा श्रीमन्दिरे प्रविश्य ततो जलसेवकेन दत्तपाटलादि-परिवासितयमुनाजलेनाचमनं दत्त्वा सूक्ष्मवस्त्रेण मुखमार्जनादिकं कुर्य्यात् । ततो महाप्रसादानयनं, ततो मन्दिर-सेवकेन मन्दिरमार्जनं, ततस्ताम्बूलादि-समर्पणं, यथा—'एलालवङ्गपरिपूरित-पूगचूर्णैः

कर्पूरपूर-परिवासितचूर्णवृन्दैः ।
पर्णैः सुकर्त्तरि-विखण्डितपार्श्वभागै-
स्तां वीटिकां स वुभुजे वरनागवल्लयाः ॥

ततो ग्रीष्मर्त्तौ नानाविध-सुवासितजल-नानाविधजलयन्त्रादिना सेचनम् । एवं मन्त्रमयनानावीजनादिकञ्च. एवं सुगन्धद्रव्यादि पुरतो धारणं एवं सुगन्धपुष्पादिभिर्माला-कुञ्जकुटीर-रचनं, एवं वर्षादिषु यथायोग्यं ज्ञेयम् । तत आरात्रिकस्य सर्वे मिलित्वा दर्शनम् ।' ततो दर्शनफलं यथा—

'स्वयं भगवतः श्रीमद्गोविन्दस्य कृपाम्बुधेः ।
महाराजोपचाराख्यमारात्रिकमनुत्तमम् ॥
य इदं श्रद्धया देवि ! पश्येन् मन्त्री सुभक्तिमान् ।
स सर्वकामान् लभते भक्तिं तत्पादयोः पराम् ॥'

एवं श्रीमदीश्वर्य्या भोजनाचमनताम्बूलादि-समर्पणं च; तथाहि—

'ताभ्यः परिविवेशान्नं तुलस्या रूपमञ्जरी ।
स्नेहेन मोहिनी यद्वद्देवताभ्योऽमृतं क्रमात् ॥'

ततो रत्नखट्टोपरि शय्यादि-रचन तत्र भावयुक्तेन मनसा शयनं कारयेत् ।

ततः सेवायां मुख्योऽधिकारी पूजक-पाचकादि-सर्वांस्तथाकिञ्चनान् वैष्णवानानीय तैर्मिलित्वा महाप्रसादस्य महद्भक्त्या च

'अनादि पुरतो न्यस्तं चक्षुषा गृह्यते मया।
रसं दासस्य जिह्वायामश्नामि कमलोद्भव॥
भुक्तं यन्निखिलाघ-सङ्घशमनं सर्वेन्द्रियाह्लादकं
संसाराद्विनिवर्त्तकं हरिपदद्वन्द्वे पुनः प्रापकम्॥
श्रीगोविन्दस्तत् प्रसादश्चरणामृतमेव च।
वस्त्रचन्दनमाल्यादि तुलसी चैकरूपकम्॥'

स च पुनर्मध्यमाधिकारि-गुणमाश्रित्य तेषु वैष्णववर्गेषु यथोचित मर्य्यादामार्ग-रक्षणाय ' कृपोपेक्षा' इत्यादि-दिशा तत्र भगवद्भक्ताय च वस्त्रादि वार्षिकं दत्त्वा स्नेहयुक्तेन श्रीश्रीसेवायां सावधानं कृतवान्। ततः सर्वे पूजकादयः स्वस्वदेहादि-व्यापारं कृत्वा श्री-भगवत्कथा-श्रवणं कुर्य्युः। ततः सर्वे स्नानादिकं कृत्वा स्वस्वसेवायां सावधाना भवन्ति।

ततोऽपराह्ने विधिवद् द्वारोद्घाटनं कृत्वा श्रीभगवत् प्रबोधनं ततः श्रीमुखप्रक्षालनादिकं, तस्मात् पक्वान्नभोजनं तस्मादेला-लवङ्ग कर्पूरादि-संस्कृत-ताम्बूलादि-समर्पणम्। ततो धूपदीपादि-समर्पणञ्च तद्दर्शनफलञ्च—

'उत्थापने धूपदीपं ये पश्यन्ति नरा भुवि।
ते यान्ति परमं विष्णोः पदं शाश्वतमव्ययम्॥

'कनकनिवहशोभा' इत्यादि। एवं श्रीमदीश्वर्य्यश्च।

अथ सन्ध्यारात्रिक—विधि लिख्यते—सन्ध्यायां पक्वान्न-निवेदनं, ततः शीतलजल-सुसंस्कृतश्ताम्बुलादिकञ्च, ततो नीराजनं महामङ्गलञ्च। ततः पश्यतां देवमुनीन्द्रमनुष्यादीनां गीतवाद्यैः सह जय जय-शब्द; तथाहि आनन्दवृन्दावनचम्पां (१३।१४१)—

' गोधूली धूम्रकम्रालक-लसदलिकस्तिर्य्यगुष्णीषबन्धः
प्रेङ्खोलत् कैङ्किरात-स्तवक-नवकलो बर्हिबर्हं दधानः।
आवलात् कुण्डलश्रीर्दिनमणिकिरणक्रान्तकर्णोत्पलान्तो
निर्यन्-किञ्जल्करेखाच्छुरितमृदुतरस्विन्नगण्डान्तलक्ष्मीः॥'

श्रीभागवते (१०।३५।१५)—

'सवनशस्तदुपधार्य्य सुरेशाः, शक्रशर्वपरमेष्ठिपुरोगाः ।
कवय आनतकन्धरचित्ताः, कश्मलं ययुरनिश्चिततत्त्वाः ॥'

ततो दर्शनमाहात्म्यं—

'सन्ध्यायां कृष्णदेवस्य सारात्रिकमुखं नराः ।
ये पश्यन्ति तु ते यान्ति तद्धाम परमव्ययम् ॥'

एवं श्रीमदीश्वर्य्याश्च ।

ततः **शयनारात्रिकविधि** लिख्यते । ततः पूजकः शृङ्गार मणिमण्डनादिकमुत्तार्य्य यथारहः युग्मवस्त्रादि-परिधापनं, एवं माल्य लेपनादेश्च, ततः कियत्क्षणं दर्शनार्थं विरामश्च ।

'कर्पूरावलिनिन्दि चारु वसनं विभ्रन्नितम्वे वह-
न्नुष्णीषं वरमूर्द्धनि कान्तिरुचिरं फुल्लाब्जनिन्दीक्षणम् ।
यामिन्याः सुखदं मनोरथकरं स्वीकृत्य रूपं मुदा
गोविन्दः कुशलं करोति भवतां स्नेहं वितन्वन् सदा ॥'

ततो भोजन-संस्करणं, सुमिष्ट-सुस्वादु-दुदर्शनीय-लोक-प्रशंस्य-स्वात्मरोचक-भगवद्रोचक-नानाप्रकाराान्नव्यञ्जन-पक्वान्न दुग्धान्नपिष्टकादि-समर्पणम् । तत्र गोपनीय-धूपदीपम्, ततो भोजन-निमित्तं समयापेक्षणम् ।

'यत्सेवया वशः श्रीमद्गोविन्दो नन्दनन्दनः ।
पयसा संयुतं भक्तं याचते करुणाम्वुधिः ॥'

इति पूर्वं ( ११५ ) वर्णितवान् ।

तस्मादाचमनं, मुखमार्जनार्थं वस्त्रसमर्पणं, ततो महाप्रसाद नयनं, ततो मन्दिरसेवकेन भोजनस्थल-मार्जनं, तस्मादेला-लवङ्ग जातिफलकर्पूरादि-संस्कृत-ताम्वुलादि-समर्पणम् ।

ततो हेमन्ते फलगुलधारणम्—

'कौशेयवस्त्रनिर्मितफलगुलाख्यं
प्रालेयवारणकरं वहुमूल्यलभ्यम् ॥
सौवर्णचित्र-परिचित्रित-सर्वदेश-
मा मस्तकात् पदयुगावधि शोभमानम् ॥

गोविन्दमादिपुरुषं व्रजराजपुत्रं
पश्यन्तमग्निममलं भगवन्तमीड़े ॥'

'वर्णेनारुणमतुलं, बहुरत्न-चित्रचित्रितं फल्गुलकम् ।
बिभ्राणं गोबिन्दं विहसद्वदनं कदा पश्ये ॥'

अथ ग्रीष्मे तनियाधारणं यथा—

'सूक्ष्मवस्त्रनिर्मितं त्रिभागरूपखण्डितम् ।
सर्वं प्रान्तदेश-स्वर्ण-सूत्रमौक्तिकान्वितम् ।
कृष्णदेवमध्यदेशराजितं विराजितम् ।
ग्रीष्मतापशोषकं सुशीतवस्त्रमाश्रये ॥

उष्णीषं दधदरुणं, धटिं विचित्रां तदुपरि च बिभ्राणः ।
मुकुलित-कञ्चुकवन्धः, श्रीगोविन्दो हृदि नः स्फुरतु ॥'

एवं कर्पूरागुरु-परिवासित-शीतलजलं यमुनाया नानाविधसुगन्ध द्रव्यं वीजनादिकञ्च ।

ततो दशघटिकान्तरारात्रिकं तद्दर्शनफलं—

'ये पश्यन्ति जनाः श्रेष्ठं शयनारात्रिकं हरेः ।
ते तु गोविन्ददेवस्य कृपापूर्णा न संशयः ॥'

तत्र रत्नखट्टोपरि शय्यादि-निर्माणम् । तत्र खट्टाधो रात्रि सेवनार्थं सुवासित-शीतलजल पक्वान्नताम्बूलादि-स्थापनम् । ततो मन्दिरान्निष्क्रम्य भावयुक्तेन मनसा शयन-समयापेक्षणम् । एवं श्रीमदीश्वर्य्याश्च; ग्रन्थविस्तारभया विस्तार्य्यं न लिख्यते । एवं पञ्चविधारात्रिकदर्शनफलं—

'मङ्गलारात्रिमारभ्य चान्ते च शयनावधि ।
एवमारात्रिकं पञ्च ये पश्यन्ति जना भुवि ।
ते सर्वे वाञ्छितं प्राप्य पुत्रं पौत्रं धनन्तथा ।
अन्ते गोविन्ददेवस्य कृपया यान्ति तत्पदम् ॥'

**श्रीविजयगोविन्दो यथा—**

'श्रीराधिका-माधविका-तमालं, सखी-तती-वल्लिवसन्तवायुम् ।
राधा-सुपद्मालि-सरोजबन्धुं, गोविन्दमीडे विजयाभिधम्‌पुं ॥

'गर्भजन्मवतां तेषां कंसादीनां जयाज्जय: ।
मनोजन्म–कामजयाद्विजय: परिकीत्तित: ।।
एवं गवामिन्द्र इत्यादे र्गोविन्द इति कथ्यते ।
तस्मात् विजयगोविन्दं बुधा एवं बदन्ति हि ।।
' अथवा यस्य भजनात् कामाद्यरिजयात्तु तं ।
कृत्वा विजयगोविन्दं प्रवदन्ति मनीषिण: ।।
वन्दे विजयगोविन्दं गोविन्दाद्वैतविग्रहं ।
मनो लगति गोविन्दे यस्य सन्दर्शनाद्ध्रुवं ।।

**अथ श्रीमहाप्रभो: श्रीवृन्दावनागमनकथा प्राचीना—**

'श्रीमत्काशीश्वरं वन्दे यत्प्रीतिवशत: स्वयं ।
चैतन्यदेव: कृपया पश्चिम देशमागत: ।।'

**अथ श्रीमहाप्रभुपार्षद-श्रीमुख-श्रुतकथा—**

"एकदा श्रीमहाप्रभु: श्रीकाशीश्वरं कथितवान्-भवान् श्रीवृन्दावनं गत्वा श्रीरूपसनातनयोरन्तिकं निवसतु' इति। स तु तच्छ्रुत्वा हर्षविस्मितोऽभूत् । सर्वज्ञशिरोमणिस्तद्धृदयं ज्ञात्वा पुन: (कथितवान् )—श्रीजगन्नाथपार्श्ववर्त्तिनं श्रीकृष्णविग्रहमानीय कथितबान् स्वयंभगवतानेन ममाभेदं जानीहि। अत: एनं सेवस्व। तच्छ्रुत्वा स तूष्णीं वभूव। ततो विग्रहस्य गौरवपुषा श्रीकृष्णेन महाप्रभुणा च एकत्र भोजनं कृतम् । तत: श्रीकाशीश्वरो दण्डवत् प्रणम्य गौरगोविन्दविग्रहं श्रीवृन्दावनं प्रापितवान् । सोऽयं श्री गोविन्द-पार्श्ववर्त्ति-श्रीमहाप्रभु: । अतो यथा श्रीगोविन्दस्य सेवा-विधि: श्रीमहाप्रभोरपि तथा ग्रन्थविस्तारभियाविस्तार्य्यं न लिख्यते ।

'पदकान्त्या जितमदनो, मुखकान्त्या मण्डितकमलमणिगर्व: ।
श्रीरूपाश्रितचरण: कृपयतु मयि गौरगोविन्द: ।।'

**एवं श्रीमहाप्रभोर्जन्मयात्रादि कर्त्तव्यं, तथा श्रीमहाप्रभो: पार्षदानां सेवा, मुख्याधिकारिणामप्रकटतिथिपालनञ्च कर्त्तव्यम् ।।**

**अथ श्रीवृन्दादेवी-माहात्म्यं—**

'वृन्दा वन्दितचरणा, नेत्रादिभिर्वृन्दादिकवने ।
यद्वाचा वृक्षलताः, कालेऽकाले पुष्पिताः स्युः ॥

चूड़ायां चारुरत्नाम्बरमणिमुकुटं बिभ्रतीं मूर्ध्नि देवीं
कर्णद्वन्द्वे च दीप्ते पुरट-विरचिते कुण्डले हारिहीरे ।
निष्कं काञ्चीं सुहारान् भूजकटकतुलाकोटिकादींश्च वन्दे
वृन्दां वृन्दावनान्तः सुरुचिरवसनां श्रीलगोविन्द-पार्श्वे ॥'

श्रीवृन्दायाश्चरणकमलं सर्वलोकैकवन्द्यं
भक्त्या संसेव्यमानं कलि-कलुषहरं सर्ववाञ्छाप्रदञ्च ।
वक्तव्यञ्चात्र किं वा यदनुभजनतो दुर्लभे देवलोकैः
श्रीमद्वृन्दावनाख्ये निवसति मनुजः सर्वदुःखैर्विमुक्तः ॥

अस्याः स्वप्राज्ञा लिख्यते,—एकदा रात्रौ सुप्तं श्रीमन्प्रभुं श्रीहरिदासगोस्वामिनं प्रति वृन्दयादिदेशे—'अये श्रीमद्राधा-गोविन्दसेवाधिकारिन् ! मत्प्रभोः श्रीमहाप्रसादान्नं दातुमर्हसि । एवं सेवावस्त्रभूषादिकं श्रीमदीश्वर्य्याश्च ।'

**अथ वार्षिकयात्राविधि लिख्यते—**

'भक्तानां व्यदधन्महोत्सवमयं नेत्रार्बुदानां परं ।
स्वीकुर्वन् प्रथमं सुमङ्गलतरं स्नानञ्च पञ्चामृतैः ।१।
दधिमधुखण्डघृतादीनि शिरसि दधतो देवस्य ।
किमिन्द्रनीलशैलोपरि शतधारा जाह्नवी सरति ॥२॥
पञ्चम्यां प्रथमे वसन्तसमये गोविन्ददेवो हरिः ।
यं दृष्ट्वा भव-पद्मजप्रभृतयः सद्यः कृतार्थं गताः ॥३॥
छलतो ब्रह्मादिदेवाश्चरणामृतपानतो लोभात् ।
धृतमनुजरूपवेशाः पार्षदभक्तान् संयाचते ॥४॥
पीतं कञ्चुकमतुलं चोष्णीषं चित्रधटीं धृतं देवं ।
दीव्यन्तं निजप्रियया श्रीगोविन्दं सखे ! पश्य ॥५॥

यद्यपि माघश्रीपञ्चमीतः फाल्गुनीपौर्णमासी-पर्य्यन्तं वसन्तोत्

सर्वः प्रवर्त्तते, तथाहि फाल्गुनशुक्लदशमीतः चैत्रकृष्णप्रतिपत्पर्यन्तं मुख्यो विधिः। तेषु पञ्चदिनेषु प्रभुः प्रियया सहितः सदा विराजते।

'ब्रह्मादिदेवताः सर्वे परमानन्द-निर्वृताः।
इन्द्रादिभिर्मिलित्वात्र वसन्ति व्रजमण्डले॥'

सर्वव्रजमण्डलमुख्यत्वे श्रीगोविन्दस्थलं ज्ञेयं। वसन्तवस्त्रादिकञ्च परिदधाति,—

'दिव्यै रत्नैजटितमुकुटं कुण्डले चारुहारं
निष्कं काञ्चीं सुपदकटकावङ्गदे कङ्कणे च।
पीतं वासश्चतुष्कं मणिगण-घटिता मुद्रिकाश्चाङ्गलिषु
बिभ्राणं वामपार्श्वे निजप्रियतमया सेवितं देवमीडे॥

तथा—

चूड़ारत्नं सुदिव्यं मणिमय मुकुटं कुण्डले तारहारान्
निष्कं काञ्चीशलाका युगवलयघटा नूपुरान्मुद्रिकाश्च।
श्रोणौ रक्तं दुकूलं तदुपरमतुलं चारुनीलं दधानां
बिभ्रन्तीं वामपार्श्वे व्रजकुमुदविधो राधिकामाश्रयेऽहम्॥

**अथ वसन्तोत्सवः—**

'नानाप्रकार-पटवासचयान् क्षिपन्त
पौष्पादि-कन्दुकगणान्मृदुकूपिकाश्च।
प्रेम्णा सुगन्धसलिलै र्जलयन्त्रमुक्तैः
श्रीपूजक प्रभृतयः सिषिचुः स्वदेवम्॥'

नानावर्णैर्गन्धचूर्णैः प्रपूर्णै,–रादौ भूर्द्यौ व्यानशे दिक् विदिक् च।
गन्धाम्बूनां वृष्टिसंछिन्नमूलै,–र्लेभे पश्चाच्चित्रचन्द्रातपत्वम्॥'

**अथ श्रीरामनवमी—**

'उच्चस्थे ग्रह-पञ्चके सुरगुरो सेन्दौ नवम्यान्तिथौ
लग्ने कर्कटके पुनर्वसुयुते मेषं गते पूषणि।
निर्गन्धुं निखिलाः पलाशसमिधो मेध्यादयोध्यारामे
आविर्भूतमभूदपूर्वविभवं यत् किञ्चिदेकं महः

वन्दामहे महेशानं हरकोदण्ड-खण्डनम्।
जानकीहृदयानन्द-चन्दनं रघुनन्दनम्॥'

अथ दोलोत्सवः—

श्रीमद्वृन्दारण्य-कल्पागमूले, नानापुष्पैर्दिव्यहिन्दोलमध्ये।
श्रीमद्राधा-श्रीलगोविन्ददेवौ, भक्तालीभिः सेवितौ संस्मरामि॥

'पुष्पैश्चूड़ा मुकुटमतुलं कुण्डले चारुहारान्।
वक्षस्यारोहयन्तीर्विविध-सुकुसुमैर्वन्यमाला वहन्तम्।
जानुन्यारोहयन्तीं भ्रमरकर्षिणीं बिभ्रतं कान्तयान्यां
नाम्ना तां वैजयन्तीं निजप्रियतमया पश्य गोविन्ददेवम्॥
'पुष्पैः कुञ्जावलि-विरचना पुष्प-चन्द्रातपश्च
दोला नानाकुसुम-रचिता पुष्पवृन्दैश्च वेणुः।
पुष्पारण्यं लसति परितः कृत्रिमं देवसृष्टं
चेत्थं दोले प्रिय-परिजनैः सेव्यते देवदेवः॥
अग्रतः पृष्ठतः पार्श्वे गोविन्दं प्रियया युतम्।
हिन्दोले दोलयामासुस्तत्सेवकजना मुदा॥
दोलायामतिलोलायां सा कान्ता भयवेपिता।
कान्तमालिङ्ग्य हृष्टा तैः प्रेमभक्तैस्तदोज्ज्वलैः।
जय वृन्दावनाधीश जय वृन्दावनेश्वरि!
जय नन्दानन्दकन्द सर्वानन्द-विधायक!!'
इति ब्रह्मादयो देवा गायन्तो दिवि हर्षतः।
पुष्पवर्षं विकुर्वन्ति स्वस्वसेवन-तत्पराः॥
गन्धर्वविद्याधरचारणादयो मुनीन्द्रदेवेन्द्रगणाः समाहिताः।
तां दोलिकां दोलयितुं समुत्सुकाः स्वायोग्यतामेत्य ततोऽवतस्थिरे॥
ये मानवा भाग्यभाजो दिवि देवास्तथैव च।
तैर्हृष्टः प्रियया युक्तो गोविन्दो दोलनोत्सवे॥

अथ चन्दनोत्सवः (आर्याछन्दः)—

'मम कथते कुलमकुलं वैशाखी शुक्लतृतीया शुभदा।

यस्यां श्रीगोविन्दश्चन्दनपङ्कैः सेवितो भक्तैः ।।
दिव्यैश्चन्दनपङ्कैः कुङ्कुमघनसारमिश्रितैर्देवं ।
सर्वाङ्गेषु विलिप्तं वन्दे श्रीगौरगोविन्दं ।।
'मस्तकोपरि चोष्णीषे सर्व्वाङ्गे कञ्चुकोपरि
घनसाराश्विघुसृणचन्दनद्रव-चर्चितः ।
अभितो भक्तवृन्देन गीतावादित्रमङ्गलैः
सेवितो गौरकृष्णोऽयं करोतु तव मङ्गलं ।।
यथा--'वैशाखं तु समारभ्य चाश्विनावधि यत्नतः ।
सुवीजनन्तु कर्त्तव्यं भक्तैर्यन्त्रादिना हरेः ।।
गन्धचन्दनसंमिश्रैर्जलैरत्यन्तशीतलैः ।
निषेचनं प्रभोरग्रे जलयन्त्रविनिःसृतैः ।।'

**अथ श्रीनृसिंहचतुर्द्दशी—**

' आयाति श्रीनृसिंहस्य शुभा ज्यैष्ठी चतुर्दशी ।
धिनोति चान्तरं सा मे महोत्सवविधानत. ।।१।।
सर्वावतारवीजस्य स्वयं भगवतो हरेः ।
श्रीमद्गोविन्ददेवस्य नृसिंहादेरभेदतः ।।२।।
तत्तज्जन्मदिनेष्वेव सर्वेषु विधिपूर्वतः ।
उत्सवः क्रियते भक्तैर्गीतिवादित्रनिस्वनैः ।।३।।
चतुर्दशीं समारभ्य दिव्यान्नमतियत्नतः ।
नाम्ना पर्य्युषितं यत्तु दध्यादिकसमायुतं ।।४।।

**अथाषाढ़े रथारूढ़विधिः—**

' आषाढ़ीया तिथिः शुक्लद्वितीया शुभदायिनी ।
उन्मादयति देवस्य रथारूढ़परिष्क्रिया ।।'

अत्र भोजनसामग्री द्विगुणीकृत्य कर्त्तव्या । भूषावेशादिकं सर्वं महाराजकुमारत्वेन कर्त्तव्यम् ।

'आयाता सखि राधे, तव सुखदा श्रावणतृतीयेयं ।
कारय वहुमणिमण्डन,–मतुलं दोलां समारभ्य ।।'

अतो व्रजमण्डलप्रसिद्धायां श्रावणशुक्लतृतीयायां श्रीवृषभानु-नन्दिन्याः श्रीमदीश्वर्य्या दोलारूढ़महोत्सवो यत्नतः कर्त्तव्यः। एवं पवित्रा द्वादशी सौभाग्यपौर्णमासी च।

**अथ भाद्रे श्रीजन्माष्टमी–**

'यस्मिन् दिने प्रसूतेयं देवकी त्वां जनार्द्दन!
तद्दिनं ब्रूहि वैकुण्ठ कुर्मस्ते तत्र चोत्सवं ॥१॥
स्फुरति कथं मम सततं, वामनेत्रं विचारय सखि त्वं।
ज्ञातं चायातीदं, जन्मदिनं कृष्णचन्द्रस्य ॥२॥
भाद्रे तु भद्रदा चेयं श्रीहरेर्जन्मनस्तिथिः।
लोकतोविधितस्तत्र चोत्सवः क्रियते बुधैः।३।

नर्दन्तो दधिधृतकर्दमेषु भक्ताः कूर्दन्तः पुनरपि तत् क्षिपन्त आरात् अन्योऽन्यं शिरसि मुखे च पृष्ठदेशे आनन्दामृतजलधौ लिपन्ति मग्नाः

'जन्मवासरमाज्ञाय व्रजराजसुतस्य हि।
व्रजमण्डलतः सर्वे आगता व्रजवासिनः ॥५॥
नानादिग्देशतश्चैव गोविन्द–प्रियकिङ्कराः।
दिव्यमाल्याम्बरधराः पुत्रदार–समन्विताः ॥६॥
वन्दिनो गायकाश्चैव नर्त्तका वादकाश्च ये।
दिव्यवेशधरास्ते तु ननृतुः पपठुर्जगुः ॥७॥
गायन्तो मृदुमधुरं, वन्दिगणाः पठन्ति भृशमुच्चैः।
वृत्तिं विनापि ते ते, याचन्ते पारितोषिकं तेभ्यः ॥८॥
एवं जन्मक्षणे प्राप्ते पञ्चामृतजलैर्मुदा।
जयशब्दं प्रकुर्वन्तः स्नापयन्ति निजं प्रभुं ॥९॥
भक्तानां व्यदधन्महोत्सवमयं नेत्रार्वुदानां परं
स्वीकुर्वन् प्रथमं सुमङ्गलतरं स्नानञ्च पञ्चामृतैः।
अष्टम्यां सुतिथौ निशार्द्धसमये गोविन्ददेवो हरि-
र्यं दृष्ट्वा भव-पद्मज प्रभृतयः सद्यः कृतार्थं गताः ॥१०॥
छलतो ब्रह्मादि-देवाश्चरणामृतपानतो लोभात्।
धृतमनुजरूपवेशाः पार्षदभक्तान् संयाचन्ते ॥११॥

इति ब्रह्मादयो देवा गायन्तो दिवि हर्षतः।
पुष्पवृष्टिं विकुर्वन्ति स्वस्वसेवनतत् पराः ॥१२॥
दिवि देवगणाः सर्वे आगतास्तद्दिने शुभे।
तद्द्ये पश्यन्ति तद्रात्रौ ते कृतार्थास्तु भूतले।
चक्षुष्मन्तस्तु ते प्रोक्ताः प्रभोः पार्श्वं व्रजन्ति च ॥१३॥

आनन्दवृन्दावनचम्पू द्वितीयस्तवके (१७–१९)

" एवं परिपूर्णमङ्गलगुणतया दूषणद्वापरान्ते द्वापरान्ते निरन्तरालभाद्रपदे भाद्रपदे मासि मासिते पक्षेऽपक्षेप-रहिते हिते रसमये गुणगणारोहिणीं रोहिणीं सरति सुधाकरे सुधाकरे योगे योगेश्वरेश्वरो मध्ये क्षणदायाः क्षणदायाः पूर्णानन्दतया जीवव्रज्-जननीजठरसंबन्धाभावादबन्धाभावाच्च केवलं विलसत्करुणया-ऽरुणया तथाविधलीलालोलासिकया कयाचन पुरन्दरदिगङ्गनोत्सङ्ग इव रजनीकरः स्वप्रकाशतया प्रादुर्भावमेव भावयन् अग्रे पूर्व-पूर्वजनि जनिततपः सौभाग्यफलेनोपलब्धिपितृमातृभावयोः श्रीवसुदेव-देवक्यो र्वासुदेव-स्वरूपेणाविर्भावं भावयित्वा स्तनन्धयत्वाभिमानमेव क्षणं तयोः प्रकटय्य पश्चान्नित्यसिद्धपितृमातृभावयोः श्रीनन्दयशोदयोरपि श्रीगोविन्द-स्वरूपेण तनयतामाससाद।" इति। तथा श्रीमदीश्वर्याः गोविन्दप्रियरमणीगणेषु मुख्या राधेयं त्रिजगति राजते स्वयं श्रीः प्रियालिप्रेम्णोन्ना जनिमाप जनन्याः।

अथ श्रीवामनाभिषेकादि। अथ शरत्पौर्णमास्यां यथा—

'घन-प्रणय-मेदुरौ शरदमन्दचन्द्राननौ
किरीटमुकुटे धृतौ विधृत-नीलपीताम्बरौ।
शरत्सुखदकानने सरसयोगपीठासने
पुरः कलय नागरौ मधुर-राधिका-माधवौ।
शरच्चन्द्रमसो रात्रौ श्रीमन्तं नन्दनन्दनं।
श्रमयुक्तं रासलास्यात् प्रियया च सखीमणैः॥
दिव्यमाल्याम्बरधरं नटवेशोचितं हरिं।
ध्यायेद्वृन्दावने रम्ये यमुनापुलिने वने॥

प्रपानकादि-शीतान्नं नानापक्वान्न-संयुतं।
साधको भोजयित्वा तं सुतुष्टः ससखीगणं।
शेषान्नं चादरेणाथ गृह्णीयाद् वैष्णवैः सहः ॥'

**अथामावस्यादीपदानं यथा–**

'अमावास्या कार्त्तिकीयं विशेषात् शुभदायिनी।
यत्र दीप-प्रदानेन तुष्टो भवति केशवः ॥१॥
चल चल नय नय भो भो गोविन्दे चोपटौकनं।
दिव्यं पश्यामो मुखपद्मं दास्यामो दीपमालिकास्तत्र ॥२॥
इति कृत्वा प्रगायन्ति प्रलपन्ति पुनः पुनः।
पुरवासिजनाः सर्वे विशेषाद्व्रजवासिनः ॥३॥
अग्रतः पृष्ठतः पार्श्वे मुण्डकोपरि वेश्मनि।
दीपमालाः प्रदास्यन्ति गोविन्दप्रीतिदायिकाः ॥४॥
यमुनायास्तटे केचित्तीर्थे केचिज्जले तथा।
वृन्दावने प्रकुर्वन्ति दीपमाला-महोत्सवं ॥५॥
दिवि देवगणाः सर्वे प्रभोराज्ञापरायणाः।
दास्यन्ति वाञ्छितान् तेषां दीपमालां प्रकुर्वतां ॥६।
वन्देऽहं श्रीलगोविन्दं भक्तानुग्रह-विग्रहं।
दर्शनाद् दीपमालायाः प्रसन्नानन्दलोचनं ॥७॥
अन्नकूटं समायान्तं कार्त्तिके परमोत्सवं।
ज्ञात्वा समुत्सुकाः सर्वे गोविन्दप्रियपार्षदा ॥१॥
कर्त्तुं भोजन-सामग्रीं परमानन्द-दायिनीं।
श्रीमद्गोविन्ददेवस्य गोवर्द्धनधरस्य च ॥२॥
नानान्नव्यञ्जनं पूपपिष्टकैर्बहुधा कृतं।
तत्तद्द्रव्यादिभेदेन चतुरैः पाचकादिभिः ॥३॥
तैरन्नकूटं संस्थाप्य यथा गोवर्द्धनो गिरिः।
तस्य पार्श्वे घृतं सर्वं व्यञ्जनादिकमुत्तमं ॥४॥
पक्वान्नानि तथान्यानि वहुयत्नकृतानि च।
गोरसानां वहुविधं रसालादिक-भेदतः ॥५॥

श्रीमद्भगवतोऽग्रे तत् कूटं यत्नकृतं कृतं ।
यदन्नकूटं संवीक्ष्य सन्तुष्टो भवति प्रभुः ।६।
भुङ्क्ते वहुप्रीतमना देवानां जनयन् सुखं ।
प्रभोरग्रे तु तत् कूटं ये पश्यन्ति नरा भुवि ।७।
भाग्यभाजस्तु ते लोके त्रिषु लोकेषु दुर्लभाः ।
दध्यादिनान्नपूपैस्तदन्नकूटं शुभं महत् ।८।
परिक्रमणकं कृत्वा ततो वन्धुजनैः सह ।
महदारात्रिकं नाम ये पश्यन्ति जना भुवि ।।९।।
तेषां भाग्यं न वक्तव्यं सहस्रवदनैरपि ।
धनधान्यादिसंयुक्ताः पुत्रदारसमन्विताः ।।१०।।
महद्भोगं भुरि कृत्वा चान्ते वैकुण्ठमाप्नुयुः ।
प्रसादमन्नकूटस्य ये जनाः परमादरात् ।११।
वैष्णवान् भोजयन्तो वै भुञ्जेयुर्भक्तितत्पराः ।
तेषां व्रतफलं देवि ! कोटिकोटि गुणं भवेत् ।१२।
स्वलङ्कृतानान्तु गवां पूजा कार्य्या ततः शुभा ।१३।

**अथ गोपाष्टमीदर्शनं यथा ( भा १०।२१।५ )–**

'वर्हापीड़ं नटवरवपुः कर्णयोः कर्णिकारं
विभ्रद्वासः कनककपिशं वैजयन्तीञ्च मालाम् ।
रन्ध्रान् वेणोरधरसुधया पूरयन् गोपीवृन्दै-
र्वृन्दारण्यं स्वपदरमणं प्राविशद् गीतकीर्त्तिः ।।'१।

तद्दर्शनफलं—

गोपाष्टम्यान्तु देवस्य ये पश्यन्ति हरे र्मुखं
दूरान्नश्यन्ति पापानि तस्मिन् भक्तिश्च जायते ।।२।।
'ध्यायेद् गोविन्ददेवं नवघनमधुरं दिव्यलीला नटन्तम् ।'३।

इत्यादि पूर्व्ववत् ।

**प्रवोधन्यां युगलदर्शनं यथा—**

प्रवोधन्यास्तु गोविन्दं ये पश्यन्ति प्रियायुतम् ।

नराणां क्षीणपापानां तद्भक्तिरचला भवेत् ।१।

यथा—

'प्रबोधिनी निशानृत्यमाहात्म्यभरदर्शिनी ।
चन्द्रकान्तिचरी सर्वगान्धर्वकुलपावनी ।'२।(प्रेमेन्दु १२ )

द्वादश्यां कार्त्तिकादिव्रतमहोत्सवः कर्त्तव्यः । मार्गशीर्षे तत्कृत्यं यथोचितं कर्त्तव्यम् ।

पौषे खेचड़ान्नं यथा—

पौषे तुषारघोरेऽस्मिन् रसिकैः कृष्णपार्षदैः ।
सुविचार्य्य कृतं तत्र खेचड़ान्नं प्रभुप्रियम् ।१।
दिव्यवासमतीधान्यतण्डुलं मुद्गकं तथा ।
समभागन्तु किञ्चिद्वा विषमं परिकल्पितम् ।।२।।
हिमर्त्तौ विहितं युक्तं लोकशास्त्रविधानतः ।
हिङ्गु त्रिजातं मरिचं लवणं चार्द्रकं तथा ।।३।।
लोकप्रसिद्धं यच्चान्यद्विशेषाच्छुद्ध-गोघृतम् ।
चतुरैः कर्मकारैश्च तथा चतुर-पाचकैः ।४।
यथायोग्यन्तु तैर्द्रव्यैः पच्यते बहुयत्नतः ।
सुदर्शनीयं सुखदं रोचकं पुष्टिकारकम् ।५।
सुमिष्टं दधिकञ्चैव तथान्यद्व्यञ्जनादिकम् ।
प्रीतितो लोकपर्य्यायमति प्रणायकं हरेः ।६।
लवङ्गेलेन्दुमरिचैः संयुतैः शर्कराचयैः ।
नानादेशभवैर्नानाफलशस्यचयैस्तता ।।७।।
कृतं लड्डुवरं यत्नाद् बहुप्रेमभरेण च ।
यद्दृष्ट्वा भोजनात् कृष्णो जायते ह्यतिहर्षितः ।८।
प्रभोर्हर्षात्तु भक्तानामतिहर्षः प्रजायते ।
कुर्वन्ननुदिनं तत्तु गोविन्दप्रीतिदायकम् ।।
तुल्यान्तरीय-वस्त्रादि तथा चैवाग्निसेवनम् ।९।
वन्देऽहं श्रीलगोविन्दं त्रिकाले नित्यविग्रहम् ।
भजनाद्यस्य नित्यत्वं नित्यत्वे तस्य का कथा ।।१।।

द्रष्टुं न योग्या वक्तुं वा त्रिषु लोकेषु तेऽधमा: ।
श्रीगोविन्दपदद्वन्द्वे विमुखा ये भवन्ति हि ।२।
गोविन्द-पार्षदान् वन्दे तद्वत् कालत्रये स्थितान् :
येषां स्मरण-मात्रेण सर्वाभीष्टफलं लभेत् ।३।
येषां गोविन्ददेवस्य नैत्यिकी वार्षिकी तथा ।
सेवा संक्षेपतो मुख्या मयात्र परिकीर्त्तिता ।।४।।

किञ्च—

रागः सप्तसु हन्त षट्स्वपि शिशोरङ्गेष्वलं तुङ्गता
विस्तारस्त्रिषु खर्वता त्रिषु पुनर्गम्भीरता च त्रिषु ।
दैर्घ्यं पञ्चसु किञ्च पञ्चसु सखे सम्प्रेक्ष्यते सूक्ष्मता
द्वात्रिंशद्वरलक्षणः कथमसौ गोपेषु संभाव्यते ।।

राग इति व्रजेश्वरं प्रति कस्यचित्तत्समवयसो गोपस्य वाक्य-मिदम् । सप्तसु नेत्रान्तपादकरतलतालब्वधरोष्ठजिह्वानखेषु; षट्सु वक्षः स्कन्धनखनासिकाकटिमुखेषु; पञ्चसु नासाभुजनेत्रहनूजानुषु; पुनः पञ्चसु त्वक्केशाङ्गुलिदन्ताङ्गुलिपर्वसु, तथैव महापुरुष-लक्षणे सामुद्रक-प्रसिद्धेः। द्वात्रिंशद् वराणि तल्लक्षणेभ्योऽन्येभ्योऽपि श्रेष्ठानि लक्षणानि यस्य सः । गोपेषु कथमिति भगवदवतारादिषु एतादृश्यत्वाश्रवणादिति भावः ।।

करयोः कमलं तथा रथाङ्गं स्फुटरेखामयमात्मजस्य पश्य ।
पदपल्लवयोश्च वल्लवेन्द्र ! ध्वजवज्राङ्कुशमीनपङ्कजानि ।।

करयोरिति कस्याश्चिद्वृद्धगोप्या वचनम् । उपलक्षणान्येवैतानि चिह्नानि पद्मपुराणादिदृष्टयान्यान्यप्यसाधारणानि ज्ञेयानि । तानि यथा पद्मपुराणे—

'ब्रह्मोवाच—

शृणु नारद वक्ष्यामि पदयोश्चिह्नलक्षणम् ।
भगवत् कृष्णरूपस्य ह्यानन्दैकसुखस्य च ।।
अवतारा ह्यसंख्याताः कथिता मे तवाग्रतः ।
परं सम्यक् प्रवक्ष्यामि कृष्णस्तु भगवान् स्वयम् ।।

देवानां कार्य्यसिद्धयर्थमृषीणाञ्च तथैव च ।
आविर्भूतस्तु भगवान् स्वानां प्रियचिकीर्षया ।।
यैरेव ज्ञायते देवो भगवान् भक्तवत्सलः ।
तान्यहं वेद नान्योऽपि सत्यमेतन्मयोदितम् ।।
षोड़शैव तु चिह्नानि मया दृष्टानि तत्पदे ।
दक्षिणे चाष्ट चिह्नानि इतरे सप्त एव च ।।
ध्वजं पद्मं तथा वज्रमङ्कुशो यव एव च ।
स्वस्तिकं चोर्द्धरेखा च अष्टकोणं तथैव च ।।
सप्तान्यानि प्रवक्ष्यामि साम्प्रतं वैष्णवोत्तम !
इन्द्रचापं त्रिकोणञ्च कलशं चार्द्धचन्द्रकम् ।।
अम्बरं मत्स्यचिह्नञ्च गोष्पदं सप्तमं स्मृतम् ।
अङ्कान्येतानि भो विद्वन् ! दृश्यन्ते च यदा कदा ।
कृष्णाख्यन्तु परं ब्रह्म भुवि जातं न संशयः ।।
द्वयं वाथ त्रयं वाथ चत्वारः पञ्च चैव च ।
दृश्यन्ते वैष्णवश्रेष्ठ ! अवतारे कथञ्चन ।। इत्यादि
षोड़शन्तु यथाचिह्न शृणु देवर्षिसत्तम !
जम्बूफल-समाकारं दृश्यते यत्र कुचचित् ।।'इत्यन्तम् ।

शास्त्रान्तरे तु शङ्खचक्रच्छत्राणि ज्ञेयानि ।।

अथ **करध्यानं**———

शङ्खार्द्धेन्दु-यवाङ्कुशैररिगदा-छत्रध्वजैः स्वस्तिकै-
र्यूपाब्जासिहलैर्धनुः पविघटैः श्रीवृक्षमीनेषुभिः ।
नन्दावर्त्तचयैस्तथाङ्गुलिगतैरेतैर्निजैर्लक्षणैः
भ्रातः श्रीपुरुषोत्तमत्व-गमकैर्जानीहि रेखाङ्कितैः ।।

अथ **मन्दहास्यं** ( कृ, क ६९ )—

'अखण्ड-निर्वाणरसप्रवाहै,-र्विखण्डिताशेष-रसान्तराणि ।
अयन्त्रितोद्वान्तसुधार्णवानि, जयन्ति शीतानि तव स्मितानि ।१।
पद्मादि-दिव्यरमणी-कमनीयगन्धं गोपाङ्गनानयनभृङ्ग-निपीयमानम्।
कृष्णस्य वेणुनिनदार्पित-माधुरीक-

मास्याम्वुजस्मितमरन्दमहं स्मरामि ॥२॥

'आलोलचन्द्रकलसद्वनमाल्यवंशी-रत्नाङ्गद-प्रणयकेलिकलाविलासम्।
श्यामं त्रिभङ्गललितं नियतः-प्रकाशं
गोविन्दमादिपुरुषं तमहं भजामि ॥' ( ब्र सं ५।३१ )

श्रीहरिभक्तिविलासे ( १८।३१-३७ )—

'एवं पुराणतन्त्रादि दृष्ट्वात्रेदं विलिख्यते।
ललाटाच्चिवुकान्तं स्यात् श्रीमुखं द्वादशाङ्गुलम्॥
तत्राननं भाग एकस्तत्रैव चतुरङ्गुलम्।
ललाटं नासिका तद्वद् गुल्फमर्द्धाङ्गुलं भवेत्॥
अर्द्धाङ्गुलोऽधरस्तूर्द्ध्वोऽपरश्चैकाङ्गुलो मतः।
द्व्यङ्गुलं चिवुकं चाथ ग्रीवा स्याच्चतुरङ्गुला॥
वक्षोभागो भवेदन्यस्तस्मान्नाभ्यवधिः परः।
ततोऽपरश्च मेढ्रान्तस्तस्मादुरुविभागकौ॥
तथा द्विभागिके जङ्घे जानुनी चतुरङ्गुले।
पादौ च तत्समावित्थं दैर्घ्यभागा नवोदिताः॥
कुत्राप्युच्चात् ललाटस्योपरिष्टात्त्र्यङ्गुलं शिरः।
तद्वद्ग्रीवा जानुपादास्तथापि स्युर्नवैव ते॥
इति स्यात् सर्वतो दैर्घ्यं साष्टोत्तरशताङ्गुलाः॥'

तद् यथा इदमेव रहस्यं—

यद्यपि तिर्य्यङ्नरादिषु भगवतो जन्म, तथापि स्वेच्छया गौड़देशे तद्देशीयान् ब्राह्मणान् सर्वश्रेष्ठान् विज्ञाय तेषां कुले श्रीकृष्ण-चैतन्य-नित्यानन्दाद्वैतादयो जन्म स्वीकुर्वन्तः; अतो महाप्रभुणाङ्गीकृतेषु गौड़ोत्कलदाक्षिणात्यपाश्चात्येषु गौड़देशनिवासिन एव बहवः पार्षदाः। ते खलु महत्कुलप्रसूतास्तेषां भोजनादिव्यवहारः सत्-कुल-प्रसुतान् गौड़ीयान् ब्राह्मणान् विना न सम्भवति। तथाहि निजत्वे गौड़ीयानिति ज्ञात्वा सर्वज्ञशिरोमणिर्महाप्रभुः श्रीरूप-सनातनौ निजान्तरङ्गौ विज्ञाप्य तयोः सर्व-शक्ति सञ्चार्य्य पश्चिम-देशे स्वीयवितरण-भक्तभूपत्वेन स्थापितवान्। तद्द्वारा निजप्रकटन-

हेतुभूतं वाञ्छात्रय-समुल्लसितपरमान्तरङ्गरूपस्यातुल-भजनरत्नस्य लुप्ततीर्थादेश्च प्रकटनात्, स्वयं प्रकाश-श्रीगोविन्दादिस्वरूप-राजसेवा प्रकाशाच्च। ताभ्याञ्च पुनः श्रीवृन्दावनं गत्वा श्रीश्रीसेवादिकं प्रकटय्य श्रीमहाप्रभोराज्ञानुसारतः तत्प्रेषितद्विजगणे श्रीराधागदाधर परिवारे तत् समर्पितं, न तु निजपार्श्ववर्त्तिषु श्रीगोपालभट्ट-श्रीरघुनाथ दासादिषु, स्वतो भगवन्मन्त्रगृहीत-स्वभ्रातुष्पुत्र-श्रीजीव-गोस्वामिषु च। अहो परमभागवतानां मर्य्यादारक्षणस्वभावः स्वयञ्च ते सेवा-समये मन्दिरे न प्रविशन्ति च, किमुतान्यत्। एतत्तु श्रीचैतन्यचरिता-मृतादौ प्रसिद्धं वर्त्तते॥

इति श्रीगोविन्ददेवसेवाधिपति-श्रीहरिदासगोस्वामिचरणानु-
जीवि-राधाकृष्णदासोदीरिता साधनदीपिका-

**द्वितीयकक्षा**

❀❀❀❀

## ❀ तृतीयकक्षा ❀

❀❀❀❀

अथ धीरललितस्य श्रीमद्गोविन्ददेवस्य (भ, र, सि, १।६३)—

'वयसो विविधत्वेऽपि सर्वभक्तिरसाश्रयः।
धर्मी किशोर एवात्र नित्यनानाविलासवान्॥'

तद् यथा (ऐ, द १।३०८-३१२)—

'वयः कौमार-पौगण्ड-कैशोरमिति तत्त्रिधा॥
कौमारं पञ्चमाब्दान्तं पौगण्डं दशमावधि।
आषोड़शाच्च कैशोरं यौवनं स्यात्ततः परम्॥
औचित्यात्तत्र कौमारं वक्तव्यं वत्सले रसे।
पौगण्डं प्रेयसि तथा तत्तत्खेलादियोगतः॥

श्रैष्ठ्यमुज्ज्वल एवास्य कैशोरस्य तथाप्यद: ।
प्राय: सर्वरसौचित्यादत्रोदाह्रियते क्रमात् ।।
आद्य: मध्यं तथा शेषं कैशोरं त्रिविधं भवेत् ।।'

तत्र मध्यं यथा ( ऐ, द २।३२०-२४ )—

'ऊरुद्वयस्य वाह्वोश्च कापि श्रीरुरसस्तथा ।
मूर्त्तेर्मधुरिमाद्यश्च कैशोरे सति मध्यमे ।।

यथा—

स्पृहयति करिशुण्डादण्डनायोरुयुग्मं
गरुड़मणिकवाटीसख्यमिच्छत्युरश्च ।
भुजयुगमपि धित्सत्यर्गलावर्गनिन्दा-
मभिनव-तरुणिम्न: प्रक्रमे माधवस्य ।।
मुखं स्मितविलासाढ्यं विभ्रमोत्तरले दृशौ ।
त्रिजगन्मोहनं गीतमित्यादिरिह माधुरी ।।

यथा—

अनङ्गनयचातुरीपरिचयोत्तरङ्गे दृशौ
मुखाम्बुजमुदञ्चित-स्मर-विलास-रम्याधरम् ।
अचञ्चलकुलाङ्गनाव्रतविड़म्बि-सङ्गीतकं
हरेस्तरुणिमाङ्कुरे स्फुरति माधुरी काप्यभूत् ।।
वैदग्धीसारविस्तार: कुञ्जकेलिमहोत्सव: ।
आरम्भो रासलीलादेरिह चेष्टादि-सौष्ठवम् ।।

टीका श्रीमज्जीवगोस्वामिचरणानां—मध्ये शेषवयसप्राय: सर्वत्र समानत्वम् ।

इह मध्ये चेष्टादि-सौष्ठवं यथा (ऐ, द १।३२५ )—

'व्यक्तालक्तपदै: क्वचित् परिलुठत्पिञ्छावतंसै. क्वचि-
त्तल्पैर्विच्युतकाञ्चिभि: क्वचिदसौ व्याकीर्णकुञ्जोत्करा ।
प्रोद्यन्मण्डलवन्धताण्डवघटालक्ष्मोल्लसत्सैकतै-
र्गोविन्दस्य विलासवृन्दमधिकं वृन्दावटवी शंसति ।।'इत्यादि
धीरललितलक्षणं ( ऐ द १।२३० )

'विदग्धो नवतारुण्यः परिहासविशारदः।
निश्चिन्तो धीरललितः स्यात् प्रायः प्रेयसीवशः ॥

यथा ( ऐ, द १।२३१-२३२ )—

'वाचा सूचित शर्वरीरतिकला प्रागल्भ्यया राधिकां
व्रीड़ाकुञ्चितलोचनां विरचयन्नग्रे सखीनामसौ।
तद्वक्षोरुहच्चित्रकेलिमकरीपाण्डित्यपारं गतः
कैशोरं सफलीकरोति कलयन् कुञ्जे विहारं हरिः ॥
गोविन्दे प्रकटं धीरललितत्वं प्रदृश्यते।
उदाहरन्ति नाट्यज्ञाः प्रायोऽत्र मकरध्वजम् ॥'

अतएव धीरललितलक्षणस्थायिक-श्रीगोविन्ददेवे मध्यकैशोरं व्यक्तं दृश्यते ॥

## इति तृतीयकक्षा

❋❋❋❋

"अन्तःपुरन्तु देवस्य मध्ये पुर्य्यां मनोहरं।
मणि प्रकरसंयुक्तं वरतोरणशोभितं ॥
विमानैर्गृहमुख्यैश्च प्रासादैर्बहुभिर्वृतं।
दिव्याप्सरोगणैः स्त्रीभिः सर्वतः समलङ्कृतं ॥
मध्ये तु मण्डपं दिव्यं राजस्थानमहोत्सवं।
माणिक्यस्तम्भसाहस्रजुष्टं रत्नमयं शुभं ॥
नित्यमुक्तैः समाकीर्णं सामगानोपशोभितं।
मध्ये सिंहासनं दिव्यं सर्ववेदमयं शुभं ॥
धर्मादिदैवतैर्नित्यैर्वृतं वेश्मशतमकैः।
धर्मज्ञानमहैश्वर्य्यवैराग्यैः पादविग्रहैः
वसन्ति मध्यमे तत्र वह्निसूर्य्यंतुधांशवः ॥
कूर्म्मश्च नागराजश्च वैनतेयस्त्रयीश्वरः।
छन्दांसि सर्वमन्त्राश्च पीठरूपत्वमाश्रिता।
सर्वाक्षरमयं दिव्यं योगपीठमिति स्मृतं।

तन्मध्येऽष्टदलं पद्ममुदयार्कसमप्रभं ॥
तन्मध्ये कर्णिकायान्तु सावित्र्यां शुभदर्शने ।
ईश्वर्य्या सह देवेशस्तत्रासीनः परः पुमान् ॥
इति श्रीलघुभागवतामृतधृत-पाद्मोत्तरखण्डवाक्यानि
द्वितीय-पुस्तके न दृश्यन्ते ।

———

# ❀ चतुर्थकक्षा ❀

❀❀❀❀

❀ अथ श्रीगोपालदेव मन्त्रमाहात्म्यं—

'मन्त्रास्तु कृष्णदेवस्य साक्षाद्भगवतो हरेः ।
सर्वावतार-वीजस्य सर्वतो वीर्य्यवत्तमा ॥

तथा च वृहद्गौतमीये ) श्रीगोविन्दवृन्दावनाख्ये )—

सर्वेषां मन्त्रवर्गाणां श्रेष्ठो वैष्णव उच्यते ।
विशेषात् कृष्णमनवो भोगमोक्षैकसाधनं ॥
यस्य यस्य च मन्त्रस्य यो यो देवस्तथा पुनः ।
अभेदात्तन्मनूनाञ्च देवतासौ स्वभावतः ॥
कृष्ण एव परं ब्रह्म सच्चिदानन्दविग्रहः ।
स्मृतिमात्रेण तेषान्तु भुक्तिमुक्तिफलप्रदः ॥
तत्रापि भगवन्मन्त्रास्तत्त्वतो गोपलीलया ।
तस्य श्रेष्ठतमा मन्त्रा तेष्वप्यष्टादशाक्षरः ॥'

अथाष्टादशाक्षरमाहात्म्यं तापनीश्रुतिषु (पूर्वं २-१२ )—

"ॐ मुनयो ह वै ब्राह्मणमूचुः—'कः परमो देवः ? कुतो मृत्युर्विभेति ? कस्य ज्ञानेनाखिलं विज्ञातं भवति ? केनेदं विश्वं संसरति ?' इति। तदु होवाच ब्राह्मणः—'कृष्णो वै परमं दैवतम्। गोविन्दान्मृत्युर्विभेति। गोपीजन-वल्लभ-ज्ञानेन तज्ज्ञातं भवति। स्वाहयेदं संहरति।' इति। तदु होचुः—'कः

कृष्णो गोविन्दश्च कोऽसौ ? इति गोपीजनवल्लभः कः ? का स्वाहा ?' इति । तानुवाच ब्राह्मणः—'पापकर्षणो गोभूमिवेदविदितो विदिता गोपीजनाविद्या कला प्रेरकस्तन्माया चेति सकलं परं ब्रह्म, तद् योऽध्यापयति, रसति, भजति, सोऽमृतो भवति सोऽमृतो भवति' इति । ते होचुः—'किं तद्रूपं, किं रसनं, कथं वाहो तद्भजनं, तत्-सर्वं विविदिषतामाख्याहि' इति । तदु होवाच—'हैरण्यो गोपवेशम भ्राभं तरुणं कल्पद्रुमाश्रितम्' इत्यादि । किञ्च—तत्रैवाग्रे—भक्तिरस्य भजनं, तदिहामुत्रोपाधि-नैरास्येनामुष्मिन्मनः कल्पनमेतदेव च नैष्कर्म्यं, कृष्णं तं विप्रा वहुधा यजन्ति, गोविन्दं सन्तं वहुधाराधयन्ति गोपीजनवल्लभो भुवनानि दध्रे । स्वाहाश्रितो जगदेजयत् स्वरेताः

वायुर्यथैवापघनं प्रविष्टो जन्ये जन्ये पञ्चरूपो वभूव ।

कृष्णस्तथैकोऽपि जगद्धितार्थं शब्देनासौ पञ्चपदो विभाति ।।इति

किञ्च—तत्रैवोपासनाविधिकथनानन्तरं—

एको वशी सर्वगः कृष्ण ईड्य एकोऽपि सन् वहुधा यो विभाति ।

तं पीठस्थं येऽनुयजन्ति धीरा—स्तेषां सुखं शाश्वतं नेतरेषाम् ।।

नित्यो नित्यानां चेतनश्चेतनाना-मेको वहूनां यो विदधाति कामान् ।

तं पीठगं येऽनुयजन्ति धीरा-स्तेषां सिद्धिः शाश्वती नेतरेषाम् ।।

एतद्धि विष्णोः परमं पदं ये नित्योद्युक्ताः संयजन्ते न कामान् ।

तेषामसौ गोपरूपः प्रयत्नात् प्रकाशयेदात्मपदं तदेव ।।

यो ब्रह्माणं विदधाति पूर्वं विद्यास्तस्मै गापयति स्म स कृष्णः ।

तं ह देवमात्मवृत्तिप्रकाशं मुमुक्षुर्वै शरणममुं व्रजेत ।।

जप-संख्या यथा गौतमीयतन्त्रे (१५।४)—

'अनेन लक्षजापेन कृष्णं पश्यति चक्षुषा'

अनेनेति प्रत्यक्षेण स्वरूपेण स्वप्नेन वा कृष्णसाक्षात्कारो भवतीत्यर्थः ।

पुरश्चरणादिविधिस्तु श्रीब्रह्मसंहिता-गोपालतापनी-हरिभक्तिविलासटीकायां द्रष्टव्यः । स तु विशेषतो योगपीठे द्रष्टव्यः । (गो, ता, पू २४-२५)—

'ॐकारेणान्तरितं ये जपन्ति गोविन्दस्य पञ्चपदं मनुं तम्।
तस्मै चासौ दर्शयेदात्मरूपं तस्मान्मुमुक्षुरभ्यसेन्नित्यशान्त्यै ॥
एतस्मादन्ये पञ्चपदादभूवन् गोविन्दस्य मनवो मानवानाम्।
दशार्णाद्यास्तेऽपि संक्रन्दनाद्यै-रभ्यस्यन्ते भूतिकामैर्यथावत् ॥'

किञ्च तत्रैव ( पू २७-३० )—

तदु होवाच,—ब्रह्मसवनं प्रथमपरार्द्धं चरतो मे ध्यातः स्तुतः परार्द्धान्ते सोऽवुध्यत गोपवेशो मे पुरस्तादाविर्वभूव ततः प्रणतो मयानुकूल्येन हृदा मह्यमष्टादशार्णं स्वरूपं सृष्टये दत्त्वान्तर्हितः; पुनः सिसृक्षतो मे प्रादुरभूत्। तेष्वक्षरेषु भविष्यज्जगद्रूपं प्रकाशयन्—तदिह कादापो लात् पृथ्वी ईतोऽग्निर्विन्दोरिन्दुस्तत्सम्पातात्तदर्क इति क्लीङ्कारादसृजम्, कृष्णायादाकाशं खाद्वायुरित्युत्तरात् सुरभीं विद्याः प्रादुरकार्षम्। तदुत्तरात् स्त्री-पुमादि चेदं सकलमिति सकलमिति।"

तथा च गौतमीये—

"क्लीङ्कारादसृजद्विश्वमिति प्राह श्रुतेः शिरः।
ल-कारात् पृथिवी जाता क-काराज्जलसम्भवः ॥
ई-कारादवह्निरुत्पन्नो नादाद्वायुरजायत।
विन्दोराकाश-सम्भूतिरिति भूतात्मको मनुः ॥
स्वा-शब्देन च क्षेत्रज्ञः हेति चित्प्रकृतिः परा।
तयोरैक्यसमुद्भूतिर्मुखवेष्टनवर्णकः।
अतएव हि विश्वस्य लयः स्वाहात्मके भवेत् ॥'

पुनश्च श्रुतिः ( गो, ता, पूर्व ३१-३३ )—

'एतस्यैव यजनेन चन्द्रध्वजो गतमोहमात्मानं वेदयित्वा ॐकारात्मकं मनुमावर्त्तयत् सङ्गरहितीऽभ्यानयत्। तद्विष्णोः परमं पदं सदा पश्यन्ति सूरयः दिवीव चक्षुराततम्, तस्मादेनं नित्य-मभ्यस्येत्' इत्यादि।

तत्रैवाग्रे ( ३५-३८ ), तदत्र गाथाः—

'यस्य पूर्वपदाद्भूमिर्द्वितीयात् सलिलोद्भवः।

तृतीयात्तेज उद्भूतं चतुर्थाद्गन्धवाहनः ॥
पञ्चमादम्बरोत्पत्तिस्तमेवैकं समभ्यसन् ।
चन्द्रध्वजोऽगमद्विष्णोः परमं पदमव्ययम् ॥

ततो विशुद्धं विमलं विशोक,-मशेषलोभादि-निरस्तसङ्गम् ।
यत्तत्पदं पञ्चपदं तदेव, स वासुदेवो न यतोऽन्यदस्ति ॥

तमेकं गोविन्दं सच्चिदानन्दविग्रहं पञ्चपदं वृन्दावन-सुरभूरुहतलासीनं सततं समरुद्गणोऽहं परमया स्तुत्या तोषयामि ।' इति ।

किञ्च, स्तुत्यनन्तरं ( गो, ता, पू ५२-५४ )—

'अमुं पञ्चपदं मन्त्रमावर्त्तयेद् यः स यात्यनायासतः केवलं तत् ।
अनेजदेकं मनसो जवीयो न यद्देवा आप्नुवन् पूर्वमर्शत् ॥'

( पूर्वेषु मर्शत् मृशत् व्याप्तुं समर्थं ) इति ।

तस्मात् कृष्ण एव परो देवस्तं ध्यायेत्तं रसयेत्तं यजेदिति, ॐ तत् सदिति ।'

त्रैलोक्यसम्मोहनतन्त्रे च देवीं प्रति श्रीमहादेवोक्तौ अष्टादशाक्षरप्रसङ्ग एव ( ह, भ, वि १।१७९-१८५ )—

'धर्मार्थकाममोक्षाणामीश्वरो जगदीश्वरः ।
सन्ति तस्य महाभागा अवताराः सहस्रशः ॥
तेषां मध्येऽवताराणां वालत्वमतिदुर्लभम् ।
अमानुषाणि कर्म्माणि तानि तानि कृतानि वै ॥
शापानुग्रह-कर्त्तृत्वे येन सर्वं प्रतिष्ठितम् ।
तस्य मन्त्रं प्रवक्ष्यामि साङ्गोपाङ्गमनुत्तमम् ॥
यस्य विज्ञानमात्रेण नरः सर्वज्ञतामियात् ।
पुत्रार्थी पुत्रमाप्नोति धनार्थी लभते धनम् ॥
सर्वशास्त्रार्थतत्त्वज्ञो भवत्येव न संशयः ।
त्रैलोक्यञ्च वशीकुर्य्यात् व्याकुलीकुरुते जगत् ॥
मोहयेत् सकलं सोऽपि मारयेत् सकलान् रिपून् ।
वहुना किमिहोक्तेन मुमुक्षुर्मोक्षमाप्नुयात् ।

यथा चिन्तामणिः श्रेष्ठो यथा गौश्च यथा सती ।
यथा द्विजो यथा गङ्गा तथासौ मन्त्र उत्तमः ।।'

( ह, भ, वि १७।१७७ )—

' अर्हर्निशं जपेद्यस्तु मन्त्री नियतमानसः ।
स पश्यति न सन्देहो गोपवेशधरं हरिम् ।।'इति ।

( ह, भ, वि १।१८७ )—

'अतो मया सुरेशानि प्रत्यहं जप्यते मनुः ।
नैतेन सदृशः कश्चिज्जगत्यस्मिन् चराचरे ।।'

गौतमीये सदाचार-प्रसङ्गे —

' अर्हर्निशं जपेद्यस्तु मन्त्री नियतमानसः ।
स पश्यति न सन्देहो गोपवेशधरं हरिम् ।।'इति ।

श्रीसनत्कुमारकल्पे ( ह, भ, वि १।१८८-१९२ )—

'गोपालविषया मन्त्रास्त्रयस्त्रिंशत् प्रभेदतः ।
तेषु सर्वेषु मन्त्रेषु मन्त्रराजमिमं शृणु ।।
सुप्रसन्नमिमं मन्त्रं तन्त्रे सम्मोहनाह्वये ।
गोपनीयस्त्वया मन्त्रो यत्नेन मुनिपुङ्गव ।
अनेन मन्त्रराजेन महेन्द्रत्वं पुरन्दरः ।
जगाम देवदेवेशे विष्णुना दत्तमञ्जसा ।।
दुर्वाससः पुरा शापादसौभाग्येन पीड़ितः ।
स एव शुभगत्वं वै तेनैव पुनराप्तवान् ।।
वहुना किमिहोक्तेन पुरश्चरण-साधनैः ।
विनापि जपमात्रेण लभते सर्वमीप्सितम् ।।
प्रभुं श्रीकृष्णचैतन्यं तं नतोऽस्मि जगद्गुरुम् ।
कथञ्चिदाश्रयाद्यस्य प्राकृतोऽप्युत्तमो भवेत् ।।

इति श्रीहरिभक्तिविलासे मन्त्रमाहात्म्य-कथने श्रीगोपालमन्त्र माहात्म्य-कथनम् ।

तत्र मन्त्रोद्धारणञ्च यथा ब्रह्मसंहितायाञ्च ( ५।२४ )—

' कामः कृष्णाय गोविन्द ङे गोपीजन इत्यपि ।

वल्लभाय प्रिया वह्नेरियं ते दास्यति प्रियम् ।।

ककारो लीलाशक्तिः; लकारो भूशक्तिः; ईकारः श्रीशक्तिः; मकारस्तत्त्वविशिष्टः । कृष्णायेति सर्वचित्ताकर्षकायेति, अथवा कृषिशब्दश्च सत्तार्थो णश्च निर्वृतिवाचकः । तयोरैक्यं परं ब्रह्म कृष्ण इत्यभिधीयते ।। गोविन्दायेति पूर्ववत्,—गामिन्द्रियकुलं विन्दतीति गोविन्दः; गां गोवर्द्धनमुद्धृत्य परमैश्वर्य्य-प्रदत्वेन रक्षति पालयतीति गोविन्दस्तस्मै । गोपीजनवल्लभायेति—'गोपीति प्रकृतिं विद्याज्जनस्तत्त्वसमूहकः । अनयोराश्रयो वल्लभा कारत्वेन चेश्वरः ।।' पूर्वार्थे स्वाहेत्यस्य तथातथाभूतायात्मानं समर्पयामि ।।१।।

तत्र क्रमदीपिकायाश्च ( १।१ )

कलात्तमायालवकात्तमूर्त्तिः कलक्वणद्वेणुनिनादरम्यः ।
श्रितो हृदि व्याकुलयंस्त्रिलोकीं श्रियेऽस्तु गोपीजनवल्लभो वः ।।'

अथ सम्मोहनतन्त्रोद्धारणम्—

'वाग्भवं मदनशक्तिमिन्दिरा,-संयुतः सकलविद्ययान्वितः ।
मन्त्र एष भुवनार्ण ईरितो, व्यत्ययेन सकल इष्टसाधकः ।।२।।

**अथ मन्त्रसिद्धिलक्षणं—**

आदावृष्यादिन्यासः स्यात् करशुद्धिस्ततः परम् ।
अङ्गुल्यव्यापकन्यासौ हृदादिन्यास एव च ।।
तालत्रयञ्च दिग्बन्धः प्राणायामस्ततः परम् ।
ध्यानपूजा जपश्चैव सर्वतन्त्रेष्वयं विधिः ।।

**न्यासादिविधिः—**

श्रीव्रजाचार्य्य-श्रीमद्रूपगोस्वामिभजनानुसारेण । अहङ्काराधिष्ठातृत्वाद्भूतशुद्धेरधिदेवाय सङ्कर्षणाय नमः । हे सङ्कर्षणदेव ! प्रसीद, कृपां कुरु । अस्य जनस्य देहरूपेण परिणतं भूतपञ्चकं यथा सद्यः शुध्येदुपासनोपयुक्तं स्यात्तथा कृपां कुरु ।

**अथ मातृका-ध्यानं—**

चिकुर-कलितपिञ्छां पीनतुङ्गस्तनाभ्यां
करजलरुहि विद्यां दक्षिणे पद्मरूपाम् ।
दधिघटमपि सव्ये बिभ्रतीं तुङ्गविद्या-
ममृतकिरणकान्तिं मातृकामूर्त्तिमीड़े ।।

**केशवकीर्त्तिकादि-ध्यानं—**

कोणेनाक्ष्णः पृथुरुचि मिथो हारिणा लेह्यमाना-
वेकैकेन प्रचुरपुलकेनोपगूढ़ौ भुजेन ।
गौरीश्यामौ वसनयुगलं श्यामगौरं वसानौ
राधाकृष्णौ स्मरविलसनोद्दामतृष्णौ स्मरामि ।।

तत्तन्मासस्य वासुदेवोऽधिष्ठाता, स स्तोककृष्णोऽत्र ज्ञेयः; तस्य ध्यानमुच्यते,—

अभ्रश्यामं विद्युदुद्यद्दुकूलं, स्मेरं लीलाम्भोजविभ्राजिहस्तम् ।
पिञ्छोत्तंसं वासुदेवस्वरूपं, कृष्णप्रेष्ठं स्तोककृष्णं नमामि ।।

आनन्दघनं स्मरेन्मनस्वी—तत्र कुट्टिमवरे स्फुटदीप्तयोगपीठं विचिन्त्य—

'तस्योज्ज्वलायामुरुकर्णिकायां, विराजितायां स्थितिसौख्यभाजौ
नव्याम्बुद-स्वर्णविड़म्बिभासौ, कृष्णञ्च राधाञ्च विचिन्तयामि ।।

मन्त्रार्थं मन्त्रचैतन्यं योनिमुद्रां न वेत्ति यः ।
शतकोटिजपेनापि तस्य सिद्धिर्न जायते ।।

**पुनश्च मन्त्रोद्धारणे यथा दशसंस्काराः ( सारदातिलके )—**

' जननं जीवनं पश्चात्ताड़नं रोधनं तथा ।
अथाभिषेको विमलीकरणाप्यायने पुनः ।
तर्पणं दीपनं गुप्तिर्दशैता मन्त्रसंस्क्रियाः ।।'*

पुनश्च—

'उपायास्तत्र कर्त्तव्याः सप्त (स) शङ्कर-भाषिताः ।
भ्रामणं रोधनं वश्यं पीड़नं पोषशोषणे ।।

दहनान्तं क्रमात् कुर्य्यात्ततः सिद्धो भवेन्मनुः ।
जपात् सिद्धिर्जपात् सिद्धिर्जपात् सिद्धिर्न संशयः ।। इत्यादि
अहर्निशं जपेद्यस्तु मन्त्री नियतमानसः ।
स पश्यति न सन्देहो गोपवेशधरं हरिम् ।।

**अथ खण्डपुरश्चरणविधिः—**

'सूर्य्योदयात् समारभ्य यावत् सूर्य्योदयान्तरम् ।
तावत्कालं मनुं जप्त्वा सर्व्वसिद्धीश्वरो भवेत् ।।

प्रथममुदयोदयम्; द्वितीये उदयास्तम्; तृतीये निष्कामाणां प्रति अस्तोदयम्; चतुर्थे अस्तास्तम् । तत्र ( ह, भ, वि १७।१३-१४)—

'निष्कामाणामनेनैव साक्षात्कारो भविष्यति ।
अर्थसिद्धिः सकामानां सर्वा वै भक्तिमालभेत् ।।
पञ्चाङ्गमेतत् कुर्वीत यः पुरश्चरणं बुधः ।
स वै विजयते लोके विद्यैश्वर्य्यसुतादिभिः ।।'

एवं ग्रासाद्विमुक्तिपर्य्यन्तमित्यादि-खण्डकरोपरागादि-पुरश्चरणादि-प्रयोगमाह ।

वैशाखकृत्यं वृहद्गौतमीये—

'अनेन लक्ष-जापेण कृष्णं पश्यति चक्षुषा ।'
वैशाख–कृष्ण–प्रतिपद्यारभ्य पौर्णमासी–पर्यन्तम् ।

**अथ पर्व्वदिवसी–प्रयोगमाह—**

'चैत्रेऽथवा वैशाखे शुक्लैकादश्यामारभ्य पौर्णमासीपर्य्यन्तम् ।
जपनियममयुतद्वयं मनो तथा चत्वारिंशत् सहस्रं दशार्णे ।।इति

**पूर्वसेवाख्य-पुरश्चरणप्रयोग** माह, (क्रमदीपिकायां पञ्चम-पटले ४९–६९ )—

सायाह्ने वासुदेवं यो नित्यमेवं यजेन्नरः ।
सर्वान् कामानवाप्यान्ते स याति परमां गतिम् ।।
रात्रौ चेन्मन्मथाक्रान्तमानसं देवकीसुतम् ।
यजेद्रास-परिश्रान्तं गोपीमण्डल–मध्यगम् ।।

पृथुं सुवृत्तं मसृणं,-मालोन्नतं कौ विनिखन्य शङ्कुम् ।
आक्रम्य पद्भ्यामितरेतरात्त,-हस्तैर्भ्रमोऽयं खलु रासगोष्ठी ॥
स्थलनीरजसूनपरागभृता, लहरीकणजालभरेण सता ।
मरुता परितापहृताध्युषिते, विपुले यमुनापुलिने विमले ॥
अशरीरनिशात-शरोन्मथित,-प्रमदाशतकोटिभिराकुलिते ।
उडुनाथकरैर्विशदीकृतदिक्,-प्रसरे विचरद्भ्रमरीनिकरे ॥
विद्याधरकिन्नरसिद्धसुरैः, गन्धर्व्वभुजङ्गम-चारणकैः ।
दारोपहितैः सुविमानगतैः, खस्थैरभिवृष्टसुपुष्पचयैः ॥
इतरेतर-वद्धकर प्रमदा,-गणकल्पितरासविहारविधौ ।
मणिशङ्कुगमप्यमुना वपुषा, वहुधा विहितस्वकदिव्यतनुम् ॥
सुदृशामुभयोः पृथगन्तरगं, दयितागणवद्धभुजाद्वितयम् ।
निजसङ्ग-विजृम्भदनङ्गशिखि,-ज्वलिताङ्ग-लसत्पुलकादियुजाम्
विविधश्रुतिभिन्नमनोज्ञतर,-स्वरसप्तकमूर्च्छन-तालगणैः ।
भ्रममाणममूभिरुदारमणि,-स्फुटमण्डनशिञ्जितचारुतरम् ॥
इति भिन्नतनुं मणिभिर्मिलितं, तपनीयमयैरिव मारकतम् ।
मणिनिर्मितमध्यगशङ्कुलस,-द्विपुलारुणपङ्कजमध्यगतम् ॥
अतसीकुसुमाभतनुं तरुणं, तरुणारुणपद्मपलाशदृशम् ।
नवपल्लवचित्रसुगुच्छ-लस,-च्छिखिपिञ्छपिनद्ध-कच प्रचयम् ॥
चटुलभ्रूवमिन्दुसमानमुखं, मणिकुण्डल-मण्डितगण्डयुगम् ।
शशरक्तसहृग्दशनच्छदनं, मणिराजदनेकविधाभरणम् ॥
असन-प्रसवच्छदनोज्ज्वलस,-द्वसनं सुविलास-निवासभुवम् ।
नवविद्रुमभद्रकराङ्घ्रितलं, भ्रमराकुलदामविराजितनुम् ॥
तरुणीकुचयुक्परिरम्भ-मिलद्,-घुसृणारुणवक्षसमुक्षगतिम् ।
शिववेणुसमीरित-गानपरं, स्मरविह्वलितं भुवनैकगुरुम् ॥
प्रथमोदित-पीठवरे विधिवत्, प्रयजेदिति रूपमरूपमजम् ।
प्रथमं परिपूज्य तदङ्गवृत्ति, मिथुनानि यजेद्रसगानि ततः ॥
दलषोड़शके स्वरमूर्त्तिगणं, सहशक्तिकमुत्तमरासगतम् ।
सरमामदनं स्वकलासहितं, मिथुनाष्टकमथेन्द्रविप्रमुखान् ॥

इति सम्यगमुं परिपूज्य हरिं, चतुरावृति-संवृतमार्द्रमतिः ।
रजतारचिते चषके ससितं, सुशृतं सुपयोऽस्य निवेदयतु ॥
विभवे सति कांस्यमयेषु पृथक्, चषकेषु तु षोड़शसु क्रमशः ।
मिथुनेषु निवेद्य पयः ससितं, विदधीत पुरोवदथो सकलम् ॥
सकलभुवन मोहनं विधिं यो, नियतममुं निशिनिशुद्धदारचेताः ।
भजति स खलु सर्व्वलोकपूज्यः, श्रियमतुलां समवाप्य यात्यनन्तम् ।
निशि वा दिनान्तसमये, प्रपूजयेन्नित्यशोऽच्युतं भक्त्या ।
समफलमुभयं हि ततः, संसाराब्धिं समुत्तितीर्षति यः ॥
इत्येवं मनुविग्रहं मधुरिपुं यो वा त्रिकालं यजे
त्तस्यैवाखिलजन्तुजात–दयितस्याम्भोधिजावेश्मनः ।
हस्ते धर्म्मसुखार्थमोक्षतरवः (सद्) षड्वर्ग–संप्रार्थिताः
सान्द्रानन्द–महारसद्रवमुचो येषां फलश्रेणयः ॥'इति ।

**नित्यकृत्यप्रयोगमाह,—ॐ नमः श्रीकृष्णाय ।**

ओमस्य श्रीभगवद्गीतामालामन्त्रस्य भगवान् वेदव्यासऋषिरनुष्टुप्छन्दः श्रीकृष्णः परमात्मा देवता जपे विनियोगः ।

(गी २।११)—'अशोच्यानन्वशोचस्त्वं प्रज्ञावादांश्च भाषसे' इति बीजम् ।

(गी १८।६६)— 'सर्व्वधर्म्मान् परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज' इति शक्तिः ।

(गी १८।६६)—'अहं त्वां सर्व्वपापेभ्यो मोक्षयिष्यामि मा शुचः' इति कीलकम् ।

(गी १५।१)—'ऊर्द्ध्वमूलमधः शाखमश्वत्थं प्राहुरव्ययम्' इति कवचम्; अमुककर्म्मणि विनियोगः ।

(गी २।२७)—'नैनं छिन्दन्ति शस्त्राणि नैनं दहति पावकः' इत्यङ्गुष्ठाभ्यां नमः ।

(गी २।२७)—' न चैनं क्लेदयन्त्यापो न शोषयति मारुतः' इति तर्जनीभ्यां नमः ।

( गी २।२४ )—'अच्छेद्योऽयमदाह्योऽयमक्लेद्योऽशोष्य एव च' इति मध्यमाभ्यां नमः ।

( गी २।२४ )—'नित्यः सर्वगतः स्थाणुरचलोऽयं सनातनः' इत्यनामिकाभ्यां नमः ।

( गी ११।५ )—'पश्य मे पार्थ रूपाणि शतशोऽथ सहस्रशः' इति कनिष्ठिकाभ्यां नमः ।

( गी ११।५ )—'नानाविधानि दिव्यानि नानावर्णाकृतीनि च' इति करतलपृष्ठाभ्यां नमः ।

'नैनं छिन्दन्ति शस्त्राणि' इति हृदयाय नमः ।
' न चैनं क्लेदयन्त्यापः' इति शिरसे स्वाहा ।
'अच्छेद्योऽयम् इति शिखायै वषट् ।
' नित्यः सर्वंगतः स्थाणुः, इति कवचाय हूं ।
' पश्य मे पार्थ रूपाणि' इति नेत्रत्रयाय वौषट् ।

'नानाविधानि दिव्यानि' इत्यस्त्राय फट्; श्रीकृष्णप्रीत्यर्थे जपे विनियोगः ।

पार्थाय प्रतिबोधितां भगवता नारायणेन स्वयं
व्यासेन ग्रथितां पुराणमुनिना मध्ये महाभारते ।
अद्वैतामृतवर्षिणीं भगवतीमष्टादशाध्यायिनीं
अम्ब त्वामनुसन्दधामि भगवद्गीते भव-द्वेषिणीम् ।।१।।
नमोऽस्तु व्यास विशालबुद्धे, फुल्लारविन्दायतपत्रनेत्र ।
येन त्वया भारततैलपूर्णः, प्रज्वालितो ज्ञानमयः प्रदीपः ।२।
प्रपन्नपारिजाताय तोत्रवेत्रैकपाणये ।
ज्ञानमुद्राय कृष्णाय गीतामृतदुहे नमः ।।३।।

( श्रीगीतामाहात्म्यम्—६ )—

'सर्वोपनिषदो गावो दोग्धा गोपालनन्दनः ।
पार्थो वत्सः सुधीर्भोक्ता दुग्धं गीतामृतं महत् ।।'
वसुदेवसुतं देवं कंस-चानूर-मर्दनम् ।
देवकीपरमानन्दं कृष्णं वन्दे जगद्गुरुम् ।।५।।

भीष्मद्रोणतटा जयद्रथजला गान्धारी-नीलोत्पला
शल्यग्राहवती कृपेण वहिनी कर्णेन वेलाकुला ।
अश्वत्थाम-विकर्ण-घोरमकरा दुर्य्योधनावर्त्तिनी
सोत्तीर्णा खलु पाण्डवार्णवनदी कैवर्त्तकः केशवः ॥६॥
पाराशर्य्यवचः सरोजममलं गीतार्थगन्धोत्कटं
नानाख्यानक-केशरं हरिकथासम्बोधनाबोधितम् ।
लोके सज्जन-षट्पदैरहरहः पेपीयमानं मुदा
भूयाद्भारत-पङ्कजं कलिमलप्रध्वंसनं श्रेयसे ।७।
मूकं करोति वाचालं पङ्गुं लङ्घयते गिरिम् ।
यत्कृपा तमहं वन्दे परमानन्द-माधवम् ।८।

( श्रीभा १२।१३।१ )—
'यं ब्रह्मा वरुणेन्द्र-रुद्र-मरुतः स्तुन्वन्ति दिव्यैः स्तवै-
र्वेदैः साङ्गपदक्रमोपनिषदैर्गायन्ति यं सामगाः ।
ध्यानावस्थित-तद्गतेन मनसा पश्यन्ति यं योगिनो
यस्यान्तं न विदुः सुरासुरगणा देवाय तस्मै नमः ॥९॥

## इति न्यासविधिः ।

(गी २।१ )—'कार्पण्यदोषापहत-स्वभावः
पृच्छामि त्वां धर्मसंमूढचेताः ।
यच्छ्रेयः स्यान्निश्चितं ब्रूहि तन्मे
शिष्यस्तेऽहं शाधि मां त्वां प्रपन्नम् ॥'१॥

जपनियमशंख्या—अष्टोत्तरशतम्, अथवा सहस्रम्; प्रयोगमाह—
पुलस्त्य उवाच,—

'भगवन् सर्व्वधर्मज्ञ कवचं यत् प्रकाशितम् ।
त्रैलोक्यमङ्गलं नाम कृपया ब्रह्मणे पुरा ॥
ब्रह्मणा कथितं मह्यं परं स्नेहाद्वदामि ते ।
अतिगुह्यतमं तत्त्वं ब्रह्म मन्त्रौघ-विग्रहम् ॥
यद्धृत्वा पठनाद्ब्रह्मा सृष्टिं वितनुते सदा ।

यद्धृत्वा पठनात् पाति महालक्ष्मीर्जगत्त्रयम् ॥
पठनाद्धारणाच्छम्भुः संहर्त्ता सर्वतत्त्ववित् ।
त्रैलोक्यजननी दुर्गा महिषादि-महासुरान् ।
वरदृप्तान् जघानैव पठनाद्धारणाद्यतः ॥
एवमिन्द्रादयः सर्वे सर्वैश्वर्य्यमवाप्नुयु ।
शिष्याय भक्तियुक्ताय साधकाय प्रकाशयेत् ।
शठाय परशिष्याय निन्दकाय तथैव च ।
हरिभक्ति-विहीनाय परदार-रताय च ।
कृपणाय कुशीलाय दत्त्वा मृत्युमवाप्नुयात् ॥
त्रैलोक्यमङ्गलस्यापि कवचस्य प्रजापतिः ।
ऋषिश्छन्दश्च गायत्री देवो नारायणः स्वयम् ।
धर्मार्थकाममोक्षेषु विनियोगः प्रकीर्त्तितः ॥
ॐ प्रणवो मे शिरः पातु नमो नारायणाय च ।
भालं पायान्नेत्रयुग्ममष्टार्णो भुक्तिमुक्तिदः ।
क्लीं पायाच्छ्रोत्रयुग्मञ्चैकाक्षरः सर्वमोहनः ॥
क्लीं कृष्णाय सदा घ्राणं गोविन्दायेति जिह्विकाम् ।
गोपीजनपदं वल्लभाय स्वाहाननं मम ॥
अष्टादशाक्षरो मन्त्रः कण्ठं पायाद्दशाक्षरः ।
गोपीजनपदं वल्लभाय स्वाहा भुजद्वयम् ॥
क्लीं ग्लौं क्लीं श्यामलाङ्गाय नमः स्कन्धौ दशाक्षरः ।
क्लीं कृष्ण क्लीं करौ पायात् क्लीं कृष्णायाङ्गजोऽवतु ।
हृदयं श्रीभुवनेशः क्लीं कृष्णाय क्लीं स्तनौ मम ।
गोपालायाग्निजायान्त कुक्षियुग्मं सदावतु ॥
क्लीं कृष्णाय सदा पातु पार्श्वयुग्मं मनुत्तमः ।
कृष्ण-गोविन्दकौ पातां स्मराद्यौ ङे युतौ मनू ॥
अष्टाक्षरः पातु नाभिं कृष्णेति द्वयक्षरो मनुः ।
पृष्ठं क्लीं कृष्ण कङ्कालं क्लीं कृष्णाय द्विठान्तकः ॥
सक्थिनी सततं पातु श्रीं ह्रीं क्लीं ठ-द्वयम् ।

उरु सप्ताक्षरः पातु त्रयोदशाक्षरोऽवतु ॥
श्रीं ह्रीं क्लीं पदतो गोपीजन-पदं ततः ।
वल्लभाय स्वाहेति पातु क्लीं ह्रीं श्रीं च दशार्णकः ॥
जानुनी च सदा पातु ह्रीं श्रीं क्लीं च दशाक्षरः ।
त्रयोदशाक्षरः पातु जङ्घे चक्राद्युदायुधः ॥
अष्टादशाक्षरो ह्रीं-श्रीं--पूर्वको विंशदर्णकः ।
सर्वाङ्गं मे सदा पातु द्वारकानायको वली ।
नमो भगवते पश्चाद्वासुदेवाय तत्परम् ।
ताराद्यो द्वादशार्णोऽयं प्राच्यां मां सर्वदावतु ॥
श्रीं ह्रीं क्लीं दशवर्णस्तु क्लीं ह्रीं श्रीं षोड़शाक्षरः ।
गदाद्युदायुधो विष्णुर्मामग्नेर्दिशि रक्षतु ॥
ह्रीं श्रीं दशाक्षरो मन्त्रो दक्षिणे मां सदावतु ।
तारं नमो भगवते रुक्मिणीवल्लभाय च ।
स्वाहेति षोड़शार्णोऽयं नैर्ऋत्यां दिशि रक्षतु ॥
क्लीं-पदं हृषीकेशाय नमो मां वारुणेऽवतु ।
अष्टादशार्णः कामान्तो वायव्ये मां सदावतु ॥
श्रीं माया काम-कृष्णाय ह्रीं गोविन्दाय द्विठो मनुः ।
द्वादशार्णात्मको विष्णुरुत्तरे मां सदावतु ।
वाग् भवं काम-कृष्णाय ह्रीं गोविन्दाय ततः परं ॥
श्रीं गोपीजनवल्लभाय स्वाहा इति ततः परं ॥
द्वात्रिंशदक्षरो मन्त्रो मामैशान्ये सदावतु ।
कालीयस्य फणामध्ये दिव्यं नृत्यं करोति तं ।
नमामि देवकीपुत्रं नित्यराजानमच्युतम् ॥
द्वात्रिंशदक्षरो मन्त्रोऽप्याद्योऽधो मां सर्वतोऽवतु ।
क्लीं कामदेवाय विद्महे पुष्पवाणाय धीमहि ॥
तन्नोऽनङ्गः प्रचोदयादेष मां पातु चोर्द्ध्वतः ।
त्रैलोक्यमङ्गलं नाम कवचं ब्रह्मरूपिणं ।

इति ते कथितं विप्र सर्वमन्त्रौघविग्रहं ।
ब्रह्मेश-प्रमुखाधीशैर्नारायणमुखाच्छ्रुतं ।
तव स्नेहान्मयाख्यातं प्रवक्तव्यं न कस्यचित् ।।
गुरुं प्रणम्य विधिवत् कवचं प्रपठेद्यदि ।
सकृद्द्विस्त्रिर्यथाज्ञानं सोऽपि सर्वतपोमयः ।।
मन्त्रेषु सकलेष्वेव देशिको नात्र संशयः ।
शतमष्टोत्तरञ्चास्य पुरश्चर्य्याविधिः स्मृतः ।।
हवनादीन् दशांशेन कृत्वा तत् साधयेद्ध्रुवं ।
यदि चेत् सिद्धिकवचो विभु ( विष्णु )रेव भवेत् स्वयं ।
मन्त्रसिद्धिर्भवेत्तस्य पुरश्चर्य्याविधानतः ।।
श्रद्धा-शुद्धमतेस्तस्य ( स्पर्द्धामुद्धूय सततं ) लक्ष्मी-
वाणी वसेन्मुखे ।
पुष्पाञ्जल्यष्टकं दत्त्वा मूलेनैव पठेत् सकृत् ।
दशवर्षसहस्राणां पूजायाः फलमाप्नुयात् ।।
भूर्जे विलिख्य गुटिकां स्वर्णस्थां धारयेद्यदि ।
कण्ठे वा दक्षिणे बाहौ सोऽपि विष्णुर्न संशयः ।।
अश्वमेधसहस्राणि वाजपेयशतानि च ।
महादानानि यान्येव प्रादक्षिण्ये भुवस्तथा ।
कलां नार्हन्ति तान्येव सकृदुच्चादणादतः ।।
कवचस्य प्रसादेन जीवन्मुक्तो भवेन्नरः ।
त्रैलोक्यं क्षोभयत्येव त्रैलोक्यविजयी भवेत् ।
इदं कवचमज्ञात्वा भजेद्यः पुरुषोत्तमं ।
शतलक्षप्रजप्तोऽपि न मन्त्रः सिद्धिदायकः ।।
इति सनत्कुमारतन्त्रे नवम-पटले श्रीनारदपञ्चरात्रे (४।५)
त्रैलोक्यमङ्गलं नाम श्रीगोपालकवचं समाप्तम् ।

**अथ पुरश्चरणसङ्कल्पादि-विधिः-**

श्रीविष्णुर्विष्णुर्नमोऽस्य अमुकमासे अमुकपक्षे भास्करे अमुकतिथौ अमुकगोत्रोऽमुक- दासस्त्रैलोक्यसम्मोहन--तन्त्रोक्त-श्रीकृष्णदेवताया-

स्त्रैलोक्यसम्मोहनकवच-सिद्धिकासस्तत् कवचस्याष्टोत्तरशतजप-तद्दशांशहोम-तद्दशांशतर्पण-तद्दशांशाभिषेक-तद्दशांशब्राह्मण-भोजनरूप-पुरश्चरणमहं करिष्ये। एकदिवसे कार्य्यसिद्धिः। प्रयोगः–श्रीमद्भागवतानुसारेण दशार्णमन्त्रप्रथमे श्रीभागवत-मङ्गलाचरणे ॥

---

अथ छायापुरुषदर्शनफलामाह—

पूर्वाह्ने सूर्य्यबिम्बार्कं पृष्ठे कृत्वा नरः शुचिः।
अनिमिषो हि स्वच्छायां गलादूद्ध्वं विलोकयेत् ॥
तत्र च्छायासमुद्भूतं पुरुषं यदि पश्यति।
सर्वावयव-संयुक्तं शुभं वर्षावधि स्मृतम् ॥
अदृष्टे हस्तकर्णस्य पारयां हृदये नरः (?)
जीवस्यार्काश्विदिक्चन्द्रवह्निनेत्रसमाः क्रमात् ॥
शिरस्यादृष्टे षन्मासं सरन्ध्रे हृदि सप्तकम्।
एतज्ज्ञानं महादिव्यं दुष्टशिष्याय नो वदेत् ॥

इति श्रीकंसारिमिश्र–यशोधर-विरचित-दैवज्ञचिन्तामणौ
तृतीयप्रकाशः समाप्तः।

गायत्रीमन्त्रो राधाया मन्त्रः कृष्णस्य तत्परम्।
महाप्रभोर्मन्त्रवरो हरिनाम तथैव च।
मानसी वरसेवा च पञ्चसंस्कारसंज्ञकः

अहङ्काराधिष्ठातृत्वाद् भूतशुद्धेरधिदेवाय सङ्कर्षणाय नमः हे सङ्कर्षण देव! प्रसीद कृपां कुरु। अस्य जनस्य देहरूपेण परिणतं भूतपञ्चकं यथा सद्यः शुध्येदुपासनोपयुक्तं स्यात्तथा कृपां कुरु।

## अथ मातृकाध्यानं–

चिकुर-कलितपिच्छां पीनतुङ्गस्तनाभ्यां
करजलरुहि विद्यां दक्षिणे पद्मरूपाम्।
दधिघटमपि सव्ये बिभ्रतीं तुङ्गविद्या-
ममृतकिरणकान्ति मातृका-मूर्त्तिमीडे ॥

## केशवकीर्त्तिकादि-ध्यानं—

कोणेनाक्ष्णः पृथुरुचि मिथोहारिणा लेह्यमाना-
वेकैकेन प्रचुरपुलकेनोपगूढ़ौ भुजेन ।
गौरीश्यामौ वसनयुगलं श्यामगौरं वसानौ
राधाकृष्णौ स्मरविलसितोद्दामतृष्णौ स्मरामि ॥

तत्र न्यासस्य वासुदेवोऽधिष्ठाता, स स्तोककृष्णोऽत्र ज्ञेय-स्तद्ध्यानमुच्यते—

अभ्रश्यामं विद्युदुद्यद्दुकूलं, स्मेरं लीलाम्भोज-विभ्राजिहस्तम् ।
पिञ्छोत्तंसं वासुदेवस्वरूपं, कृष्णप्रेष्ठं स्तोककृष्णं नमामि ॥

प्राणायामे निजाभीष्टदेवौ तौ परिचिन्तयेत्—

अन्योऽन्यस्कन्धवन्दीकृत-पुलकिभुजौ हिङ्गुलस्वर्णवर्णं
कौशेयानां चतुष्कं धृतरुचि दधतौ फुल्लवक्त्रारविन्दौ ।
आचिन्वानौ विहारं परिजन-घटया संभृतारण्यभूषौ
गौरश्यामाङ्गभासौ स्मितमधुरमुखौ नौमि राधामुकुन्दौ ।
कर-कच्छपिकां कृत्वा ततो ध्यायेत् स्वदेवते ॥
इद्धैः सिद्धत्रिदशमुनिभिः प्रष्ठमप्य प्रगल्भै-
र्दूरे खस्थैर्विहितनतिभिः संभ्रमैः स्तूयमाना ।
वैकुण्ठाद्यैरपि परिजनैः सस्पृहं प्रेक्षितश्री-
र्माधुर्य्येण त्रिभुवनचमत्कारविस्तारदीक्षा ॥
नवीनयवसाङ्कुर-प्रकर-सङ्कुलद्रोणिभिः
परिस्फुरितमेखलैरखिलधातुलेखाश्रिया ।
उपस्कृत-गुहागृहैर्गिरिभिरुच्चलन्निर्झरैः
क्वचित् क्वचिदलङ्कृतास्फुटमनुष्ठानीव स्थला ॥
विकचकमलषण्डोत्कूजकारण्डवानां
निरवधि दधिदुग्धोढ़ातिमुग्धाम्बुभाजाम् ।
लघुलहरिभुजाग्रोन्मृष्टतीव द्रुमाणां
विघटितघनघर्मा निम्नगानां घटाभिः ।
मदवलितवल्गुसारसैः, सरसानां मुहुरञ्जसा रसैः ।
सरसीरुहरूढ़रोचिषां, सरसीनां विसरेण राजिता ॥

गन्धानन्दित-सिन्धुजासहचरीवृन्दैः क्षणाद्वीक्षितैः ।
बालार्कप्रतिमप्रवालसुषमापूर्णैः सुधामाधुरी-
दर्पध्वंसिफलैः पलाशिभिरतिस्फीतैर्निरुद्धातपा ।
मधूलीभिर्माद्यन्मधुकरवधूझङ्कृतिघटा-
कृतानङ्गारातिप्रमदवनभङ्गीजड़िमभिः ।
समन्तादुत्फुल्लस्तवकभरलब्धावनतिभि-
र्लताविञ्छोलीभिः पृथुभिरभितो लाञ्छिततटा ॥
कपिञ्जल-वलाकिका-चटकचातकोपयष्टिकैः
पिकैर्मदनसारिकाशुककलिङ्गपारावतैः ।
शतच्छदशितच्छदैः करटखञ्जरीटादिभिः
शकुन्तिभिरकुण्ठितध्वनिभिरन्तरुद्भाषिता ॥
आभीराणामाननवृन्दानि चकोरैः-
श्चन्द्रान्मत्वा लालसया हातुमशक्या ।
तासां लब्धं कुन्तलसाम्यं पिञ्छसमूहै-र्यद्भिर्नृत्यानुच्चैर्मत्तमयूरप्रकरैः
किटि-किरीटिभि. शल्यैर्भल्लप्लवङ्गकुरङ्गमैः
सृमर-चमरैर्गोलाङ्गूलैः समूरुचमूरुभि-
रुरुभिरुरुभिः पारीन्द्रोघैः सरारु-भयोज्झितैः
पशुभिरशुभोन्मुक्तैरिव स्थगितान्तरा गड्डरै-
र्जड़िमडामरशृङ्गैः क्षीरिणीभिरपि च च्छगलीभिः ।
गण्डशैलस्मृतिसङ्गमाभिः कासरीततिभिरप्यवरुद्धा ॥
स्थलैः क्वचन निस्थलैः स्फटिक-कुट्टिमद्योतिभि-
र्हरिन्मणिमयैरिव क्वचन शाद्वलैरुज्ज्वला ।
निजप्रवलमाधुरीमृदितहर्म्यश्रिया
प्रसूनभरमञ्जुला वरनिकुञ्जपुञ्जेन च ॥
आराधिता किल कलिन्दसुतारविन्द-स्यन्दानुबन्ध-रसिकेन समीरणेन
आनन्दतुन्दिल-चराचरजीववृन्दा ।
वृन्दाटवी प्रथममुच्चरुचिर्विचित्यां ॥ कुलकम् ॥

मुहुरविकल-कलभङ्क्रियाकलापै-रलिनिकरस्य करम्बितां स्मरेयं ।
इह घनमकरन्दसिक्तमूलां परिमलदिग्धदिशं प्रसूनवाटीं ॥

इह विद्रुमविद्रुमं हरि, न्मणिपत्रं वरहीर-कोरकं ।
कुरुविन्दफलं श्रवत्सुधा,-प्रसरं कल्पतरुं स्मरेद्बुधः ॥

ऋतुभिर्महितस्य तस्य नित्यं प्रकटं हेमतटीमध्ये विचिन्त्य—

महीष्टमष्टपत्रमुदयन्मिहिराभं, चिन्तयेदिह सरोरुहवर्य्यं ।
मणिकुट्टिममत्र विस्फुरन्तं, परमानन्दघनं स्मरेन्मनस्वी ॥

तत्र कुट्टिमुवरे स्फुटदीप्तौ योगपीठमपि विचिन्त्य—

तस्योज्ज्वलायामुरुकर्णिकायां, विराजितायां स्थितसौख्यभाजौ ।
नव्याम्बुदस्वर्णविडम्बिभासौ, कृष्णञ्च राधाञ्च विचिन्तयामि ।१।
शिखरवद्धशिखण्ड-विस्फुरत्,-कुटिलकुन्तलवेणकृतश्रियौ ।
तिलकित-स्फुरदुज्ज्वलकुङ्कुम,-मृगमदाचित-चारुविशेषकौ ॥

मनोज्ञतर-सौरभ प्रणयनन्ददिन्दिन्दिरं
स्फुरत् कुसुममञ्जरीविरचितावतंसत्विषौ ।
चलन्मकरकुण्डलस्फुरितफुल्लगण्डस्थलं
विचित्रमणिकर्णिकाद्युति-विलीढ़कर्णाञ्चलां ॥

शरदभिमुदितारविन्दद्युति,-दमनायतलोहिताञ्चलाङ्क-।
मलघुचटुलदीर्घदृष्टिखेला,-मधुरिमखर्वितखञ्जरीटयुवां ॥
वरललाटकृतार्द्धशशिप्रभुं, द्विकलसीतिकरस्फुरितालिकां ।
कुसुमकार्मुककार्मुक-विभ्रमो,-द्धतिविधूननधूर्य्यतरभ्रुवो ॥
चित्रपट्टधटिकोपम-स्फुरत्,-पाशवर्य्य-परिवीत-मस्तकं ।
नासिका-शिखर-लम्बिवर्त्तुल-स्थूलमौक्तिकरुचाञ्चिताननां ॥

राकाशारद-शर्व्वरीश-सुषमाजैत्राननश्रीयुजौ
नव्योदीर्ण-तिलप्रसूनदमन-श्रीनासिका-रोचिशौ ।
राजद्विम्वविडम्बिकाधररुचौ गण्डस्थलीन्यक्कृते
प्रोन्मीलन्मणिदर्पणोरुमहसौ सुस्मेरता-सम्पदौ ॥
दिव्यदुन्दुभि-गभीरनिस्वनं, स्निग्धकण्ठ-कलकण्ठजल्पितां
फुल्लाभिनववल्लिभिर्वलयितस्कन्धैः प्रसूनावली-

सुष्ठु लब्ध-परिपाक-दाड़िमी,-बीजराज-विजयिद्विजार्चिषे ॥
कम्बुकण्ठ-विलुठन्मणिरत्न,-रत्ननिष्क-परिशोभितकण्ठां ।
उन्नति-प्रथिम-सललितांसं, स्निग्धयोरुचिरामदनस्त्रां ॥
दीप्राम्र-युगेन भुजयोर्भुजगान् हसन्तं
केयूरिणा विलसता श्रियमाक्षिपन्तीं ।
रत्नोर्मिका-स्फुरित-चारुतराङ्गुलिभि-
र्विद्योतकङ्कणक-रञ्जित-पाणिभाजौ ॥
हरिन्मणिकवाटिकोद्भट-कठोरवक्षस्थली-
विलासिवनमालिका-मिलितहारगुञ्जावलि ।
स्फुरन्निविड़-दाड़िमीफलविड़म्बिवक्षोरुह-
द्वय-शिखरशेखरीभवदमन्दमुक्तालतां ॥
अलोलमधुपावलि-विजयि-रोमराजीवलद्-
वलीत्रितय-मण्डितप्रतनुमध्यरम्याकृतिं ।
यमस्वसरि संपतत्सुरसरिद्वरावर्त्तजिद्-
गभीरतरनाभिभागनुरुतुन्दलक्ष्मीभृतौ ॥

घनजघनविड़म्बित-रत्नकाञ्ची,-वलयित-पीतदुकूलमञ्जुलाभं ।
मणिमय-रसनाढ्यशोणपट्टा,-म्बर-परिरम्भि-नितम्बरम्यां ॥
अतिनव-मदभर-मन्थरसिन्धुरकर-बन्धुरोरुविमानौ ।
जङ्घाभ्यां रचितरुचौ सुवर्त्तुलाभ्यां गूढ़ेनाप्यनुपम-गुल्फयुग्मकेन
पद्भ्यामप्यरुण-नखोज्ज्वलाभ्यां मणिमय-नूपुराञ्चिताभ्यां ॥
आमृष्टपृष्ठमभितो दयिताभुजेन तिष्ठन्तमुत्पुलकिना किल दक्षिणेन

कान्तस्य सव्यभुजमूलकृतोत्तमाङ्गां
तद्वक्त्र पद्मतट वलगदपाङ्गयुग्मां ॥
तिरोन्यस्तग्रीवं किमपि दयितावक्त्रकमले
वलद्दीर्घापाङ्गं स्फुरदधरकूजन्मुरलिकम् ।
भज्यन्मध्यं सव्योपरि परिमिलद्दक्षिणपदं
चलच्चोल्लीमालं भुजतटगतोत्तसकुसुमम् ॥

रूपे कंसहरस्य मुग्धनयनां स्पर्शेऽतिहृष्यत्त्वचं
वाण्यामुत्कलितश्रुतिं परिमले संस्पृष्टनासापुटाम् ।
आरज्यद्रसनां किलाधरपुटे न्यञ्चन्मुखाम्भोरुहां
दम्भोद्गीर्णमहाधृतिं वहिरपि प्रोद्यद्विकाराकुलाम् ॥
मुखस्तोकोद्गीर्णानिल–विलसितामृष्ट–मुरली–
विनिष्क्रामद्ग्रामग्लपित-जगतीधैर्य्यविभवम् ।
प्रियास्पर्शेनान्तःपरवशतया खण्डितमपि
स्वरालापं भङ्ग्या सपदि गमयन्तं स्वसमयम् ॥
नीवीवन्धेऽप्यतिशिथिलिते स्वेदसन्दोहमैत्री-
रुद्ध–श्रोणीपुलिन–रसनामुन्नता-रङ्गरङ्गाम् ।
आद्यद्रवद्द्रवदभिहृदां विस्मृताशेषभावां
गाढ़ोत्कण्ठानिचयरचितोद्दाम–वैक्लव्यविज्ञाम् ॥
पुलकितवपुसौ श्रुताश्रुधारा,–स्नपितमुखाम्वुरुहौ प्रकम्पभाजौ ।
क्षणमतिगूढ़–गद्गदाढ्यवाचौ, मदनमदोन्मदचेतसौ स्मरामि ॥
नवभिः शुषिरैर्विराजिता, गुर्वी-वीजसमान-वर्ष्मभिः ।
अरुणेन विभूषिताधर,-करभाजा सरलेन वेणुना ॥
सुश्लाघ्ययान्तर्निज-मुष्टिमेयया, हस्तत्रयीमानमनोज्ञरूपया
भूयिष्टया श्यामलकान्तिजुष्टया, यष्ट्याद्यवष्टम्भित-दक्षकूर्परम् ॥
असितेन विभङ्ग ुरात्मना, पृथुमूलेन कृतेन चाग्रतः ।
धटिकाञ्चलवद्ध–मूर्त्तिना, वरशृङ्गेन पुरोनिषेवितम् ॥
भृङ्गान् स्ववद्वदनगन्धभरेण लोलान् ।
लीलाम्वुजेन मृदुलेन निवारयन्तौ ॥
उद्वीक्ष्यमाणमुखचन्द्रमसौ रसौघ-
विस्तारिणा ललितया नयनाञ्चलेन ॥
चामराभ-नवमञ्जु-मञ्जरी,–भ्राजमान-करया विशाखया
चित्रया च किल दक्षवासयो,-वीज्यमानवपुषौ विलासतः ॥
नागवल्लिदलवद्धवीटिका,-संपुटस्फुरित-पाणिपद्मया ।

चम्पकादिलतया सकम्पया, दृष्टपृष्ठतटरूपसम्पदौ ।।
रम्येन्दुलेखा-कलगीतमिश्रितै,-र्वंशीविलासानुगुणैर्गुणज्ञया ।
वीणा-निनादप्रसरैः पुरस्थया, प्रारब्धरङ्गौ किल तुङ्गविद्यया ।।
तरङ्गदङ्गया किल रङ्गदेव्या, सव्ये सुदेव्या च शनैरसव्ये
श्लथाभिमर्षेण विमृष्यमाण,-स्वेदाश्रुधारौ सिचयाञ्चलेन ।।
" श्रीराधा-प्राणबन्धोश्चरणकमलयोः केशशेषाद्यगम्या
या साध्या प्रेमसेवा व्रजचरितपरैर्गाढ़लौल्यैकलभ्या ।
भाव्यां रागाध्वपान्थैर्व्रजमनुचरितं नैत्यिकं तस्य नौमि ।।१।।
कुञ्जाद्गोष्ठं निशान्ते प्रविशति कुरुते दोहनान्नाशनाद्यां
प्रातः सायञ्च लीलां विहरति सखिभिः सङ्गवे चारयन् गाः ।
मध्याह्ने चाथ नक्तं विलसति विपिने राधयाद्धापराह्ने
गोष्ठं याति प्रदोषे रमयति सुहृदो यः स कृष्णोऽवतान्नः ।।२।।
रात्र्यन्ते त्रस्तवृन्देरित-बहुविरुतैर्बोधितौ कीरशारी-
पद्यैर्हृद्यैरहृद्यैरपि सुखशयनादुत्थितौ तौ सखीभिः ।
दृष्टौ हृष्टौ तदात्वोदित-रतिललितौ कक्खटीगीः सशङ्कौ
राधाकृष्णौ सतृष्णावपि निजनिजधाम्न्याप्ततल्पौ स्मरामि ।३।
राधां स्नात-विभूषितां व्रजपयाहूतां सखीभिः प्रगे
तद्गेहे विहितान्नपाकरचनां कृष्णावशेषाशनां ।
कृष्णं बुद्धमवाप्तधेनुसदनं निर्व्यूढ़-गोदोहनं
स्नातं कृतभोजनं सहचरैस्ताञ्चाथ तञ्चाश्रये ।।४
पूर्वाह्ने धेनुमित्रैर्विपिनमनुसृतं गोष्ठलोकानुयातं
कृष्णं राधाप्तिलोलं तदभिसृतिकृते प्राप्ततत्कुण्डतीरं
राधाञ्चालोक्य कृष्णं कृतगृह-गमनामार्य्ययार्कार्चनायै
दिष्टां कृष्णप्रवृत्त्यै प्रहितनिजसखीवर्त्मनेत्रां स्मरामि ।।५।।
मध्याह्नेऽन्योऽन्यसङ्गोदितविविधविहारादिभूषप्रमुग्धौ
वाम्योत्कण्ठातिलोलौ स्मरमख-ललिताद्यालिनर्माप्तशातौ ।
दोलारण्याम्बुवंशीहृति-रतिमधुपानार्कपूजादिलीलौ
राधाकृष्णौ सुतृप्तौ परिजन-घटया सेव्यमानौ स्मरामि ।६।

श्रीराधां प्राप्तगेहां निजरमणकृते क्लृप्तनानोपहारां
सुस्नातां रम्यवेशां प्रियमुखकमलालोकपूर्ण-प्रमोदां ।
कृष्णं चैवापराह्णे व्रजमनुचलितं धेनुवृन्दैर्वयस्यैः
श्रीराधालोकतृप्तं पितृमुखं-मिलितं मातृमृष्टं स्मरामि ।।७।।
सायं राधां स्वसख्या निजदयितकृते प्रेषितानेकभोज्यां
सख्यानीतेशशेषाशन-मुदितहृदं तञ्च ताञ्च व्रजेन्दुं
सुस्नातं रम्यवेशं गृहमनुजननी-लालितं प्राप्तगोष्ठं
निर्व्यूढ़ोश्रालिदोहं स्वगृहमनु पुनर्भुक्तवन्तं स्मरामि ।।८।।
राधां सालीगणां तामसितसितनिशायोग्यवेषां प्रदोषे
दूत्या वृन्दोपदेशादभिसृत-यमुनातीरकल्पागकुञ्जाम् ।
कृष्णं गोपैः सभायां विहित-गुणिकलालोकनं स्निग्धमात्रा
यत्नादानीय संशायितमथ निभृतं प्राप्तकुञ्जं स्मरामि ।।९।।
तावुत्कौ लब्धसङ्गौ वहुपरिचरणैर्वृन्दया राध्यमानौ
गानैर्नर्मप्रहेलीलपन-सुरटनैः रासलास्यादिरङ्गैः ।
प्रेष्ठालीभिर्लसन्तौ रतिगतमनसौ मृष्टमाध्वीकपानौ
क्रीड़ाचार्य्यौ निकुञ्जे विविधरतिरणौद्धत्यविस्तारितान्तौ ।१०।
ताम्बुलैर्गन्धमाल्यैर्व्यजनहिमपयःपादसंवाहनाद्यैः ।
प्रेम्णा संसेव्यमानौ प्रणयिसहचरीसञ्चयेनाप्तशातौ ।
वाचा कान्तेरणाभिर्निभृतरतिरसैः कुञ्जसुप्तालिसङ्घौ
राधा-कृष्णौ निशायां सुकुसुम-शयने प्राप्तनिद्रौ स्मरामि ।'११।
इति श्रीरूपगोस्वामि-विरचिता स्मरण-पद्धतिः ।। श्रीरूपो जयति ।
इति स्मरणमङ्गलं समाप्तम् ।।

## इति चतुर्थ कक्षा

## ❀ पञ्चमकक्षा ❀

❀❀❀❀❀

अथ परमैश्वर्य्यमाधुर्य्य-पीयूषामृत-वारिधेः स्वयंभगवतः कतमं तद्धाम, यत्रासौ भगवान् विहरति ? इत्यपेक्षायामाहाकरे,—

'यस्य वासः पुराणादौ ख्यातः स्थानचतुष्टये ।
व्रजे मधुपुरे द्वारवत्यां गोलोक एव च ।।'

तथाहि स्कान्दे—

'या यथा भुवि वर्त्तन्ते पुर्य्यो भगवतः प्रियाः ।
तास्तथा सन्ति वैकुण्ठे तत्तल्लीलार्थमादृताः ।। इत्यादि ।

तद्व्यवस्थामाहाकरे,—

'धामास्य द्विविधं प्रोक्तं माथुरं द्वार्वती तथा ।
माथुरञ्च द्विधा प्राहुर्गोकुलं पुरमेव च ।।
यत्तु गोलोकनाम स्यात्तत्तु गोकुल वैभवम् ।
तदात्मवैभवत्वञ्च तस्य तन्महिमोन्नतेः ।।'
( लघुभाग १।७७६-७७७, ७८१ )

अस्यार्थः—गोकुल-वैभवं गोकुलैश्वर्य्यं प्रकाशरूपम्, तस्य गोकुलस्य तदात्मवैभवत्वं स गोलोक आत्मनः स्वस्य वैभवं यस्य, तन्महिमोन्नतेस्तस्माद् गोलोकान्महिमोन्नतेर्हेतोः, अन्यथा गोलोकस्य गोकुलाप्रकटप्रकाशत्वे स्थानचतुष्टयतासिद्धिः । यद्य-प्रकटत्वेन स्थान त्वात् तदा मधुपुरी-द्वारकयोरप्रकटप्रकाशाभ्यां स्थानषट्ता स्यात्; तर्हि गोलोकस्य कुत्र स्थितिरित्याह,—परव्योमोपरि सर्वोद्र्ध्वभाग एव । श्रीब्रह्मसंहितायाम् ( ५।४७)—

'गोलोकनाम्नि निजधाम्नि तले च तस्य
देवी-महेश-हरिधामसु तेषु तेषु ।
ते ते प्रभावनिचया विहिताश्च येन
गोविन्दमादिपुरुषं तमहं भजामि ।।'इति;

'श्रियः कान्ताः कान्तः परम-पुरुषः' इत्यादि;

( ऐ ५।५६ )

'स यत्र क्षीराब्धिः सरति सुरभीभ्यश्च सुमहान्
निमेषार्द्धाख्यो वा व्रजति न हि यत्रापि समयः।
भजे श्वेतद्वीपमहमिह गोलोकमिति यं
विदन्तस्ते सन्तः क्षितिविरलचाराः कतिपये ॥' इत्यादि।

( ऐ ५।५७ )

अतएव श्रीभागवते ( १०।२।७ ) 'गच्छ देवि ! व्रजं भद्रे' इति, श्रीचैतन्यचरितामृते ( आदि ४।२९ ) 'मो-विषये गोपीगणेर उप-पतिभावे' इत्यादि प्रकटलीलानुसारेण श्रीगोलोकनाथवाक्यम्।

अत्र गोलोके श्र्यादयोऽनुवादरूपाः, कान्तादयो विधेयरूपाः, परमपीति गोलोके श्वेतद्वीप-वैकुण्ठादयोऽप्यनुवादरूपाः वृन्दावन गोकुलादयो विधेयरूपाः। ततः श्रीकृष्णोऽयं नारायणस्य विलासी गोलोक परमव्योमोपरि वर्त्तत इति दृष्ट्या जनानां झटिति प्रवृत्ति-दुर्घटा स्यात्। अतएव तद्गत परिकराणामयं सर्वेश्वरोऽस्माकं प्रभुरिति सदा स्फूर्त्तिः, न त्वयमस्माकं सखा-पुत्रप्रणयविषयकान्त इति स्फूर्त्तिः। किञ्च, गोलोकगत कैशोर लीलाया ऐश्वर्य्यमयत्वात्त ल्लीलावलितस्य गोलोकनाथस्य वाल्य-पौगण्ड-धर्माभावात् कैशोर-गतत्वेन लीलाया एकविधत्वम्। तस्मिंश्च सति—'अयं परमपुरुषः शक्तिमान्, वयमस्य शक्तयः' इति स्फूर्त्तेः पाणिग्रहणाभावाच्च समञ्जसात्वहान्या अर्थात् गौण-समञ्जसत्वापातः। अतोऽत्र रास दानाभिसारादयो लीला न सन्ति। तत्र ( व्र, सं ५।५७ )—'निमेषार्द्धाख्यो वा व्रजति न हि यत्रापि समयः' इति; दिनरात्रेर-भावाद्रात्रिविलासित्वाभावेन तल्लीलानामभावः। गौणसमञ्जस रतिमतीभिस्तद्गतस्त्रीभिस्तदयोग्यत्वात्। तस्माद्द्वारकातोऽपि गोलोकस्य न्यूनत्वम्; तथापि श्रीदासगोस्वामिनः श्रीस्तवावल्यां ( व्रजविलासः ५)—

'वैकुण्ठादपि सोदरात्मजवृता द्वारावती सा प्रिया
यत्र श्रीशतनिन्दि-पट्टमहिषीवृन्दैः प्रभुः खेलति ।
प्रेमक्षेत्रमसौ ततोऽपि मथुरा श्रेष्ठा हरेर्जन्मतो
यत्र श्रीव्रज एव राजतितरां तामेव नित्यं भजे ॥'

एवं परस्पर-सम्बन्धत्वेन मथुरातोऽपि द्वारकाया न्यूनत्वम् । अथ श्रुतिस्मृति-सम्मतं सर्वोत्कृष्टन्तु माथुरम्; यथा पद्मपुराणे (म; मा १३९-४० )—

'अहो मधुपुरी धन्या वैकुण्ठाच्च गरीयसी' इति;
एवं सप्तपुरीणान्तु सर्वोत्कृष्टन्तु माथुरम् ।
श्रूयतां महिमा देवि वैकुण्ठभुवनोत्तमः ॥' इत्यादि ।

अतएव श्रीवृहद्भागवतामृते गोलोकगत-गोपकुमारस्य तद्‌गत परिकराणां सञ्जायमानादर-गौरवदर्शनेन स्वमनो न तृप्येत् । तद्‌यथा ( २।४।११०-१३ )—

'तमेव सर्वज्ञशिरोमणिं प्रभुं
वैकुण्ठनाथं किल नन्दनन्दनम् ।
लक्ष्म्यादिकान्ताः कलयामि राधिका-
मुखाश्च दासादिगणान् व्रजार्भकान् ॥
तथाप्यस्यां व्रजक्ष्मायां प्रभुं सपरिवारकम् ।
विहरन्तं तथा नेक्षे भिद्यते तेन मन्मनः ॥
कदापि तत्रोपवनेषु लीलया तथा लसन्तं निचितेषु गोगणैः ।
पश्याम्यमुं कर्ह्यपि पूर्ववत् स्थितं निजासने स्वप्रभुवच्च सर्वथा ॥
तथापि तस्मिन् परमेशवुद्धे,-र्वैकुण्ठनाथे किल नन्दनन्दने ।
सञ्जायमानादर-गौरवेण, तत्प्रेमहान्या स्वमनो न तृप्येत् । इति

श्रीस्तवमालायाञ्च ( नन्दापहरणम्—१९ )—

'लोको रम्यः कोऽपि वृन्दाटवीतो नास्ति क्वापीत्यञ्जसा बन्धुवर्गम्
यो वैकुण्ठं सुष्ठु सन्दर्श्य भूयो निन्ये गोष्ठं पातु स त्वां मुकुन्दः ॥'

यथा श्रीदशमे ( २८।११ )—

' नन्दस्त्वतीन्द्रियं दृष्ट्वा लोकपालमहोदयम् ।
कृष्णे च सन्नतिं तेषां ज्ञातिभ्यो विस्मितोऽब्रवीत् ॥'

अथ टीका—विस्मितः परम-माधुर्य्याविष्टत्वेनैश्वर्य्यानुसन्धानाभावात्; अतः परम-कारुणिकः श्रीकृष्णः स्वबन्धुवर्गं नन्दादिकं गोलोकं सन्दर्श्य पुनर्गोकुलं नीतवान् । गोलोकं भूवृन्दावनादिकम्-श्रीदशमे ( २८।१५ )नन्दादीनां वैकुण्ठदर्शनानन्तरं व्रजागमनं व्यक्तमेवास्ति । अतएव स्वयं प्रकाश–भूवृन्दावनस्य सदा प्रकटाप्रकटत्वे विराजमानत्वे तस्माद्गोकुलाख्याद्वृन्दावनाद्गोलोकस्य पृथक्त्वं न्यूनत्वञ्च स्पष्टम्, मधुरैश्वर्य्ययोरभावात् । मधुरैश्वर्य्यञ्च—'ये दैत्या दुःशका हन्तुम्' इत्यादेः । क्वचिदैश्वर्य्यसाम्येन धाम्नोर्गोलोकगोष्ठयोरैक्यं दर्शितमिन्द्राद्यैर्माधुर्य्याणामकोविदैः । ऐक्यन्तु गोलोकस्य गोकुल–वैभवप्रकाशरूपत्वात्, ( लघुभाग १।२० )—'प्रकाशस्तु न भेदेषु गण्यते स हि नो पृथक्' ; तत्र च (१।७३० )—करोति याः प्रकाशेषु कोटिशोऽप्रकटेष्वपि'; यद्यपि स्वयंप्रकाश–प्रकाश्यानां मध्ये भेदो गण्यते, तथापि चैतन्यचरितामृते ( मध्य ८।८३ ) तटस्थ हइया विचारिले आछे तरतम' तत्र च महारासप्रसङ्गे (चै० १०८) 'ता'र मध्ये एक मूर्त्ति रहे राधापाश' इति पूर्वं विचारितोऽस्ति । यद्वा, इन्द्रनीलमणिप्रभाववत्; अथवा,एकसूर्य्येण सर्वब्रह्माण्डव्यापकत्ववत् विशेषतो श्रीचरितामृते मध्यलीलायां विंशतिपरिच्छेदे श्रीसनातन-गोस्वामिशिक्षाप्रसङ्गे विवृतमस्ति; अथवा अचिन्त्यशक्तिप्रभावेण समाधेयः । किञ्च, यथा चतुर्भुजत्वेऽपि न त्यजेत् कृष्ण रूपताम् । अतः प्रकाश एव स्यात्तस्यासौ द्विभुजस्य च ॥' इत्यादिन्यायात् ब्रह्ममोहनादि-कर्त्तृत्वाभावात् मथुरा-द्वारकागत-श्रीकृष्णप्रकाशे श्री-गोकुलगत–पूर्णतमरूप-माधुर्य्याभावेऽपि प्रकाशत्वम्, तथा गोलोकेऽपि श्रीवृन्दावनगत–मधुरैश्वर्य्यमाधुर्य्ययोरभावेऽपि प्रकाशत्वम् । अप्रपञ्च प्रपञ्च–गोचरत्वमप्राकृत–प्राकृत इव श्रीगोकुलभूरूपोऽनुवादतया चिन्तामण्यादिरूपो विधेयतया, स तु माथुर-भूरूपः 'परिच्छिन्नोऽप्यथाद्भुतः' इत्यादेः । माथुरो श्रीगोकुलः —(लघुभाग–१।७७६ ) माथुरञ्च

द्विधा प्राहुर्गोकुलं पुरमेव च' इत्यादेः।

अतएव च पाद्मेऽस्य श्रूयते नित्यरूपता।

( म-मा-१३० )—

'नित्यं मे मथुरां विद्धि वनं वृन्दावनं तथा॥' इति।

'अत्रैवाजाण्डमाद्यापि पर्य्याप्तिमुपगच्छति।

वृन्दावनं प्रतीकेऽपि चानुभूतैव वेधसा।

इत्यतो रासलीलायां पुलिने तत्र यामुने।

प्रमदाशतकोट्योऽपि ममुर्यत्तत् किमद्भुतम्।

स्वैः स्वैर्लीलापरिकरैर्जनैर्दृश्यानि नापरैः।

तत्र लीलाद्यवसरे प्रादुर्भावोचितानि हि।

आश्चर्य्यमेकदैकत्र वर्त्तमानान्यपि ध्रुवम्।

परस्परमसंपृक्त-स्वरूपाण्येव सर्वथा॥

कृष्णबाल्यादि-लीलाभिर्भूषितानि समन्ततः।

शैल-गोष्ठवनादीनां सन्ति रूपाण्यनेकशः॥

त्रिभिः कुलकम्॥

लीलाढ्योऽपि प्रदेशोऽस्य कदाचित् किल कैश्चन।

शून्यं एवेक्ष्यते दृष्टियोग्यैरप्यपरैरपि॥

अतः प्रभोः प्रियाणाञ्च धाम्नश्च समयस्य च।

अविचिन्त्यप्रभावत्वादत्र किञ्चिन्न दुर्घटम्॥

चतुर्धा माधुरी तस्य व्रज एव विराजते।

ऐश्वर्य्यक्रीड़यीर्वेणोस्तथा श्रीविग्रहस्य च॥ इति

तस्मात् 'या यथा भुवि वर्त्तन्ते' इत्यादि-दिशा द्वारका-मथुरा गोकुल-नामानि स्वतन्त्राण्येव भगवतो धामानि। गोकुल-तद्वैभव प्रकाशत्वेन प्रसिद्धो गोलोक इति नाम परव्योमोपरीति शास्त्रप्रसिद्धम् यथा हरिवंशे शक्रवचनम्—

'स्वर्गादूर्द्ध्वं ब्रह्मलोको ब्रह्मर्षिगणसेवितः।

अत्र सोमगतिश्चैव ज्योतिषाञ्च महात्मनाम्।

तस्योपरि गवां लोकः साध्यास्तं पालयन्ति हि॥

स हि सर्वगतः कृष्ण महाकाशगतो महान् ।
उपर्य्युपरि तत्रापि गतिस्तव तपोमयी ।।
यां न विदुर्वयं सर्वे पृच्छन्तोऽपि पितामहम् ।
गतिः शमदमाढ्यानां स्वर्गः सुकृत-कर्मणाम् ।।
ब्राह्मे तपसि युक्तानां ब्रह्मलोकः परा गतिः ।
गवामेव तु गोलोको दुरारोहा हि सा गतिः ।।
स तु लोकस्त्वया कृष्ण सीदमानः कृतात्मनाम् ।
धृतो धृतिमतां वीर निघ्नतोपद्रवान् गवाम् ।।' इति ।

इन्द्रस्तु ब्रह्ममोहनादौ गोकुल-परमैश्वर्य्यं ज्ञात्वापि परम-माधुर्य्य-दर्शनेन ब्रह्मण इव पुनर्मोहितः सन् तस्यैवाश्चर्य्यप्रकाशं गोलोकं वर्णयित्वा तस्यापि गोकुलेन सहाभेदवन्निर्देशेनाह,—'स तु लोकस्त्वया कृष्ण' इति ( हरिवंशे); अतः श्रीकृष्णवाक्यं श्रीभागवते (१०।२५।१८ )

'तस्मान्मच्छरणं गोष्ठं मन्नाथं मत्परिग्रहम् ।
गोपाये स्वात्मयोगेन सोऽयं मे व्रत आहितः ।।'इति ।

तस्माद्युक्तमेव—'यस्य वासः पुराणादौ ख्यातः स्थानचतुष्टये' इति। किञ्च, 'मच्छरणं मन्नाथं मत्परिग्रहम्' इति विशेषणादत्र ब्रह्मादीनामप्यधिकारो नास्ति, का कथाऽन्येषाम् ? दृश्यते चान्यत्र दशयोजनात्मके श्रीपुरुषोत्तमक्षेत्रे शङ्खाकारे क्रोशपञ्चके तद्देशाधि-पतेः स्वतन्त्रेणाधिकारो नास्ति; किं वहुना ? अतः स्वयं प्रकाश-भूवृन्दावनस्य परमप्राप्यत्वं परमरहस्यत्वं परमरमणीयत्वञ्च तथा श्रीभागवते ( १०।२१।१० )—

'वृन्दावनं सखि भुवो वितनोति कीर्त्ति
यद्देवकीसुत-पदाम्बुज-लब्धलक्ष्मि ।'

पुनस्तत्रैव ब्रह्मस्तवे ( १०।१४।३४ )—

'तद्भूरिभाग्यमिह जन्म किमप्यटव्यां
यद्गोकुलेऽपि कतमाङ्घ्रिरजोऽभिषेकम् ।

यज्जीवितन्तु निखिलं भगवान् मुकुन्द-
स्त्वद्यापि यत्पदरज: श्रुतिमृग्यमेव ॥'

पुनस्तत्रैव श्रीमदुद्धवोक्तौ ( १०।४७।६१ )—

'आसामहो चरणरेणुजुषामहं स्यां
वृन्दावने किमपि गुल्मलतौषधीनाम् ।'इति ।

आदिपुराणे—

'त्रैलोक्ये पृथिवी धन्या यत्र वृन्दावनं पुरी ।
तत्रापि गोपिका पार्थ यत्र राधाभिधा मम ॥'

तथाहि—

'व्रजे न गोपिका भिन्ना मत्त: पश्यन्ति केवलम् ।
गोपा गावश्च तत्रत्या ममैवानन्दविग्रहा: ॥
ये व्रजस्थानहो भिन्नान्मत् पश्यन्ति तु केचन ।
न तेषां मूढ़बुद्धीनां गतिर्नैव परत्र च ॥'

ब्रह्मसंहितायाम् (५।५६ )—

'द्रुमा भूमिश्चिन्तामणिगणमयी तोयममृतं
कथा गानं नाट्यं गमनमपि वंशी प्रियसखी
चिदानन्दं ज्योति: परमपि तदास्वाद्यमपि च ॥'इत्यादि ।

श्रीगोपालतापन्याञ्च ( उत्तर, ३६ )—'तासां मध्ये साक्षाद्-ब्रह्मगोपालपुरी' इति ।

वृहद्गौतमीये—

'इदं वृन्दावनं रम्यं मम धामैव केवलम् ।
अत्र ये पशव: पक्षिवृक्षा: कीटा नरामरा: ।
ये वसन्ति ममाधिष्ण्ये मृता यान्ति ममालयम् ॥
पञ्चयोजनमेवास्ति वनं मे देहरूपकम् ।
कालिन्दीयं सुषुम्नाख्या परमामृतवाहिनी ॥
अत्र देवाश्च भूतानि वर्त्तन्ते सूक्ष्मरूपत: ।
सर्वदेवमयश्चाहं न त्यजामि वनं क्वचित् ॥
आविर्भावस्तिरोभावो भवेन्मेऽत्र युगे युगे ।

तेजोमयं सर्वरम्यमदृश्यं चर्मचक्षुषा ॥
वृन्दावनं द्वादशमं वृन्दया परिरक्षितम् ।
हरिणाधिष्ठितं तच्च ब्रह्मरुद्रादि-सेवितम् ॥'

स्कान्दे—

'ततो वृन्दावनं पुण्यं वृन्दादेवी-समाश्रितम् ।
हरिणाधिष्ठितं तच्च ब्रह्मरुद्रादि-सेवितम् ॥
यथा लक्ष्मीः प्रियतमा यथा भक्तिपरा नराः ।
गोविन्दस्य प्रियतमं तथा वृन्दावनं भुवि ॥'

तत्र श्रीवृन्दावने श्रीगोविन्दस्थलाख्यं यथा श्रीगोविन्दलीलामृते (२१।२८)—

'श्रीगोविन्दस्थलाख्यं तटमिदममलं कृष्णसंयोगपीठं
वृन्दारण्योत्तमाङ्गं क्रमनतमभितः कूर्मपृष्ठस्थलाभम् ।
कुञ्जश्रेणीदलाढ्यं मणिमयगृहसत् कर्णिकं स्वर्णरम्भा-
श्रेणीकिञ्जल्कमेषा दशशतदलराजीवतुल्यं ददर्श ॥

अतएव स्मरणमङ्गले—'कुञ्जात्' इत्यत्र कुञ्जादिति कुञ्ज प्राधान्यात् श्रीगोविन्दस्थलगतः कुञ्जो ज्ञेय इति ।

स्कान्दे मथुराखण्डे ( म. मा ३९९-४०१ )—

'तस्मिन् वृन्दावने पुण्यं गोविन्दस्य निकेतनम् ।
तत्सेवक-समाकीर्णं तत्रैव स्थीयते मया ॥
भुवि गोविन्द-वैकुण्ठं तस्मिन् वृन्दावने नृप ।
यत्र वृन्दादयो भृत्याः सन्ति गोविन्द-लालसाः ॥
वृन्दावने महासद्म यैर्दृष्टं पुरुषोत्तमैः ।
गोविन्दस्य महीपाल ते कृतार्था महीतले ॥'

तत्र योगपीठे श्रीगोविन्ददेवस्य ध्यानं यथा क्रमदीपिकायाम् ( ३।१-३६ )—

'अथ प्रकटसौरभोद्गलितमाध्वीक-प्रोल्लसत्-
प्रसून-नवपल्लवप्रकर-नम्रशाखैर्द्रुमैः ।
प्रफुल्लनवमञ्जरी-ललितवल्लरीवेष्टितैः

स्मरेच्छिशिरितं शिवं सितमतिस्तु वृन्दावनं ॥
विकासि-सुमनोरसास्वादन-मञ्जुलैः सञ्चर-
च्छिली-मुखमुखोद्गतैर्मुखरितान्तरं झङ्कृतैः ।
कपोत-शुक-शारिका-परभृतादिभिः पत्रिभि-
र्विरावितमितस्ततो भुजगशत्रुनृत्याकुलं ॥
कलिन्ददुहितुश्चलल्लहरि-विप्रुषां वाहिभि-
र्विनिद्रसरसीरुहोदररजश्चयोद्भास्वरैः ।
प्रदीपित-मनोभव-व्रजविलासिनी-वाससां ।
विलोलन-विहारिभिः सततसेवितं मारुतैः ॥
प्रवाल-नव पल्लवं मरकतच्छदं वज्रमौ-
क्तिकप्रकर-कोरकं कमलरागनानाफलं ।
स्थविष्ठमखिलर्त्तुभिः सततसेवितं कामदं
तदन्तरपि कल्पकाङ्घ्रिपमुदञ्चितं चिन्तयेत् ॥
सुहेम-शिखरावलेरुदितभानुवद्भास्वरा-
मधोऽस्य कनकस्थलीममृतशीकरासारिणः ।
प्रदीप्तमणिकुट्टिमां कुसुमरेणुपुञ्जोज्ज्वलां
स्मरेत् पुनरतन्द्रितो विगतषट्तरङ्गो बुधः ॥

तद्रत्नकुट्टिम-निविष्टमहिष्ठयोग पीठेष्टपत्रमरुणं कमलं विचिन्त्य ।
उद्यद्विरोचन-सरोचिरमुष्य मध्ये सञ्चिन्तयेत् सुखनिविष्टमथो मुकुन्दं
सुत्रामरत्नदलिताञ्जनमेघपुञ्ज-प्रत्यग्रनीलजलजन्म-समानभास ।
सुस्निग्धनीलघनकुञ्चितकेशजालं राजन्मनोज्ञ-शितिकण्ठशिखण्डचूडं

रोलम्बलालित-सुरद्रुममूल-कल्पि-
तोत्तंसमुत्कचनवोत्पल-कर्णपूरं ।
लोलालक-स्फुरितभालतल-प्रदीप्त-
गोरोचनातिलकमुच्चल-चिल्लिमालं ॥
आपूर्णशारदगताङ्कशशाङ्कविम्व-कान्ताननं कमलपत्रविशालनेत्रं ।
रत्नस्फुरन्मकर-कुण्डलरश्मिदीप्त-गण्डस्थलीमुकुरमुन्नतचारुनासं ॥

सिन्दूर-सुन्दरतराधरमिन्दु-कुन्द-मन्दार-मन्दहसितद्युतिदीपिताशं ।
वन्यप्रवालकुसुमप्रचयावक्लृप्त-ग्रैवेयकोज्ज्वलमनोहरकम्बु-कण्ठं ॥

मत्तभ्रमद्भ्रमरजुष्ट-विलम्बमान-
सन्तानकप्रसवदामपरिष्कृतांसं ।
हारावलीभगण-राजित-पीवरोरो-
व्योमस्थलीललित-कौस्तुभ-भानुमन्तं ॥

श्रीवत्सलक्षण-सुलक्षितमुन्नतांस-
माजानुपीनपरिवृत्तसुजातबाहुं ।
आबन्धुरोदरमुदारगभीर-नाभिं
भृङ्गाङ्गना-निकरमञ्जुलरोमराजिं ॥

नानामणि-प्रघटिताङ्गद-कङ्कणोर्मि-
ग्रैवेयसारसन-नूपुर-तुन्दबन्धं ।
दिव्याङ्गराग-परिपिञ्जरिताङ्गयष्टि
मापीतवस्त्र परिवीत नितम्बबिम्बं ॥

चारूरुजानुमनुवृत्त मनोज्ञजङ्घ
कान्तोन्नत प्रपरनिन्दितकूर्मकान्ति ।
माणिक्यदर्पणलसन्नखराजिराज—
द्रक्ताङ्गुलिच्छदनसुन्दर पादपद्मं ॥

मत्स्याङ्कुशार-दरकेतुयवाब्ज-वज्र-
संलक्षितारुणतराङ्घ्रितलाभिरामं ।
लावण्यसारसमुदायविनिर्मिताङ्ग-
सौन्दर्य्य-निर्जित-मनोभवदेहकान्तिं ॥

आस्यारविन्द-मरिपूरित-वेणुरन्ध्र-
लोलत्कराङ्गुलि-समीरितदिव्यरागैः ।
शश्वद्द्रवीकृत-विकृष्टसमस्तजन्तु-
सन्तान-सन्ततिमनन्तसुखाम्बुराशि ॥

गोभिर्मुखाम्बुज-विलीनविलोचनाभि-
रूधोभर-स्खलित-मन्थर-मन्दगाभिः ।

दन्ताग्रदष्टपरिशिष्टतृणाङ्कुराभि-
रालम्बिवालधि-लताभिरथाभिवीतं ॥

सप्रस्रव स्तनविभूषणपूर्णनिश्च-लास्यावट क्षरित फेनिलदुग्धमुग्धैः ।
वेणुप्रवर्त्तित मनोहर-मन्द्रगीत-दत्तोच्चकर्णयुगलैरपि तर्णकैश्च ॥

प्रत्यग्रशृङ्गमृदुमस्तक संप्रहार-संरम्भवल्गनविलोलखुराग्रपातैः ।
आमेदुरैर्बहुल-सास्नगलैरुदग्र-पुच्छैश्च वत्सतर-वत्सतरी-निकायैः ॥

हम्बारव क्षुभित दिग्वलयैर्महद्भि-
रप्युक्षभिः पृथुककुद्भरभार-खिन्नैः ।
उत्तम्भित श्रुतिपुटी-परिपीत वंश-
ध्वानामृतोद्धत-विकाशिविशाल-घोणैः ॥

गोपैः समानगुणशीलवयोविलास-वेशैश्च मूर्च्छित-कलस्वर-वेणुवीणैः
मन्द्रोच्चतारपटुगानपरैर्विलोल-दोर्वल्लरी-ललित लास्यविधानदक्षैः

जङ्घान्तपीवर-कटीरतटीनिबद्ध-
व्यालोल-किङ्किणिघटारटितैरटद्भिः ।
मुग्धैस्तरक्षु नखकल्पितकण्ठभूषै-
रव्यक्तमञ्जुवचनैः पृथुकैः परीतं ॥

अथ सुललित गोपसुन्दरीणां पृथुनिविवीषनितम्ब मन्थराणां ।
गुरुकुच भरभङ्गुरावलग्न-त्रिवलि-विजृम्भित-रोमराजिभाजां ॥
तदतिमधुरचारुवेणुवाद्या-मृतरस-पल्लविताङ्गजाङ्घ्रिपाणां ।
मुकुलविसररम्यरूढ़रोमोद्-गम-समलङ्कृतगात्रवल्लरीणां ॥
तदतिरुचिरमन्दहासचन्द्रा-तप-परिजृम्भित-रागवारिराशेः ।
तरलतरतरङ्गभङ्गविप्रुट्-प्रकरसमश्रमविन्दु-सन्ततानां ॥
तदतिललितमन्दचिल्लीचाप-च्युतनिशितेक्षण मारबाणवृष्ट्या ।
दलित-सकलमर्मविह्वलाङ्ग-प्रविसृतन्दुःसह-वेपथुव्यथानां ॥
तदतिसुभग-कम्र-रूप-शोभा मृत-रसपान-विधान-लालसाभ्यां ।
प्रणय-सलिल-पूरवाहिनीना-मलसविलोल-विलोचनाम्बुजाभ्यां ॥

विस्रसत्कबरीकलापविगलत्फुल्लप्रसूनस्रव-
न्माध्वीलम्पट-चञ्चरीकघटया संसेवितानां मुहुः ।

मारोन्मादमद-स्खलन्मृदुगिरामालोलकान्त्युच्छ्वस-
न्नीवी-विश्लथमान-चीनसिचयान्ताविर्नितम्वत्विषां ॥
स्खलित-ललित-पादाम्भोज-मन्दाभिघात-
क्वणितमणितुलाकोट्याकुलाशामुखानां ।
चलदधरदलानां कुट्नलत् पक्ष्मलाक्षि-
द्वय-सरसिरुहाणामुल्लसत्कुण्डलानां ॥
द्राघिष्ठ-श्वसन-समीरणाभिताप-प्रम्लानीभवदरुणोष्ठपल्लवानां ।
नानोपायन-विलसत् कराम्वुजाना-मालीभिः सततनिषेवितं समन्तात्
तासामायतलोलनीलनयनव्याकोष-नीलाम्वुज-
स्रग्भिः संपरिपूजिताखिलतनुं नानाविनोदास्पद ।
तन्मुग्धानन-पङ्कज-प्रविगलन्माध्वीरसास्वादिनीं
विभ्राणं प्रणयोन्मदाक्षि-मधुकृन्मालां मनोहारिणीं ॥
गोपीगोपी-पशूनां बहिः स्मरेदग्रतोऽस्य गीर्वाणघटां ।
वित्तार्थिनीं विरिञ्चि-त्रिनयन-शतमन्यु-पूर्विकां स्तोत्रपरां
तद्दक्षिणतो मुनिनिकरं दृढ़धर्मवाञ्छमाम्नायपरं ।
योगीन्द्रानथ पृष्ठे मुमुक्षमाणान् समाधिना सनकाद्यान् ।
सव्ये सकान्तानथ यक्ष-सिद्ध,-गान्धर्व-विद्याधर-चारणांश्च ।
सकिन्नरानप्सरसश्च मुख्याः कामार्थिनो नर्त्तनगीतवाद्यैः ॥
शङ्खेन्दुकुन्दधवलं सकलागमज्ञं
सौदामिनीनतिपिशङ्गजटाकलापं ।
तत्पादपङ्कजगतामचलाञ्च भक्तिं
वाञ्छन्तमुज्झिततरान्यसमस्तसङ्गम ॥
नानाविधश्रुतिगणान्वित-सप्तराग-
ग्रामत्रयीगत-मनोहरमूर्च्छनाभिः ।
संप्रीणयन्तमुदिताभिरमुं महत्या
सञ्चिन्तयेन्नभसि धातृसुतं मुनीन्द्रं ॥'
इह पद्मपुराणीयश्चाध्यायो (पाताल—३८) लिख्यते क्रमात् ॥
"श्रीपार्वत्युवाच—

'अनन्तकोटिब्रह्माण्डे तद्वाह्याभ्यन्तरस्थितं ।
विष्णोः स्थानं परन्तेषां प्रधानं प्रियमुत्तमम् ॥
यत्परं नास्ति कृष्णस्य प्रियस्थानं मनोरमं ।
तत् सर्वं श्रोतुमिच्छामि कथयस्व महाप्रभो ॥'

ईश्वर उवाच—

'गुह्याद्गुह्यतरं हृद्यं परमानन्द-कारणं ।
अत्यद्भुतं रहस्यानां रहस्यं-परमं परं ।
दुर्लभाणाञ्च परमं दुर्लभं सर्वमोहनं ॥
सर्वशक्तिमयं देवि सर्वतन्त्रेषु गोपितं ।
सात्वतां स्थानमूर्धन्यं विष्णोरत्यन्तवल्लभं ।
नित्यवृन्दावनं नाम ब्रह्माण्डोपरि-संस्थितं ।
पूर्णब्रह्मसुखैश्वर्य्यं नित्यमानन्दमव्ययं ।
वैकुण्ठादि-तदंशांशं स्वयं वृन्दावनं भुवि ॥
यत् किञ्चिद्गोकुलैश्वर्य्यं गोलोके तत् प्रतिष्ठितं ।
वैकुण्ठ-वैभवं यत्तद्द्वारकायां प्रकाशितं ॥
यद्ब्रह्म परमैश्वर्य्यं नित्यवृन्दावनाश्रयं ।
तदेव माथुरे मध्ये वृन्दारण्ये विशेषतः ॥
तस्मात् त्रैलोक्यमध्ये तु पृथ्वी धन्येति विश्रुता ।
यत्र माथुरकं धाम विष्णोरत्यन्तवल्लभं ॥
स्वस्थानादधिकं नाम ज्ञेयं माथुर-मण्डलं ।
निगूढ़ं विविधं स्थानं पुर्य्यभ्यन्तर-संस्थितं ॥
सहस्रपत्रकमलाकारं माथुर-मण्डलं ।
विष्णु-चक्रोपरि श्रीमद्धाम वैष्णवमद्भुतं ॥
कर्णिका-पत्रविस्तारं रहस्यक्रममीरितं ।
प्रधानं द्वादशारण्यं माहात्म्यं कथ्यते क्रमात् ॥
भद्र-श्री-लोह-भाण्डीर-महा-ताल-खदीरकाः ।
वहुला कुमुदं काम्यं मधु वृन्दाबनन्तथा ।
द्वादशैतान्यरण्यानि कालिन्द्याः सप्त पश्चिमे ।

पूर्वे पञ्चवनं प्रोक्तं तत्रास्ति गुह्यमुत्तमं ।
महावनं गोकुलाख्यं मधु वृन्दावनन्तथा ।
पूर्वे तु पञ्च भद्राद्यास्तालाद्या: सप्त पश्चिमे ।।
अन्यच्चोपवनं प्रोक्तं कृष्णक्रीड़ारसस्थलं ।
कदम्बखण्डिकं नन्दवनं नन्दीश्वरन्तथा ।।
नन्दनानन्दखण्डश्च पलाशाशोक-केतकि ।
सुगन्धि मादनं कैलममृतं भोजनस्थलं ।
सुख प्रसाधानं वत्स–हरणं शेषशायिनं ।।
श्यामकुण्डं दधिग्रामं वृषभानुपुरन्तथा ।।
सङ्केतं द्विपदश्चैव रासक्रीड़ं तु धूसरं ।।
केलिद्रुमं सरोवीरं काञ्चनं चन्दनं वनं ।
इत्थमेतद्वने संख्या द्वात्रिंशदुपवनं स्मृतं ।।
पूर्वोक्तं द्वादशारण्यं प्रधानं परमोत्तमं ।
तत्रोत्तरे चतुर्थं च वनं च समुदाहृतं ।
नानाविधरसक्रीड़ा-नानालीलामयं स्थलं ।
दलकेशर-विस्तारं रहस्यक्रममीरितं ।।
सहस्रपत्र कमलं गोकुलाख्यं महत् पदं ।
कर्णिका तन्महद्धाम गोविन्दस्थलमुत्तमं ।।
तत्रोपरि स्वर्णपीठे मणिमण्डपमण्डितं ।
दलाष्टं प्रथमेनोक्तं कर्णिकाया: प्रदक्षिणं ।
पूर्वादित: क्रमाद्दिक्षु विदिक्षु दलमीरितं ।।
यद्दलं दक्षिणं प्रोक्तं परं गुह्योत्तमोत्तमम् ।
तत्र रास–महापीठं निगमागम-दुर्गमं ।।
योगीन्द्रैरपि दुष्प्राप्यं तत्तु पुंसामगोचरं ।
द्वितयं दलमाग्नेयं-तद्रहस्य द्वयन्तथा ।
निकुञ्जककुटी-धीरसमीरौ तद्दले स्थितौ ।।
पूर्व्वे दलं तृतीयं यत्तत्र केशी निपातित: ।

गङ्गादि-सर्वतीर्थस्य स्पर्शाच्छतगुणं स्मृतं ॥
चतुर्थं दलमैशान्यां सिद्धपीठेऽप्सितप्रदं ।
कात्यायन्यर्कनाद्गोपी तत्र कृष्णं पतिं लभेत् ॥
वस्त्रालङ्कारहरणं तद्दले समुदाहृतं ।
तत्रोत्तरे पञ्चमं यद्दलं सर्वदलोत्तमं ॥

द्वादशादित्यमत्रैव दलञ्च कर्णिकासमं ।
वायव्याञ्च दलं षष्ठं तत्र कालीह्रदः स्मृतः ।
दलोत्तमोत्तमश्चैव प्रधानस्थानमुच्यते ।
सर्व्वोत्तमं दलं श्रेष्ठं पश्चिमे सप्तमं दलम् ।
यज्ञपत्नीगणानाञ्च तदीप्सितफलप्रदं ॥
अघासुरोऽपि निर्वाणं लभेत्तत्र दले स्थितः ॥
ब्रह्ममोहनमत्रैव दलं ब्रह्मह्रदावधि
नैर्ऋत्यां तु दलं प्रोक्तमष्टमं व्योमघातकं ।
शङ्खचूड़वधस्तत्र नानाकेलिरसस्थलं ॥
एतच्चाष्टदलं प्रोक्तं वृन्दारण्यान्तरस्थितं ।
श्रीमद्वृन्दावनं रम्यं यमुनायाः प्रदक्षिणं ।
अधिष्ठाता शिवस्तत्र लिङ्ग—गोपीश्वरः स्वयं ॥
तद्बाह्ये षोड़श-दलं श्रिया पूर्णं तदीरितं ।
नैर्ऋत्यादि क्रमात् प्रोक्तं प्रादक्षिण्याद्यथायथं ॥

महत् पदं महद्धाम सुदामाधार—संज्ञकं ॥
प्रथमैकदलं श्रेष्ठं माहात्म्यं कर्णिकासमं ।
तस्मिन् मधुवनं प्रोक्तं तत्र प्रादुरभूत् स्वयं ।
आद्यं केशवमाहुस्तं त्रिगुणातीतमीश्वरं ॥
चतुर्भुजं महाविष्णुं सर्वकारणकारणं ॥
तत्राधिष्ठाता तद्देवं सर्वश्रेष्ठं सनातनं ।
तत्र क्षेत्रपतिं देवं भूतेश्वर-महेश्वरं ।
दलं द्वितीयमाख्यातं किञ्चिल्लीलारसस्थलं ॥

खदिरारण्यमत्रैव दले च समुदाहृतं
सर्वश्रेष्ठदलं प्रोक्तं माहात्म्यं कर्णिकासमं ।।
तत्र गोवर्द्धनगिरौ रम्ये नित्यसमाश्रये ।
कर्णिकायां महालीला तल्लीलारसगह्वरे ।।
यत्र कृष्णो नित्यवृन्दाकाननस्य पतिर्भवेत् ।
कृष्णो गोविन्दतां प्राप्तः किमन्यैर्बहुभाषितैः ?
दलं तृतीयमाख्यातं सर्वश्रेष्ठोत्तमोत्तमं ।।
चतुर्थं दलमाख्यातमत्यद्भुतरसस्थलं ।
हरिर्यस्य पतिः साक्षात् नित्यं गोवर्द्धनः स्वयं ।
कदम्बोऽस्त्येव तत्रैव पूर्णानन्दरसाश्रयः ।
स्निग्धं हृद्यं प्रियः रम्यं दलञ्च समुदाहृतं ।
नन्दीश्वरदलं रम्यं तत्र नन्दालयः स्मृतः ।।
कर्णिकासम-माहात्म्यं पञ्चमं दलमुच्यते ।।
अधिष्ठातात्र गोपालो धेनुपालन-तत्परः ।
दलं षष्ठं यदाख्यातं तत्र नन्दवनं स्मृतं ।
सप्तमं वहुलारण्यं दलं रम्यं प्रकीर्त्तितं ।।
दलाष्टमं तालवनं तत्र धेनुवधः स्मृतः ।
नवमं कुमुदारण्यं दलं रम्यं प्रकीर्त्तितं ।
काम्यारण्यं दलं रम्यं प्रधानं सर्वकारणं ।
ब्रह्मस्थानदल तत्र विष्णुवृन्दं (?) प्रदर्शितं ।
कृष्णक्रीड़ारसस्थानं दशमं दलमुच्यते ।।
दलमेकादशं प्रोक्तं भक्तानुग्रहकारक ।
निर्माणं सेतुवन्धस्य नानामणिमयस्थल ।।
भाण्डीरं द्वादशं दलं वनं रम्यं मनोहरं ।
कृष्णक्रीड़ारसस्तत्र श्रीदामादिभिरावृतं ।।
त्रयोदशं दलं श्रेष्ठं तत्र भद्रवनं स्मृतं ।।
चतुर्दशं दलं प्रोक्तं तत्र मधुवनं स्मृतं ।
दलं पञ्चदशं श्रेष्ठं माहात्म्यं कर्णिकासमं ।

कथितं षोड़शदलं माहात्म्यं कर्णिकासमं ।
महावनं तत्र गीतं तत्रास्ति गुह्यमुत्तमं ।
बालक्रीड़ारसस्तत्र वत्सपालैः समावृतः ॥
पूतनादिबधस्तत्र यमलार्जुनभञ्जनं ।
अधिष्ठाता तत्र बालगोपालः पञ्चमाब्दिकः ।
नाम्ना दामोदरः प्रोक्तः प्रेमानन्द-रसार्णवः ॥
दलं प्रसिद्धमाख्यातं सर्वश्रेष्ठं दलं स्मृतं ।
कृष्णक्रीड़ा च किञ्जल्कं विहारदलमुच्यते ।
सिद्धप्रधानकिञ्जल्कं दलं च समुदाहृतं ॥'

पार्वत्युवाच.—

'वृन्दावनस्य माहात्म्यं रहस्यं वा किमद्भुतं ?
तदहं श्रोतुमिच्छामि कथयस्व महाप्रभो' ॥

ईश्वर उवाच—

' कथितं ते प्रियतमं गुह्याद्गुह्यतमोत्तमं ।
रहस्यानां रहस्यञ्च दुर्लभानाञ्च दुर्लभं ॥
त्रैलोक्ये गोपितं देवि देवेश्वर-सुपूजितं ।
ब्रह्मादि-वाञ्छितं स्थानं सुरसिद्धादि-सेवितं ॥
योगीन्द्रादि-मुनीन्द्राद्याः सदा तद्धयानतत्पराः ।
अप्सरोभिश्च गन्धर्वैर्नृत्यगीत-निरन्तरं ॥
श्रीमद्वृन्दावनं रम्यं पूर्णानन्द-रसाश्रयं ।
भूमिश्चिन्तामणिस्तोयममृतं रस-पूरितं ॥
वृक्षाः सुरद्रुमास्तत्र सुरभीवृन्द-सेवितं ।
स्त्री लक्ष्मीः पुरुषो विष्णुस्तदंशांश-समुद्भवः ॥
तत्र कैशोर-वयसं नित्यमानन्दविग्रहं ।
गतिलास्यं कथा गानं स्मितवक्त्रं निरन्तरं ॥
शुद्धसत्त्वैः प्रेमपूर्णं वैष्णवैस्तद्वनं श्रितं ।
पूर्णब्रह्मसुखे मग्नं स्फुरत्तन्मूर्त्तितन्मयं ॥
अन्योऽन्यपवनिकरैश्छादितं स्थानमुत्तमं ॥

मत्तकोकिलभृङ्गाद्यैः कूजत्कल-मनोहरं ॥
कपोत-शुक-सङ्गीतमुन्मत्तालिसहस्रकं ।
भुजङ्गशत्रु-नृत्याढ्यं सकान्तामोदविभ्रमं ॥
नानावर्णैश्च कुसुमैस्तद्रेणु-परिपूरितं ।
सुस्निग्धसौरभाक्रान्तमुग्धीकृत-जगत्त्रयं ॥
मन्दमारुतः-संसिक्तं वसन्त-ऋतुसेवितं ।
पूर्णेन्दुनित्याभ्युदयं सूर्य्यमन्दांशु-सेवितं ॥
अदुःखसुखविच्छेदं जरामरण-वर्जितं ।
अक्रोधं गतमात्सर्य्यमभिन्नमनहङ्कृतं ॥
पूर्णानन्दामृतरसं पूर्णप्रेम-सुखावहं ।
गुणातीतं महद्धाम पूर्णप्रेम-स्वरूपकं ॥
यत्र वृक्षादि-पुलकैः प्रेमानन्दाश्रु वर्षितं ।
किं पुनश्चेतनायुक्तैर्विष्णुभक्तैः किमुच्यते ?
गोविन्दाङ्घ्रिरजः स्पर्शं नित्यं वृन्दावनं भुवि ।
सहस्रदल-पद्मस्य वृन्दारण्यं वराटकं ॥
यस्य स्पर्शनमात्रेण पृथ्वी धन्या जगत्त्रये ।
गुह्याद्गुह्यतमं हृद्यं मध्यं वृन्दावनं स्थितं ॥
अक्षयं नित्यमानन्दं गोविन्दस्थानमव्ययं ।
गोविन्द-देहतोऽभिन्नं पूर्णं पूर्णसुखावहं ॥
महत् कल्पतरुच्छाये गोविन्दस्थानमव्ययं ।
मुक्तिस्तद्रजसः स्पर्शात्तन्माहात्म्यं किमुच्यते ?
तस्मात् सर्वात्मना देवि हृदिस्थं कुरु तद्वनं ।
वृन्दावन-विहारेषु कृष्णं कैशोर-विग्रहं ॥
अन्यारण्येषु स्थानेषु बाल्य-पौगण्ड-यौवनं ।
कालिन्दीमकरोदस्य कर्णिकायाः प्रदक्षिणं ॥
लीलानिर्माण-गम्भीरं जलं सौरभ-मोहनं ।
आनन्दामृत-तन्मिश्रमकरन्द-घनालयं ॥
पद्मोत् पलाद्यैः कुसुमैर्नानावर्णैः समुज्ज्वलं ।

चक्रवाकादि-विहगैर्मञ्जुनानाकलस्वनैः ।।
शोभमानं जलं रम्यं तरङ्गातिमनोहरं ।
तस्योभयतटी रम्या शुद्धकाञ्चन-निर्मिता ।।
गङ्गाकोटिगुणः प्रोक्तो यत्र स्तर्शो वराटकः ।
कर्णिकायाः कोटिगुणो यत्र क्रीड़ारतो हरिः ।
कालिन्दी कर्णिका कृष्णस्त्वभिन्न एकविग्रहः ।।'

पार्वत्युवाच,—

'गोविन्दस्य किमाश्चर्य्यं सौन्दर्य्याकृतिमव्ययं ?
तदहं श्रोतुमिच्छामि कथयस्व कृपानिधे ।।'

ईश्वर उवाच—

'मध्ये वृन्दावने रम्ये मञ्जुमन्दारशोभिते ।
योजनोच्छ्रित-सद्वृक्षैः शाखापल्लव-मण्डितैः ।।
महत्पदं महद्धाम महानन्दरसाश्रये ।
प्रवालकुसुमैर्गन्धैर्मत्तालीवृन्दसेवितैः ।।
तत्राधस्तात् सिद्धपीठे गोविन्दस्थलमव्ययं ।
सप्तावरणकं स्थानं श्रुतिमृग्यं निरन्तरं ।।
तत्र शुद्धे हेमपीठे मणिमण्डप–मण्डिते ।
तन्मध्ये मञ्जुभिरन्यैर्योगपीठ-समुज्ज्वलं ।
तत्र षट्कोण–निर्माणं नानादीप्तमनोहरं ।।
तत्रोपरि च माणिक्य–स्वर्णसिंहासनोज्ज्वलं ।
तस्मिन्नष्टदलं पद्मं कर्णिकायां सुखाश्रयं ।।
गोविन्दस्य प्रियस्थानं किमस्य महिमोच्यते ?
श्रीमद् गोविन्दमत्रस्थं वल्लवीवृन्द–सेवितं ।।
दिव्यव्रजवयोरूपं कृष्णं वृन्दावनेश्वरं ।
व्रजेन्द्रं सन्ततैश्वर्य्यं व्रजरामैकवल्लभं ।।
यौवनोद्भिन्न-वयसाद्भुतविग्रह-धारिणं ।
सान्द्रानन्दपरं ज्योतिर्दलिताञ्जन-सन्निभं ।।
अनादिमाद्यं सर्वेशं नन्दगोप–प्रियात्मजं ।

श्रुतिमृग्यमजं नित्यं गोपीजन-मनोहरं ।।
परं धाम परं रूपं द्विभुजं गोकुलेश्वरं ।
वल्लवीनन्दनं ध्यायेन्निर्गुणस्यैककारणं ।।
सूत्राम-मणिसुस्वच्छ-श्यामधाम मनोहरं ।
नवीननीरदश्रेणीसुस्निग्धं मञ्जु सुन्दरं ।।
फुल्लेन्दीवर-सत्कान्ति-सुखस्पर्शं सुखाश्रयं ।
दलिताञ्जन-पुञ्जाभ-चिक्कणं श्याममोहनं ।
सुस्निग्ध-नीलकुटिलाशेष-सौरभ-कुन्तलं ।
तदूर्ध्वं दक्षिणे भागे तिर्य्यक्चूड़ं मनोहरं ।।
प्रस्फुरन्मञ्जुमाणिक्य-कम्बुकण्ठविभूषितं ।
करे कङ्कण-केयूरं किङ्किणी-कटिशोभितं ।।
मञ्जुमञ्जीरसौन्दर्य्यं श्रीमदङ्घ्रिविराजितं ।
कर्पूरागुरु-कस्तूरी-विलसच्चन्दनाङ्ककं ।।
गोरोचनादि-संमिश्र-दिव्याङ्गरागचित्रकं ।।
स्निग्धपीतघटीराजत् प्रपदान्दोलिताञ्चलं ।
गभीरनाभि-कमलं रोमराजि-विराजितं ।।
सुवृत्तजानुयुगलं पादपद्म-मनोहरं ।
ध्वजवज्राङ्कुशाम्भोजकराङ्घ्रितल-शोभितं ।
नखेन्दुकिरणश्रेणीपूर्णब्रह्मैककारणं ।
केचिद्वदन्ति तद्रश्मि ब्रह्म चिद्रूपमव्ययं ।।
तदंशांशं महाविष्णुं प्रवदन्ति मनीषिणः ।
योगीन्द्रैः सनकाद्यैश्च तदेव हृदि चिन्त्यते ।।
श्यामं त्रिभङ्गललितं लावण्यासार-निर्मितं ।।
तिर्य्यग्ग्रीवाजितानन्त-कोटिकन्दर्पसुन्दरं ।।
वामांसार्पित-सद्गण्डस्फुरत् काञ्चनकुण्डलं ।
सापाङ्गेक्षण-सुस्मेरं कोटिमन्मथमन्मथं ।।
कुञ्चिताधरसंन्यस्तवंशीमञ्जुकलस्वनैः ।
जगत्रयं मोहयन्तं मग्नं प्रेमसुधार्णवे ।।

पार्वत्युवाच,—

'परमं कारणं कृष्णं गोविन्दाख्यं महत्पदं ।
वृन्दावनेश्वरं नित्यं निर्गुणस्यैककारणं ॥
तस्य कृष्णस्य माहात्म्यं किमैश्वर्य्यं च सुन्दरं ।
तद्ब्रूहि देवदेवेश श्रोतुमिच्छाम्यहं प्रभो ॥

ईश्वर उवाच,—

'यदङ्घ्रि-नखचन्द्रांशुमहिमान्तो न विद्यते ।
तन्माहात्म्यं कियद्देवि प्रोच्यते त्वं मुदा शृणु ।
अनन्तकोटिब्रह्माण्डे अनन्तत्रिगुणोदये ।
तत्कलाकोटिकोट्यंशा ब्रह्मविष्णु-महेश्वराः ॥
सृष्टिस्थित्यादिना युक्तास्तिष्ठन्ति तस्य वैभवात् ।
तद्देहमञ्जुसौन्दर्य्यास्तेन तेन निरूपणैः ॥

तद्रूपकोटिकोट्यंशकलाकन्दर्पविग्रहाः ।
जगन्मोहं प्रकुर्वन्ति तदण्डान्तरसंस्थिताः ॥
तद्देहविलसत्कान्तिकोटिकोट्यंशचन्द्रमाः ।
तत्प्रकाशस्य कोट्यंशरश्मयो रविविग्रहाः ।
तच्छ्याम-देहकिरणैः परानन्द-रसामृतैः ।
परं मोक्षं च चिद्रूपैर्निर्गुणस्यैककारणैः ॥

तदंशकोटिकोट्यंशा जीवास्तत् किरणा मताः ।
तदङ्घ्रिपङ्कज-मुखे नखचन्द्रशशिप्रभं ॥
आहुः पूर्णब्रह्मणोऽपि कारणं वेददुर्गमम् ।
तदङ्गसौरभानन्तकोट्यंशो विश्वमोहनः ॥
तत्स्पर्शगन्धपुष्पादिनानासौरभसम्भवः ॥
तत्प्रिया प्रकृतिस्त्वाद्या राधिका कृष्णवल्लभा ।
तत्कलाकोटिकोट्यंशा दुर्गाद्यास्त्रिगुणात्मिकाः ।
तस्याङ्घ्रिरजसः स्पर्शात् कोटिविष्णुः प्रजायते ।
तत्पादपङ्कज-स्पर्शाद्धन्यासि त्वं वरानने ॥'

इति श्रीपद्मपुराणे (पातालखण्डे—३८) श्रीवृन्दावन-माहात्म्यम्॥

यथा वृहद्गौतमीये—

'देवी कृष्णमयी प्रोक्ता राधिका परदेवता।
सर्वलक्ष्मीमयी सर्वकान्तिः सम्मोहिनी परा॥' इति।

तथा मात्स्य-स्कान्दाभ्याम्—

'वाराणस्यां विशालाक्षी विमला पुरुषोत्तमे।
रुक्मिणी द्वारवत्यान्तु राधा वृन्दावने वने॥'

**॥ श्रीश्रीराधागोविन्दौ जयतः ॥**

ॐ अथ सुषुप्तौ रामः सुवोधमाधाय इव किं मे देवि! क्वासौ कृष्णः. योऽयं मम भ्रातेति, तस्य कान्तिच्छाये ब्रूहीति।

सा वैष्णव्युवाच,—

'राम! शृणु, भूर्भुवः स्वर्महः जनस्तपः सत्यमतलं वितल सुतलं रसातलं तलातल महातलं पातालमेवं पञ्चाशत्कोटि-योजन-वहुलं स्वर्णाण्डं ब्रह्माण्डमिति। अनन्तकोटिब्रह्माण्डानामुपरि कारण जलोपरि महाविष्णोर्नित्यस्थलं वैकुण्ठम्। स पृच्छति,—कथं शून्य-मण्डले निरालम्वनम्? साप्युक्ता—पद्मासनासीनः कृष्णध्यान-परायणः शेषदेवोऽस्मि, तस्यानन्तरोमकूपेषु अनन्तकोटिब्रह्माण्डानि अनन्तकोटि-कारणजलानि, तस्य मस्तकोपरि सहस्राश्रमिता फणानि, फणोपरि रुद्रलोकं शिव-वैकुण्ठमिति दशकोटि-योजन-विस्तीर्णं रुद्रलोकं, तदुपरि विष्णुलोकं, सप्तकोटि-योजन-विस्तीर्णं विष्णुलोकं, तदुपरि सुदर्शनचक्रं त्रिकोटि-योजन-विस्तीर्णं, तदुपरि गोकुलाख्यं मथुरा-मण्डल सुधामय-समुद्रेणावेष्टितमिति। तत्राष्ट-दलकेशरमध्ये मणिमयसप्तावरणकं किंरूपं स्थानं, किं पद्मं, किं यन्त्रः किं सेवकाः किमावरणाः इत्युक्ते साप्युक्ता—गोकुलाख्ये मथुरा-मण्डले वृन्दावन-मध्ये सहस्रदलपद्ममध्ये कल्पतरोर्मूले अष्टदलकेशरे गोविन्दोऽपि श्यामः पीताम्वरो द्विभुजो मयूरपिच्छशिरो वेणुवेत्रहस्तो निर्गुणः सगुणो निराकारः सकारो निरीहः सचेष्टो विराजते इति। द्वे पार्श्वे चन्द्रावली राधा चेति यस्यांशेन लक्ष्मीदुर्गादिका शक्तिरिति

पश्चिमे सम्मुखे ललिता, वायव्ये श्यामला, उत्तरे श्रीमति, ऐशान्यां हरिप्रिया, पूर्वे विशाखा; चाग्नौ श्रद्धा, याम्यां पद्मा, नैऋ त्यां भद्रा: षोड़शदलाग्रे चन्द्रावली, तद्वामे चित्ररेखा, तत्पार्श्वे श्रीशशिरेखा, तत्पार्श्वे कृष्णप्रिया, तत्पार्श्वे कृष्णवल्लभा, तत्पार्श्वे चन्द्रावती, तत्पार्श्वे मनोहरा, तत्पार्श्वे योगानन्दा, तत्पार्श्वे परानन्दा, तत्-पार्श्वे प्रेमानन्दा चित्रकरा, तत्पार्श्वे मदनसुन्दरी नन्दा, तत्पार्श्वे सत्यानन्दा, तत्पार्श्वे चन्द्रा, तत्पार्श्वे किशोरीवल्लभा, करुणा कुशला एवं विविधा गोप्य: कृष्णसेवां कुर्वन्तीति वेद-वचनं भवतीति वेद-वचनं भवति। मानस पूजयाजपेन ध्यानेन कीर्त्तनेन स्तुति-मानसेन सर्वेण नित्यस्थलं प्राप्नोति नान्येनेति नान्येनेति।

इत्यार्थवणीय-पुरुषवोधिन्यां प्रथम: प्रपाठक: ॥१॥

साप्युक्ता—तस्य वाह्ये शतदलपत्रेषु योगपीठेषु रासक्रीड़ानु-रक्ता गोप्यस्तिष्ठन्ति। * * * * एतच्चतुर्द्वारं लक्षसूर्य्य-समुज्ज्वलम्। तत्र समाकीर्णः। तत्र प्रथमावरणे पश्चिमे सम्मुखे स्वर्णमण्डपे गोपकन्या, द्वितीये श्रीदामादिस्तृतीये विङ्कण्यादिश्चतुर्थे लवङ्गादिः, पञ्चमे कल्पतरोमूले उषा-सहितोऽनिरुद्धोऽपि, षष्ठे देवाः सप्तमे रक्तवर्णो विष्णुरिति द्वारपालं। एतद्वाह्ये राधाकुण्डं, तत्र स्नात्वा राधाङ्गं भवति, ईश्वरस्य दर्शनयोग्यं भवति, तत्र स्नात्वा नारद ईश्वरस्य नित्यस्थल-समीपयोग्यो भवति। राधाकृष्णयो-रेकासने एकबुद्धिरेकं मन एकं ज्ञानमेक आत्मा एकपद्मं काकृतिरेकं ब्रह्मतयासनं हेममुरलीं वादयन् हेमस्वरूपामनुराग-सम्वलितां कल्प-तरोमूले सुरभि-विद्यामरक्षितविमलाश्रुरिव परमा सिद्धा सात्त्विका शुद्धा सात्त्विकी गुणातीत-स्नेहभाव रहिता। अतएव द्वयोर्न भेदः कालमायागुणातीतं स्यात्। तदेव स्पष्टयति,—अथेति। अथानन्तरं मङ्गले वा, अत्र श्रीवृन्दावन-मध्ये ऋग्यजुःसामस्वरूपं रूपात्मको मकारः यजुरात्मको उकारः, श्रीराम-रमात्मकोऽपि अकारः, श्रीकृष्णो ऽर्द्धमात्रात्मकोऽपि यशोदा इव विन्दुः परब्रह्मसच्चिदानन्द-राधा-कृष्णयोः परस्परसुखाभिलाष-रसास्वादन इव तत् सच्चिदानन्दामृतं

कथ्यते। एतल्लक्षणं यत् प्रणवं ब्रह्मविष्णु शिवात्मकं स्वेच्छाख्य-ज्ञानशक्तिनिष्ठं कायिक-वाचिक-मानसिकभावं सत्त्वरजस्तमः स्वरूप सत्यत्रेताद्वापरानुगीतं तुरीयं गोकुलमथुराद्वारकाणां तुरीयमेव तद् दिव्यं वृन्दावनमिति पुरैवोक्तं सर्वसम्प्रदायानुगतं त्रयम्।

इत्याथर्वणीयं-पुरुषवोधिन्यां द्वितीयः प्रपाठकः

अथानन्तरम्—

'भद्र-श्री-लोह-भाण्डीर-महा-ताल-खदिरकाः।
वहुला-कुमुदा-काम्यं मधु-वृन्दावनानि च ॥'

द्वादश वनानि; कालिन्द्याः पश्चिमे सप्त-वनानि, पूर्वे पञ्च वनानि, उत्तरे तु गुह्यमस्तीति। महावनं गोकुलाख्यं मथुरा मधु-वनमिति खदिरवनं भाण्डीरवनं नन्दीश्वरवनं नन्दनानन्दखण्डेव वनं पलाशाशोकवनं केतद्रुम-( नवगन्ध ) भद्रवनशेषशायि-क्रीड़ावन-उत्सववनान्येतेषु चतुश्चतुर्विंश वनानि नानालीलया नित्यस्थलानि कृष्णः क्रीड़ति। तस्य वसन्तऋतु-सेवितं नन्दाद्युपवनयुक्तम्। तत्र दुःखं नास्ति, सुखं नास्ति, जरा नास्ति मरणं नास्ति, क्रोधं नास्ति। तत्र पूर्णानन्दमयः श्रीकेशोरः कृष्णः शिखण्डदल-लम्बित-त्रियुग्म-गुञ्जावतंस-मणिमय-किरीटीशिरो गोरोचना-तिलकः कर्णयोर्मकर कुण्डले वन्यस्रग्वी मालतीदामभूषित-शरीरः करे कङ्कणः केयूरं कट्यां किङ्कणी-पीताम्वरधरो गम्भीर-नाभिकमलः सुवृत्त-नासायुगलो ध्वजवज्रादिचिह्नितपादपद्मस्तदंशांशेन कोटि-महाविष्णुरिति। एवं रूपं कृष्णचन्द्रं चिन्तयेत्। नित्यशः सुधीरिति; तस्य आद्या प्रकृतिः राधिका नित्या निर्गुणा सर्वालङ्कार-शोभिता प्रसन्ना, अनेकलावण्य-सुन्दरी अस्मदादीनां जन्मदात्री। अस्यांशा वहवो विष्णुरुद्रादयो भवन्ति। एवं भूतस्य सिद्धि-महिम्ना सुख-सिन्धुरशो नोत्पन्न इति मानस-पूजया जपेन ध्यानेन कीर्त्तनेन स्तुतिमानसेन सर्वेण नित्यस्थलं प्राप्नोतीति नान्येनेति नान्येनेति वेदवचनं भवतीति वेदवचनं भवतीति वेदवचनं भवतीति।

इत्याथर्वणीय-पुरुषवोधिन्यां तृतीयः प्रपाठकः ॥२॥

अथ पुरुषोत्तमस्यानिशं तुरीयं साक्षाद्ब्रह्म—यत्र परम-सन्नचासस्वरूप: कृष्णन्यग्रोध: कल्पपादप:, यत्र लक्ष्मीजाम्बवती-राधिका-विमला-चन्द्रावली-सरस्वती-ललितादिभिरिति साक्षाद् ब्रह्मस्वरूपो जगन्नाथ: । अहं सुभद्रा शेषांशो ज्योतीरूप: सुदर्शनो भक्तश्च । एवं ब्रह्म पञ्चधा विभूतिर्यत्र मथुरा-गोकुल-द्वारका-वैकुण्ठपुरी-श्वेतद्वीपपुरी-रामपुरी, एता: देवतास्तिष्ठन्ति । यत्र सुरसा-पातालगङ्गा-श्वेतगङ्गा—रोहिणीकुण्डममृतकुण्डमित्यादि—नानापुरी । ( यत्रान्नं सिद्धान्न ब्रह्मस्पर्शाद्दोषरहितं शूद्रादि-संस्कारापेक्षा-रहितम्, यत्र श्रीजगन्नाथस्य योग्यमित्यर्थ: । अन्यवर्णोदीरित-नानाभ्यासी सीदति मन्त्र, 'अन्नपात्तेन्नस्य' इति मन्त्र:, अन्नाद्याय व्यूहध्वं सोमो राजाय मागमन् स मे सुखं प्रमायं तेजसा च बलेन च' इत्यनेन मन्त्र:, 'विश्वकर्मणे स्वाहा' इति मन्त्रेशायोज्यो रसोऽमृतं ब्रह्म भूर्भुव: स्वरोम् । पृथ्वी ते पात्रन्धोऽपिधानं ब्राह्मणस्य मुखे अमितं अमृतं जुहोमि स्वाहा —इत्यनेन मन्त्रेण अन्नब्रह्मेति श्रुतिरिति वैकल्पं मुक्तिरुच्यते । ) यत्रान्नं ब्रह्म परमं पवित्रं शान्तो रस: कैवल्य मुक्ति: सिद्धा भूर्बुद्धिर्हि तत्त्वमित्यादि यत्र भार्गवी यमुना समुद्रम-मृतमयं वासो वृन्दावनानि नीलपर्वतो गोवर्द्धनं-सिंहासनं योगपीठ-प्रासाद-मणिमण्डपं विमलादि-षोड़श-चण्डिका गोपी । यत्र समुद्रतीरे निरंशका माघनोष्ठेदं यत्र नृसिंहादयो देवता आवरणानि, यत्र न जरा न मृत्युर्न कालो न भङ्गो न यमो न विवादो न हिंसा न भ्रान्तिर्न स्वप्न एवं लीलाकामभरा स्वविनोदार्थं भक्ता: सोत्कण्ठिता: । अस्यां क्रीड़ति कृष्ण: ।

एको देवो नित्यलीलानुरक्तो, भक्तव्यापी भक्तहृद्यन्तरात्मा ।
कर्माध्यक्ष: सर्वभूताधिवास:, साक्षी चेता: केवलो निर्गुणश्च ।।

मानसपूजया जपेण ध्यानेन कीर्त्तनेन स्तुतिमानसेन सर्वेण नित्यस्थलं प्राप्नोति नान्येनेति नान्येनेति वेदवचनं भवतीति वेद-वचनं भवतीति वेदवचनं भवति ।।

इत्याथर्वणीय-पुरुषबोधिन्यां चतुर्थ: प्रपाठक: ।३। इति पञ्चमकक्षा

# ❀ षष्ठ-कक्षा ❀

❀❀❀❀

❀ श्रीराधिकायै नमः ।।

❀❀❀❀

वन्देऽहं श्रीलराधायाः पदचिन्तामणिं सदा ।
श्रीकीर्त्तिदागर्भखनि-प्रादुर्भूतं सुभास्वरं ।।१।।
श्रीगोविन्द-प्रियतमावरेयं वृषभानुजा ।
तत्सुखं नित्यमिच्छन्ती वपुषा वचसा धिया ।।२।।
स यथा गोकुले साक्षाद्व्रजेन्द्रसुत ईर्य्यते ।
तस्य कान्ता तथा साक्षाद्वृषभानुसुता स्मृता ।।३।।
यदा यथेच्छा भवति निजप्रियतमस्य हि ।
तदा तथैव कुर्वती तेनैव सह दीव्यति ।।४।।
मौनमुद्रां धृते कृष्णे व्रजेऽस्मिन् प्रकटं गते ।
स्वया तन्मुद्रया युक्ता तत्पूर्वं प्रकटं गता ।।५।।
अत्रापि श्रूयते काचित् कथा पौरातनी शुभा ।
विप्रो वृहद्भानुनामा दाक्षिणात्यः सुवैष्णवः ।।६।।
ओड्रदेश-निवासी स राधानगर-ग्रामके ।
पुंस्त्रीभावेन तेनेयं कति वर्षाणि सेविता ।।
यदियं करुणा तस्यास्तत्र किञ्चिन्न दुर्घटं ।।७।।
श्रीगोविन्दस्थलावासी श्रीगोपालो दयाम्बुधिः ।
साक्ष्यं दातुं ब्राह्मणस्य स्वपदाभ्यां यतो गतः ।।८।।
अद्यापि राजते ओड्रदेशेऽसौ भक्तवत्सलः ।
कर्त्तुं न कर्त्तुं तत्कर्त्तुं समर्थो हरिरीश्वरः ।
यथा हरिस्तथा सेयं तत्प्रिया परमेश्वरी ।।९।।
ततः कियद्दिनान्तेऽस्मिन् ब्राह्मणेऽप्रकटं गते ।
तद्ग्रामवासिभिर्गूढ़ं सेव्यते वृषभानुजा ।।१०।।

तत: श्रीरूपगोस्वामिद्वारास्मिन् वृन्दिकावने ।
गोविन्दे प्रकटं याते साक्षाद्गोपेन्द्रनन्दने ।।११।
श्रीमत्प्रतापरुद्रस्य पुत्र: परमसुन्दर: ।
महाभागवतो वीर: सम्मत: साधु-मण्डलै: ।।१२।।
श्रीमत्पण्डित-गोस्वामिशिष्यस्तत्राधिकारवान् ।
तस्मिन्नाज्ञाभवद्रात्रौ श्रीगोविन्द-प्रियामणे: ।।१३।
मत् प्राणनाथो गोविन्द: साक्षाच्छ्रीनन्दनन्दन: ।
रूपद्वारा व्रजे तस्मिन्निदानीं प्रकटं गत: ।।१४।
शीघ्रं यास्यामि तत्राहं नोचितात्र स्थितिर्मम ।
नाम्ना गदाधर: ख्यातो मद्रूप: पण्डित: सुधी: ।।१५।।
प्रस्थापयतु मां यत्र शिष्यद्वारा त्वरान्वित: ।
सोऽपि तद्वचनं श्रुत्वा राजा परमविस्मित: ।।१६।।
तदानेनैव रूपेण श्रीश्वरी प्रापिता व्रजे ।
राधा-गदाधरप्रियशिष्ययुग्मेन धीमता ।।१७।।
पथि संसेव्य संसेव्य सानीता परमेश्वरी ।
यदा मदीश्वरी राधा गोविन्द-वामपार्श्वगा ।।
भवेत्तदैवास्य शोभा-विशेषो हि विवर्द्धते ।।१८।।

अत्र प्रमाणं श्रीगोविन्दलीलामृते ( १३।३२ )—

'राधा-सङ्गे यदाभाति तदा मदनमोहन: ।
अन्यथा विश्वमोहोऽपि स्वयं मदनमोहित: ।।'

श्रीभागवते च ( १०।३३।६ )—'तत्रातिशुशुभे ताभि:' इति ।

अस्या: सौन्दर्य्यमाधुर्य्यसौशील्यादिकमेव यत् ।
दर्शनादेव ज्ञातव्यं तस्मान्नात्र विलिख्यते ।।
'यथा राधा प्रिया विष्णोस्तस्या: कुण्डं प्रियं तथा ।
सर्वगोपीषु सैवैका विष्णोरत्यन्तवल्लभा ।।'

इति पाद्मोक्तात् ।

'सत्त्वं तत्त्वं परत्वञ्च तत्त्वत्रयमहं किल ।
त्रितत्त्वरूपिणी सापि राधिका मम वल्लभा ।।

प्रकृतेः पर एवाहं सापि मच्छक्तिरूपिणी ॥'

इति वृहद्गौतमीये श्रीकृष्णवचनात् ।

कृष्णवन्नित्यसौन्दर्य्यवैदग्ध्यादिगुणाश्रया ।
गोपीगण-महिषीगण-लक्ष्मीगण-प्रकाशिका ॥

सदैव मध्यालक्षणाक्रान्ता, तथा कमलाष्टदलभाग्भिः सर्व-सखीवर्गमुख्याभिः परमेष्टाभिः श्रीललिताद्यष्टसखीभिः सह विराजमाना श्रीराधिकैव श्रीवृन्दावनेश्वरी महाराज्ञी; यथा वृहद्गौतमीये--

'देवी कृष्णमयी प्रोक्ता राधिका परदेवता ।
सर्वलक्ष्मीमयी सर्वकान्तिः सम्मोहिनी परा ॥' इति ।

तथा मात्स्य-स्कान्दाभ्याम्—

'वाराणस्यां विशालाक्षी विमला पुरुषोत्तमे ।
रुक्मिणी द्वारवत्यान्तु राधा वृन्दावने वने ॥'

श्रीवृन्दावनाधीश्वरी राधिका, तस्यामेव परमोत्कर्ष-पराकाष्ठाया दर्शितत्वात् । श्रीप्रीतिसन्दर्भे च—तत् प्रेमवैशिष्ट्यं तदेव मुख्यम् ।' इति; प्रेमवैशिष्ट्यं यथा श्रीमदुज्ज्वले ( नायिका-६८ )

'कर्त्तुं शर्म क्षणिकमपि मे साध्यमुज्झत्यशेषं
चित्तात्सङ्गं न भजति मया दत्तखेदाप्यसूयाम् ।
श्रुत्वा चान्तर्विदलति मृषाप्यार्त्तिवार्त्तालवं मे
राधा मूर्द्धन्यखिलसुदृशां राजते सद्गुणेन ॥'

श्रीभागवते च ( १०।३०।२८ )—

'अनयाराधितो नूनं भगवान् हरिरीश्वरः ' इति ।

( श्रीभा १०।३०।३६-३७ )

'यां गोपीमनयत् कृष्णो विहायान्याः स्त्रियो वने';
'सा च मेने तदात्मानं वरिष्ठं सर्वयोषिताम्' इति च ।

तापनीश्रुयश्च ( उत्तर १२ )—

'तासां मध्ये गान्धर्वा श्रेष्ठा' इति च ।
'केवलं यो भजेद्भक्तो माधवं राधिकां विना ।
माधवो नैव तुष्टः स्यात् साधनं तद्वृथा भवेत् ।'इति ।

एवं दानकेलिकौमुद्याम् ( १९२-२९९ )—

"नान्दीमुखी—सहि चित्ते ! सुणाहि, इमाए वुन्दाए गदुअ भअवदी विण्णत्ता—'हन्त जोएसरि ! वुन्दावणरज्जे अहिसिञ्चिज्जउ राही।' मत्तण्डमहिसीए भणिदं—'भअवदि ! कहिं महिट्ठा एसा वच्छा राही, कहिं वा सोलहकोहमेत्तवित्थिण्णं एदं वुन्दावणरज्जं' त्ति ण सुट्ठु पसीदई मे हिअअं। तदो एक्काणंसा कहियदुं पउत्ता।

आम्नायाध्वरतीर्थमन्त्रतपसां स्वर्गाखिलस्वर्गिणां
सिद्धीनां महतां द्वयोरपि तरोश्चिच्छक्तिवैकुण्ठयोः।
वीर्य्यं यत् प्रथते ततोऽपि गहनं श्रीमाथुरे मण्डले
दीव्यत्यत्र ततोऽपि तुन्दिलतरं वृन्दावने सुन्दरि ॥'

किञ्च, श्रीराधिकामध्यायामेव ( उज्ज्वले नायिका ४२ )—

'प्रायः सर्वरसोत्कर्षो मध्यायामेव युज्यते।
यदस्यां वर्त्तते व्यक्ता मौग्ध्य-प्रागल्भ्ययोयुतिः ॥ इति।

तथाहि—

भक्तिं श्रीकृष्णचरणे न करोमि चार्त्ति
राधापदाम्वुजरणःकण-साहसेन।
तस्या दृगञ्चल-निपातविशेषवेत्ता
दैवादयं मयि करिष्यति दासवुद्धिम् ॥

पुनः श्रीकृष्णसन्दर्भे ( १८९ ) च—

'वृन्दावने श्रीराधिकायामेव स्वयंलक्ष्मीत्वम्, अतएव सतीष्वन्यास्वपि मुख्यताभिप्रायेणैव तस्या एव वृन्दावनाधिपत्वेन नामग्रहणम्। तथा श्रीलघुगणोद्देशे ( १३५ )—

'आभीर-सुभ्रुवां श्रेष्ठा राधा वृन्दावनेश्वरी।
अस्याः सख्यश्च ललिता-विशाखाद्याः सुविश्रुताः ॥'

तथाहि पाद्मे कार्त्तिक-माहात्म्ये ब्रह्म-नारद-संवादे—

'वृन्दावनाधिपत्यञ्च दत्तं तस्यै पतिव्रते।
कृष्णेनेत्यत्र देवी ते राधा वृन्दावने वने ॥' इति

अन्यत्र साधारणदेशे देव्येदाधिकारिणी श्रीवृन्दावनाभिधवने श्रीराधिकैवेत्यर्थः।

अथ श्रीऊर्द्ध्वाम्नाये—

" ईश्वर उवाच—

अथातः संप्रवक्ष्यामि राधिकाया मनून् शुभान्।
येषां विज्ञानमात्रेण वशीकुर्य्याद् ब्रजाधिपं ॥१॥
कामो रमा राधिका च ङेता पावकवल्लभा।
अष्टाक्षरो महामन्त्रः सर्वज्ञत्व-प्रदायकः ॥२॥
अगस्त्यो मुनिरेतस्य छन्दस्तु जगती स्मृतं।
देवता सुन्दरी प्रोक्ता राधिका परमेश्वरी ॥३॥
मायावीजं परा शक्तिः स्वाहा शक्तिरुदीरिता।
कीलकं कामवीजाख्यं षड् दीर्घस्वरभेदतः ॥४॥
श्रीवीजेन षड़ङ्गानि कुर्य्यात् सर्वार्थ-सिद्धये।
ध्यानमस्याः प्रवक्ष्यामि श्रीकृष्णप्रीति-कारकं ॥५॥
अशोकवन–मध्यस्थां सर्वावयव–सुन्दरीं।
गोपीं षोड़श-वर्षीयां पीनोन्नत–पयोधरां ॥६॥
दक्षहस्त-समाक्रान्त–कृष्णकण्ठावलम्बिनीं।
वामहस्तेन कमलं भ्रामयन्तीं सुलोचनां ॥७॥
नीलाम्वर-परीधानां तड़ित्काञ्चनविग्रहां।
सङ्केत-वटसुच्छायरत्नवेदी-परिस्थितां ॥८॥
रहस्यचेटिकायुग्म-पृष्ठदेशानुसेवितां।
मिथश्चुम्वनमालाप-परीरम्भ-परायणां ॥९॥
संपूर्णचन्द्रसाहस्रवदनां रुचिरस्मितां।
एवम्विधां महेशानि भावयेद्वृषभानुजां ॥१०॥

शुक्लाचतुर्दशीतः कृष्णाष्टमीपर्य्यन्तं लक्षजपविधिर्दशदिवस-प्रयोगः।

लक्षमात्रं जपेन्मन्त्रं शुभे देशे सुसंयुतः।
राधाकुण्डेऽथ सङ्केते श्रीमद्गोवर्द्धनाचले ॥११॥
किम्बा मानसगङ्गायां यमुनायास्तटेऽथवा।

वृन्दावने महाकुञ्जे माधवी-मण्डपान्तरे ॥१२॥
वैशाखे कार्त्तिके वापि मासे चैवाग्रहायणे ।
सर्व एव शुभः कालः पुरश्चर्य्या-जपादिषु ॥१३॥
चम्पकै रक्तपद्मै र्वा दशांशं जुहुयात्ततः ।
यथोक्तविहिते कुण्डे त्रिमध्वाक्तै र्महेश्वरि ॥१४॥
विल्वीदलैः किंशुकैर्वा शर्करातिलसर्पिषा ।
तत्तत्कामेन होतव्यं तैस्तैर्द्रव्यैर्विधानतः ॥१५॥
राज्यकामेन होतव्यं पद्माक्षैः पायसेन च ।
विद्याकामेन होतव्यं ब्रह्मवृक्ष-प्रसूनकैः ॥१६॥
लक्ष्मीकामेन होतव्यं विशेषात्तिल-सर्पिषा ।
स्तम्भनार्थी च जुहुयात् किंशुकैश्चम्पकैस्तथा ॥१७॥
वश्यार्थी जुहुयाद्देवि द्राक्षया सितया पुनः ।
उच्चाटे केतकीपत्रैः सर्वत्र तिलसर्पिषा ॥१८॥
भूतिकामेन होतव्यं मधुना सर्पिषा तथा ॥
एवं सिद्धमनुर्मन्त्री साधयेत् सकलेप्सितान् ॥१९॥
विशेषादमुना नूनं कृष्णवश्यत्वमाप्नुयात् ।
यो न जानाति राधाया मन्त्रं सर्वार्थसाधकम् ॥२०॥
तस्य कोटिप्रजप्तोऽपि गोपालो नैव सिद्धिदः ।
तस्माद् यथोक्तविधिना साधयेद्वृषभानुजां ॥२१॥
**अथास्यां संप्रवक्ष्यामि नाम्नामष्टोत्तरं शतम् ।**
यस्य संकीर्त्तनादेव श्रीकृष्णं वशयेद्ध्रुवम् ॥१॥
राधिका सुन्दरी गोपी कृष्णसङ्गमकारिणी ।
चञ्चलाक्षी कुरङ्गाक्षी गान्धर्वी वृषभानुजा ॥२॥
वीणापाणिः स्मितमुखी रक्ताशोकलतालया ।
गोवर्द्धनचरी गोप्या गोपीवेश-मनोहरा ॥३॥
चन्द्रावली-सपत्नी च दर्पणास्या कलावती ।
कृपावती सु प्रतीका तरुणी हृदयङ्गमी ॥४॥

कृष्णप्रिया कृष्णसखी विपरीतरतिप्रिया ।
प्रवीणा सुरतप्रीता चन्द्रास्या चारुविग्रहा ।५।
केकराक्षी हरेः कान्ता महालक्ष्मीः सुकेलिनी ।
सङ्केतवट–संस्थाना कमनीया च कामिनी ।।६।।
वृषभानुसुता राधा किशोरी ललितालता ।
विद्युद्वल्ली काञ्चनाभा कुमारी मुग्धवेशिनी ।।७।।
केशिनी केशवसखी नवनीतैकविक्रया ।
षोड़शाब्दा कलापूर्णा जारिणी जारसङ्गिनी ।।८।।
हर्षिणी वर्षिणी वीरा धीराधीरा धराधृतिः ।
यौवनस्था वनस्था च मधुरा मधुराकृतिः ।६।
वृषभानुपुरावासा मानलीलाविशारदा ।
दानलीलादानदात्री दण्डहस्ता भ्रुवोन्नता ।१०।
सुस्तनी मधुरास्या च विम्वोष्ठी पञ्चमस्वरा ।
सङ्गीत-कुशला सेव्या कृष्णवश्यत्व–कारिणी ।।११।।
तारिणी हारिणी ह्रीला शीलालीलाललामिका ।
गोपाली दधिविक्रेत्री प्रौढ़ा मुग्धा च मध्यका ।१२।
स्वाधीनपतिका चोक्ता खण्डिता चाभिसारिका ।
रसिका रसिनी रस्या रसशास्त्रैकशेवधिः ।।१३।।
पालिका लालिका लज्जा लालसा ललनामणिः ।
वहुरूपा सुरूपा च सु प्रसन्ना महामतिः ।१४।
मरालगमना मत्ता मन्त्रिणी मन्त्रनायिका ।
मन्त्रराजैक-संसेव्या मन्त्रराजैकसिद्धिदा ।।१५।।
अष्टादशाक्षरफला अष्टाक्षर-निषेविता ।
इत्येतद् राधिका देव्या नाम्नामष्टोत्तरं शतं ।१५।
कीर्त्तयेत् प्रातरुत्थाय कृष्णवश्यत्व-सिद्धये ।
एकैकनामोच्चारेण वशीभवति केशवः ।१७।
वदने चैव कण्ठे च वाह्वोरुरसि चोदरे ।
पादयोश्च क्रमेणार्णान् न्यसेन्मन्त्रोद्भवान् पृथक् ।१८।

क्लीं श्रीं राधिकायै स्वाहा। अस्य श्रीराधिकामन्त्रस्यागस्त्य-ऋषिर्जगती छन्दः श्रीराधिका परमेश्वरी देवता क्लीं बीजं स्वाहा शक्तिः क्लीं श्रीं कीलकं श्रीकृष्णवश्यर्थंजपे विनियोगः। अगस्त्य-ऋषये नमः (शिरसि)। जगतीछन्दसे नमः (मुखे)। राधिका-देवतायै नमः (हृदये)। क्लीं बीजाय नमः (गुह्ये)। श्रीं स्वाहाशक्तये नमः (पादयोः)। क्लीं श्रीं कीलकाय नमः (सर्वा-ङ्गेभ्यः)। क्लीं अङ्गुष्ठाभ्यां नमः। क्लीं तर्जनीभ्यां नमः। क्लीं मध्यमाभ्यां नमः। क्लीं अनामिकाभ्यां नमः। क्लीं कनिष्ठिकाभ्यां नमः। क्लीं श्रीं राधिकायै स्वाहा करतल पृष्ठाभ्यां नमः॥ क्लीं हृदयाय नमः। श्रीं शिरसे स्वाहा। राधिकायै स्वाहा शिखायै वषट्। क्लीं कवचाय हुं। श्रीं राधिकायै स्वाहा अस्त्राय फट्। ध्यात्वा जपेत्। लक्षमात्रं पुरश्चरणम्। कलौ चतुर्लक्षं जप्त्वा च कुशलीभवेत्। श्रीं राधिकायै विद्महे क्लीं वृषभानुजायै धीमहि तन्नो गोपी प्रचोदयात्। प्रिया गायत्र्या ब्रह्मा ऋषिर्गायत्री छन्दः श्रीराधिका देवता श्रीकृष्णप्रीतये जपे विनियोगः। श्रीश्रीराधिकायै विद्महे अङ्गुष्ठाभ्यां नमः। क्लीं वृषभानुजायै धीमहि तर्जनीभ्यां स्वाहा। तन्नो गोपी प्रचोदयात् मध्यमाभ्यां वषट्। श्रीराधिकायै विद्महे अनामिकाभ्यां हुं। क्लीं वृषभानुजायै धीमहि कनिष्ठिकाभ्यां वषट्। तन्नो गोपी प्रचोदयात् करतल-करपृष्ठाभ्यां फट्। एवं हृदयादिष्वपि।

**अथ ध्यानम्—**

सूर्य्यमण्डल-मध्यस्थां लेखनीपुस्तिकान्विताम्।
श्रीकृष्णसहितां ध्यायेत् त्रिसन्ध्यं राधिकेश्वरीम्॥

**अथाष्टादशाक्षरमहाराजमन्त्रप्रयोगः।** ॐ अस्य श्रीअष्टा-दशाक्षरश्रीराधिकामन्त्रस्य संमोहन ऋषिरनुष्टुप् छन्दः श्रीराधा देवता स्वाहा शक्तिः क्लीं कीलकं श्रीकृष्ण प्रीत्यर्थे जपे विनियोगः। संमोहन ऋषये नमः (शिरसि)। अनुष्टुप्छन्दसे नमः (मुखे)। श्रीराधा देवतायै नमः (हृदये)। रां राधिके कवचाय हुँ कृष्णवल्लभे

शिखायै वषट्। गायत्री सर्व्वाङ्गे ।। श्रीराधिकायै विद्महे कृष्ण-वल्लभायै धीमहि तन्नो गोपी प्रचोदयात् ।।

अथ अङ्गन्यास:—श्रीं अङ्गुष्ठाभ्यां नम । राधिकायै तर्ज-नीभ्यां नम:। विद्महे मध्यमाभ्यां नम:। कृष्णवल्लभायै अनामिकाभ्यां नम:। धीमहि कनिष्ठिकाभ्यां नम:। तन्नो गोपी प्रचोदयात् करतल-करपृष्ठिकाभ्यां नम:। श्रीं हृदयाय नम:। राधिकायै शिरसि स्वाहा। विद्महे कवचाय हुं। कृष्णवल्लभायै धीमहि नेत्रत्रयाय वषट्। तन्नो गोपी प्रचोदयात् अस्त्राय फट्।

**अथ ध्यानम्—**

तप्तहेमप्रभां नीलकुञ्चितावद्धमौलिकां।
शरच्चन्द्रमुखीं नृत्यच्चकोरीचारुलोचनां ।।
सर्वावयवसौन्दर्य्यां सर्वाभरण-भूषितां।
नीलाम्बरधरां कृष्णप्रियां किशोरीमाश्रये ।।

ह्रीं श्रीं क्लीं रां राधिकायै कृष्णवल्लभायै गोप्यै स्वाहा। जपनियमं लक्षमात्रं, पुरश्चरणं कलौ चतुर्गुणं, साक्षात्काराय भवेदित्यर्थ:। मायावीजमन्तरङ्गा-वहिरङ्गा-चिच्छक्तिस्वरूपम्। लक्ष्मीवीजं परब्रह्मानन्द-सर्वलक्ष्मीसर्वशक्ति-स्वरूपम्। कामवीजं साक्षात्-मन्मथ-मन्मथलीलाविलासश्रीकृष्णस्वरूपम्। रकार: शुक्ल-भास्कररूप:; आकार: समस्तैश्वर्य्यरूप:, विन्दु: समस्तमाधुर्य्यरूप: कला समस्त संयोगरूप:। तत्र—

कलाया नित्यसंयोगो विन्दुर्माधुर्य्यमिष्यते।
नारायणो निजैश्वर्य्यं रकार: शुक्लभास्कर: ।।

किञ्च, प्राणायामविधि:—

एकेनापूरयेद्वामे चतुर्भि:। कुम्भयेदथ।
ईड़ादि-क्रमतो मन्त्रो ततो द्वाभ्यां विरेचयेत् ।।

**अथ श्रीराधिकाया: प्रियतमश्रीपञ्चाक्षरी-मन्त्रविधानं पूर्ववत्।**

## अथ श्रीगोपेश्वरी-साधनम् *—

अथास्याः साधनं वक्ष्ये गोपेश्वर्य्या विशेषतः ।
राकायां पूर्णचन्द्रे तु सायमारभ्य यत्नतः ॥१॥
नित्यकृत्य विनिर्वर्त्त्यं जपहोमादिकं तथा ।
ततो मध्यदिनं गते शीतभानौ सुमण्डले ॥२॥
अथ संरोपयेत् पात्रं विशालं राजतादिकं ।
तन्मध्ये पूरयेत्तोयं यामुनं गाङ्गमेव वा ।३।
द्विरावृत्त्या मातृकया आरोहादवरोहतः ।
अथवा पुष्करादौ च विमले तीर्थवारिणि ।४।
प्रपश्येत् सुमना भूत्वा संपूर्णं चन्द्रमण्डलं ।
विम्बितं सुस्थिरीभूतं पीठवुद्धया विभावयेत् ।५।
दिग्वन्धं विधिना कृत्वा विघ्नानुत्सारयेत् सुधीः ।
पीठन्यासं ततः कुर्य्यात् संपूर्णे चन्द्रमण्डले ।६।

---

* 'उपवासं तीर्थयात्रां सन्यासं व्रतधारणम् ।
वर्णाश्रमाचारकर्म राकायां षड् विवर्जयेत् ॥
इति क्वचित् पुस्तके श्लोकोऽयं दृश्यते ।

प्रकृतिञ्चैव कूर्मञ्च सुधासिन्धुमहोहरं ।
मणिद्वीपं तथा दिव्यं चिन्तामणिगृहं तथा ।७।
पारिजातं तस्य मूले रत्नवेदी सुविस्तरां ।
रत्नपीठं चतुर्दिक्षु गोपकन्याः स्वलङ्कृताः ।८।
कुरङ्गशावकांश्चापि रत्नदण्डान्मनोहरान् ।
धर्मं ज्ञानं च वैराग्यमैश्वर्यं चांसकोरुषु ॥९॥
अधर्मादीन्न्यसेद्‌वक्त्रे वामपार्श्वे च नाभितः ।
दक्षपार्श्वे तथा दिव्यगोपीरूपान् विचिन्त्य च ॥१०॥
आनन्दमयकन्दञ्च नालञ्चैतन्यरूपकं ।
सर्वात्मकं तथा पद्मं पर्णान् प्रकृतिरूपिणः ।११।
केशरांश्च विकाराख्यान् कर्णिकां मातृकामयीं ।

वह्न्यर्कचन्द्रबिम्बानि उपर्य्युपरि विन्यसेत् ।१२।
सत्त्वं रजस्तमश्चैव नैर्गुण्यञ्चापि विन्यसेत् ।
आत्मानमन्तरात्मानं परमात्मानमेव च ।१३।
लक्ष्मीरति-सरस्वत्यः प्रीतिः कीर्त्तिश्च शान्तिका ।
तुष्टिः पुष्टिस्तथा चैता विन्यसेत् पीठमध्यतः ।१४।
मध्ये च विन्यसेच्छ्रीमद्वृषभानुपुरालयं ।
तत्र सङ्केतकुञ्जान्तर्दिव्याशोकलता वने ।१५।
भावयेन्नीलवसनां सर्व्वावयवशोभितां ।
सर्व्वाभरणशोभाढ्यां सहितां नन्दसूनुना ।।१६।।
सामान्यार्घं ततः कृत्वा शुद्धेन तीर्थवारिणा ।
पाद्यार्घ्याचमनीयञ्च मधुपर्कातिषेचने ।१७।
मूलमन्त्रेन संस्थाप्य विशेषार्घ्यं विधापयेत् ।
सीतोपजलाजलेनापि पक्वेन पयसाथवा ।१८।
तन्मध्ये निक्षिपेज्जातीलवङ्ग-घुसृणादिकं ।
एलावीजानि कर्पूरं मूलेनैवाभिमन्त्रयेत् ।१९।
आधारे भाजने क्षीरे वह्न्यर्कशशिमण्डलं ।
पूजयित्वा चन्दनाद्यैस्तत आवाहयेत् प्रियां ।२०।
तुलसी-पुष्पसंयुक्तपुष्पाञ्जलिमुपाददत् ।
वहन्नासापुटां तेजोरूपां श्रीवृषभानुजां ।२१।
आनीय पूजापीठान्तः पूजयेदुपचारकैः ।
पाद्यादिन्तु ततस्तत्तन्मुद्रयाप्यायत्तरां ।२२।
विशेषार्घ्यस्थ-सुधया मूलमन्त्रेण सप्तधा ।
गन्धपुष्पं तथा धूपं दीपं नैवेद्यभाजनं ।२३।
कल्पयेत् परया भक्त्या तथा श्रीनन्दसूनवे ।
अष्टादशार्णमन्त्रेण उपचारान् पृथक् पृथक् ।२४।
कीर्त्तिञ्च वृषभानुञ्च यशोदां नन्दमेव च ।
अन्याश्च मातृका गोपीस्तयोः पृष्ठे प्रपूजयेत् ।२५।

सङ्केतं पूजयेद्भक्त्या वृषभानुपुरन्तथा ।
वरसानुं प्रपूज्याथ नन्दीशैलं प्रपुजयेत् ।।२६।।
नन्दग्रामञ्च संपूज्य अशोकवनवल्लरीं ।
पीयूषवापिकां पूज्य पूजेत् पान ( मान )—सरोवरं ।२७।
ततो भानुसर दृष्ट्वा पूजयेत् पुष्पवाटिकां ।
राधायाः परितः पश्चात् पूजयेदष्ट ताः सखीः ।२८।
राधा कृष्णा च ललिता विशाखा चञ्चला तथा ।
चित्रा मित्रा च मुदिता इत्येताः पूजयेत् क्रमात् ।२९।
तद्वाह्ये पूजयेद्गोपीं विशालां सुभगां तथा ।
रङ्गविद्यां रङ्गदेवीं गान्धर्वीं गायिकां तथा ।।३०।।
सुन्दरीं सुभगां शोभां पौर्णमासीञ्च चन्द्रिकां ।
वीरां वृन्दाञ्च विदितां वन्दितां नन्दितां तथा ।३१।
तद्वाह्ये पूजयेद्यत्नाद्गोपिकाः सर्वसौख्यदाः ।
चन्द्रा चन्द्रप्रभा काम्या माधुरी मधुरा प्रिया ।३२।
प्रेयसी प्रेषिता प्रेष्या मोदिनी श्यामलामला ।
श्यामा कामा रमा रामा रमणी रत्नमञ्जरी ।३३।
शृङ्गारमञ्जरी शीला रत्नशाला रसा रुषाः ।
रङ्गिणी मानिनी मन्या धीरा धन्या धरा धृतिः ।३४।
भामा सुवर्णवल्ली च इत्येताः क्रमशो यजेत् ।
तद्वाह्ये चम्पकलता-मालती-मल्लिकारुणाः ।३५।
अशोकललिता लोला मीनाक्षी मदनामतिः ।
सुमतिः सुप्रतीका च सुखदा कलिका कला ।३६।
कादम्बिनी किशोरी च युग्मिका युगला युगा ।
वल्लभा वल्लिका वेला वेल्लिनी रत्नवल्लरी ।३७।
कमला कोमला कुल्या कल्याणी वलयावला ।
धर्मा सुधर्मा सा नन्दा सुनन्दा-सुमुखा-मुखाः ।।३८।।
सु श्रीः सुरूपा कुमुदा कौमुदी-सुस्मितामिताः ।
कोकिला कोकिलालापा भावनी सुप्रभा प्रभा ।३९।

मदनेशी मालिका च कनका कनकावती ।
नीला ललामा ललना माधवी मधु-विभ्रमा ।४०।
वासन्तिका च सुनसा प्रेमा प्रेमवतीपरा ।
शृङ्गारिणी शृङ्गिनी च सुकचा मण्डनावली ।४१।
चतुःषष्टिरिमाः पूज्या विशेषार्घ्यसुधायुतैः ।
गन्धैः पुष्पैस्तथा धूपैदीपैर्नैवेद्यकैः पृथक् ।४२।
तद्वाह्ये पूजयेद्भूरि श्रीमद्वृन्दावनं महत् ।
गोवर्द्धनं रत्नशैलं हेमशैलं सुधाचलं ।४३।
इन्द्रादीन् पूजयेत् पश्चादुत्तरोत्तरतः सुधीः ।
एवं पूजाविधिं कृत्वा कुर्य्यादारात्रिकं महत् ।४४।
आत्मार्पणं ततः कृत्वा संहारमुद्रया मुहुः ।
राधिकां नन्दसूनुञ्च निजे हृदि विसर्जयेत् ।४५।
निजेष्टमन्त्रजपपूजया अर्द्धरात्रिपर्य्यन्तं विधानम् ।
इति श्रीऊद्‌ध्वाम्नाये महातन्त्रे श्रीमद्गोपेश्वरीविधानं समाप्तम् ।।

**अथ सम्मोहनतन्त्रे पञ्चवाणेश्वरीविधानम्—**

वृषभानुसुता सैव पञ्चवाणेश्वरी स्वयं ।
संक्षोभणं द्रावणञ्च तथैवाकर्षणं प्रिये ।१।
वशीकरणमेवापि उन्मादनमनुत्तमं ।
एते पञ्च महावाणा नन्दसूनोर्मनःस्पृशः ।२।
राधिकायाः कटाक्षेपे मन्मथस्य व्यवस्थितेः ।
अत्रीशवह्निपाशैश्च संक्षोभणमुदाहृतं ।३।
तदेव वामनेत्राढ्यं द्रावणं नाम कीर्त्तितं ।
आकर्षणं कामवीजं वशीकरणमुच्यते ।४।
पवर्ग-तृतीयं पृथ्वी वामकर्णे सुभूषिताः ।
भृगुः सर्गी महेशानि उन्मादनमुदाहृतम् ।५।
ॐ नमो राधिकायै च गोपेश्वर्य्यै शुचिप्रिया ।
अष्टादशाक्षरो मन्त्रः सर्व्वसिद्धिप्रदायकः ।।६।।

दुर्वासा ऋषिरेतस्य छन्दोऽनुष्टुप् प्रकीर्त्तितं।
प्रणवो वीजमेतस्य स्वाहा शक्तिरुदाहृता ।७।
ध्यानपूजादिकञ्चास्य पूर्ववत् परिकीर्त्तितं।
अतिसित-वसनां विशालनेत्रां
विविधविलासपरां प्रियेण साकं।
सुविपुलमणिपीठगां किशोरीं
हृदि वृषभानुसुतां स्मरेत नित्यं ।८।
खण्डत्रयेण मन्त्रस्य द्विरावृत्त्या षड़ङ्गकं।
इमां विद्यां समासाद्य व्यासाद्या ऋषिपुङ्गवाः ।९।
ब्रह्माद्या देवताश्चापि इन्द्राद्याश्च दिगीश्वराः।
नारायणस्तथैवाहं लक्ष्मीः शेषस्तथा स्मरः ।।१०।।
अन्ये च सकला देवाः सकलैश्वर्य्यमाप्नुवन्।
तन्त्रेषु गोपिता पूर्वं मया तुभ्यं प्रकाशिता ।।११।।
न देया यस्य कस्यापि पुत्रेभ्योऽभि प्रगोपयेत्।
देया विप्राय भक्ताय साधवे शुद्धचेतसे ।।१२।।
अलोलुपाय पुण्याय भक्तिश्रद्धापराय च।
अन्यथा सिद्धिहानिः स्यात्तस्माद्यत्नेन गोपयेत् ।१३।
पाण्डित्यं सुकवित्वञ्च रणे वादे जयन्तथा।
वशीकारं विभूतिञ्च स्वर्गञ्चैवापवर्गकं ।१४।
अनायासेन देवेशि प्राप्नुवन्ति न संशयः।

तथाहि—

संक्षोभद्रावणाकर्षवश्योन्मादन-रूपिणः।
आम्रं जम्बु च वकुलं चम्पकाशोकपादपाः ।१५।

पुष्पवत्ति वसन्ते च—इति वीजं प्रतिक्राम्य र-युतं तथा मूल मन्त्र-लक्षजपेन सिद्धिः स्यात्।

इति श्रीसम्मोहनतन्त्रे पञ्चवाणेश्वरी श्रीराधिकामन्त्रकथनम् ॥

**अथाहं संप्रवक्ष्यामि राधां पञ्चाक्षरात्मिकाम्।**

यस्या विज्ञानमात्रेण श्रीकृष्णं वशयेन्नरः ।१।

रमावीजं समुच्चार्य्य राधिके परमुच्चरेत् ।
रमान्ता राधिका विद्या भक्तानां चिन्तितार्थदा ।२।
सनकोऽस्य ऋषि: प्रोक्तो जगती च्छन्द ईरितं ।
श्रीराधा देवता प्रोक्ता विनियोगोऽखिलाप्तये ।३।
द्विरावृत्त्या तु मन्त्रस्य षड़ङ्गन्यासमाचरेत् ।
ध्यायेत् पद्मकरां गौरीं क्षीरसागरतीरगां ।४।
कृष्णकण्ठार्पितकरां स्मयमान-मुखाम्बुजां ।
मूर्ध्नि लोचनयोरास्ये हृदये च प्रविन्यसेत् ।५।
एकैक-क्रमतो वर्णान् पञ्चाक्षरमनूद्भवान् ।
मूलाधारे रमां न्यस्येत् स्वाधिष्ठाने च रामिति ।६।
मणिपूरे तृतीयञ्च न्यसेत् तूर्य्यमनाहते ।
विशुद्धे च रमां न्यस्येदाज्ञायां सर्व्वमन्त्रकं ।।७।।
त्रिकोणं विन्दु-संयुक्तमष्टकोणं ततो लिखेत् ।
ततो भूपुरमालिख्य पीठपूजां समाचरेत् ।८।
विन्दौ प्रपूजयेत् साक्षाद्वृषभानुसुतां परां ।
त्रिकोणे पूजयेच्छ्‌यामां विशाखां ललितामपि ।९।
कर्पूरमञ्जरीं रूपमञ्जरीं रहमञ्जरीं ।
लवङ्गमञ्जरीं प्रेममञ्जरीं रङ्गमञ्जरीं ।१०।
आनन्दमञ्जरीञ्चैव तथैव रतिमञ्जरीं ।
अष्टकोणे समापूज्य भूपुरे च दिगीश्वरान् ।११।
सिद्धाष्टक-समायुक्तांस्तत: पुष्पाञ्जलिं क्षिपेत् ।
एवं कृत्वार्चनं मन्त्री जपेदयुतमात्रकं ।।१२।।
यथोक्तविहिते मन्त्रे पञ्चवर्णप्रपूरिते ।
दीपराजन्तु संस्थाप्य सौरभेयघृतान्वितं ।१३।
दशभि: सूत्रकैर्वर्त्ति संयोज्याखण्डरूपिणीं ।
सौवर्णं राजतं वापि ताम्रं कांस्यमयं तथा ।१४।
अभावे मार्त्तिकं वापि दिव्यं दीपं प्रकल्पयेत् ।

साधारं स्थापयेद्‌यन्त्रं कूचिकाश्चापि तन्मयीं ।१५।
कन्याकर्त्तित-सूत्रेण वर्त्तिकां परिकल्पयेत् ।
यावत् पञ्चदिनं कुर्य्यादेवं विधिमनुत्तमं ।।१६।।
सर्व्वान् मनोगतान् कामानवाप्नोति न संशयः ।
संग्रामे विषये चैव विवादेऽर्थसाधने ।१७।
अमूं प्रयोगमाचर्य्य सद्यः सिद्धिमवाप्नुयात् ।
अन्येष्वपि च कार्य्येषु कुर्य्यादेवं विधिं नरः ।

इत्यूद्‌र्ध्वाम्नाये पञ्चाक्षरी-साधनं समाप्तम् ।

অথ যন্ত্রবিধির্লিখ্যতে—

দক্ষিণে
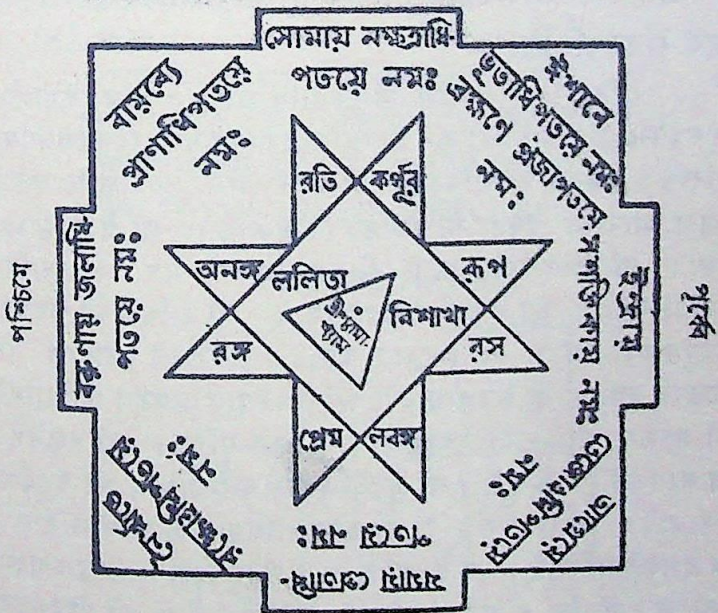
लं रं मं क्षं वं यं सं हं ह्रीं श्रीं एकवर्णम् ।
लं इन्द्राय देवाधिपतये सायुधाय सवाहनाय सशक्तिकाय

सपरिवाराय श्रीराधिका-पार्षदाय नमः । इन्द्रादीकां पूजयामि नमस्तर्पयामि नमः । एवं सर्व्वेषाम् ।

**तत्र प्राणायामः—**

आदावृष्यादिन्यासः स्यात् करशुद्धिस्ततः परं ।
अङ्गुलिव्यापकन्यासौ हृदादिन्यास एव च ॥
तालत्रयश्च दिगवन्धः प्राणायामस्ततः परं ।
ध्यानपूजा जपश्चैव सर्वतन्त्रेऽव्ययं विधिः ॥

प्राणायामः—

दक्षिणनासापुटं निरुध्य वामनासापुटेन चतुर्व्वारं पूरकें, षोड़श वारं कुम्भके, द्वयं नासापुटं निरुध्याष्टवारं दक्षनासया वायुं रेचयेत् ।

**अथ संकल्पविधिः—**

श्रोंविष्णुर्विष्णुर्नमोऽद्य अमुकमासि अमुकतिथौ अमुकगोत्रो-ऽमुकदासः श्रीराधादेवता अमुकमन्त्रसिद्धिकामोऽमुकपुरश्चरणजपमहं करिष्ये । अस्य श्रीराधिका—पञ्चाक्षरामन्त्रस्य सनकऋषिः जगती च्छन्दः श्रीराधा देवता अखिलाप्तये विनियोगः । श्रीं अङ्गुष्ठाभ्यां नमः । रां तर्जनीभ्यां नमः । धिं मध्यमाभ्यां नमः कें अनामि-काभ्यां नमः । श्रीं कनिष्ठिकाभ्यां नमः । श्रीं राधिके श्री करतल-करपृष्ठाभ्यां नमः । श्रीं हृदयाय नमः । रां शिरसे स्वाहा । धिं शिखायै वषट् । कें कवचाय हुं । श्रीं नेत्रत्रयाय वौषट् । श्रीं राधिके श्रीं अस्त्राय फट्—इति षड़ङ्गन्यासः । श्रीं मूर्ध्नि । रां दक्षनेत्रे । धिं वामनेत्रे । कें मुखे । श्रीं हृदये—इति वर्णन्यासः । श्रीं चतुर्दल-मूलाधारे । वं शं षं सं । रां षड़्दले स्वाधिष्ठाने कं भं मं यं रं लं । धिं दशदले मणिपूरे । डं ढं णं तं थं दं धं नं पं फं ॥ कें द्वादशदले अनाहते । कं खं गं घं ङं चं छं जं झं ञं टं ठं ॥ श्रीं षोड़शदले विशुद्धे । अं आं इं ईं उं ऊं ऋं ॠं लृं लॄं एं ऐं ओं औं अं अः । श्रीराधिके श्रीराधिके श्रीद्विदले । लक्षं । आज्ञायामिति षट्-चक्रात्मकतन्न्यासः ॥

**ध्यानं**—ध्यायेत् पद्मकरां गौरीं क्षीरसागरनीरगाम् ।
कृष्णकण्ठार्पितकरां स्मयमान-मुखाम्वुजाम् ॥-इति ध्यानम्

इति पूर्वं कृत्वा गुरुमन्त्रदेवतानामैक्यं विभाव्य मन्त्रजपं कुर्य्यात् । कृतैतन्मन्त्र-जपस्य अमुकसंख्यात्मकस्य दशांशहोमं तद्दशाशं तर्पणम्, तद्दशांशं मार्जनम्, तद्दशांशमभिषेकम्. तद्दशांशात्मक ब्राह्मणभोजनदानमहं करिष्ये । गन्धाक्षतकुशोदक-मादाय सर्वंन्यास-जालं विधाय श्रीराधिकादेव्या बामहस्ते—

'गुह्यातिगुह्य-गोप्त्री तं गृहाणास्मत् कृतं जपम् ।
सिद्धिर्भवतु मे देवि प्रसीद श्रीरमेश्वरी ॥'

इति मन्त्रेण जपादिदानफलं समर्पयेत् ॥

**अथ दीपदानप्रयोगमाह-**

शिव उवाच—

'शृणु देवि प्रवक्ष्यामि दीपदानविधिं शुभं ।
यस्मिन् कृते भवेत् सिद्धिः पञ्चाक्षर-मनोर्ध्रुवं ॥१॥
**नवयोन्यात्मकं** चक्रं मध्ये विन्दु-विभूषितं ।
तदग्रे विलिखेत् पद्ममष्टपत्रं मनोहरं ॥२॥
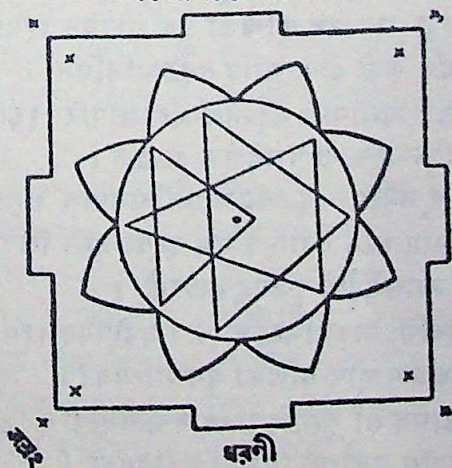
धरणीवलयोपेतं विदिक्त्रस्त्र-विभूषितं ।
ललितायै नमः प्रोच्य मण्डलेशीं प्रपूजयेत् ३,४,५,६,७
आवाहनं स्थापनञ्च सन्निधापनमेव च ।
सन्निरोधनमेवापि चक्रदेव्याः प्रकल्पयेत् ।८।
तत्तन्मुद्राभिराचर्य्य पुष्पाञ्जलिं विनिक्षिपेत् ।
अथ दीपं समानीय सौवर्णं राजतं तथा ।९।
ताम्रं कांस्यमयञ्चापि मृन्मयं शुभलक्षणं ।
पञ्चतोलमितं वश्ये आकर्षे दशतोलकं ।१०।
मोहने पञ्चदशभिर्मारणे विंशतोलकं ।
पञ्चविंशति-तोलैस्तु सर्वकार्य्ये शुभावहं ।११।
धर्मार्थकाममोक्षेषु संग्रामे जयवादयोः ।
कार्य्यगौरवमालक्ष्य त्रिंशत्तोलादिमानकं ।१२।
अस्त्रमन्त्रेण संक्षाल्य धूपयेन्मूलमन्त्रतः ।
पूजयेद्गन्धपुष्पाद्यैर्मुलेनैवाभिमन्त्रयेत् ।१३।
सुरभीघृतधाराभिः पूरयेन्मूलमन्त्रतः ।
उग्रकार्य्ये महेशानि तैलेनापि प्रपुरयेत् ।१४।
सुगन्धिभिः प्रसूनाद्यैर्यथावदुप्रकल्पयेत् ।
षोड़शाङ्गुलमानेन कुञ्चिकां तत्र धारयेत् ।१५।
यद्द्रव्येण कृतो दीपः सापि तद्द्रव्यनिर्मिता ।
दीपान्तरं विधायाथ षट्कोण-मण्डलोपरि ।१६।
हृदयादिकमस्त्रान्तं पूजयेत्तत्र मण्डले ।
प्रदीपे पूजयेत्तस्मिन् स्वयंज्योतिः सनातनं ।।१७।
सनातनाय स्वयं ज्योतिषे नम इत्यञ्जलिं क्षिपेत् ।
भूतले ज्वालयेद्दीपं पूजयेदुपचारकैः ।
गन्धादिभिः षोड़शभिस्ततो दीपं प्रदीपयेत् ।१८।
वामदक्षक्रमाद्दीप-वर्त्तिकां युगलात्मिकां ।
अखण्डामेव तां कुर्य्याद्यावत् पञ्चदिनावधि ।१९।
वनकार्पास तूलोत्थां विशदां दृढ़विग्रहां ।

कन्याकर्त्तित-सूत्रेण आखण्डेन बलीयसा ।२०।
वामां पञ्चदशैः सूत्रैर्दक्षिणां षोड़शैरपि ।
सर्वकार्य्यं प्रसिद्ध्यर्थं कर्त्तव्यैव तु वर्त्तिका ।२१।
वश्येऽष्टादशभिः सूत्रैर्दक्षिणा वर्त्तिका भवेत् ।
वामा चैकोनविंशैस्तैराकर्षे विंशतारकैः ।२२।
दक्षिणैकाधिकैर्वामा मोहने चैकविंशकैः ।
दक्षिणैकाधिका वामा मारणे च द्वाविंशकैः ।२३।
दक्षिणैकाधिकैर्वामा इत्थं सर्वत्र कल्पयेत् ।
अत्याहिते गुरौ कार्य्ये वर्त्तिका पञ्चविंशकैः ।२४।
त्रिंशैश्चत्वारिंश-संख्यैः पञ्चाशद्भिः शतावधि ।
कृतमात्रे दीपराज सर्वं कार्य्यं प्रजायते ।२५।
यद् यद् हृदि स्थितं वापि नालभ्यं भुवनत्रये ।
राधाकृष्ण-वशीकारं तत्क्षणात् कुरुते जनः ।२६।
अन्ते च महतीं पूजां कृत्वा दीपं विसर्जयेत् ।
पुत्रार्थी पुत्रमाप्नोति धनार्थी लभते धनमित्यादि ।।२७।।

**अथ युगलदीपदान-प्रयोगमाह-**

"श्रीसनत् कुमार उवाच-

'दीपदानविधिं ब्रह्मन् ब्रूहि विस्तरतो मम ।
यस्यानुष्ठानमात्रेण राधाकृष्णौ प्रसीदतः' ।१।

"ब्रह्मोवाच-

'शृणु वत्स प्रवक्ष्यामि दीपदानं विशेषतः
राधाकृष्ण-प्रसादैकसाधनं नात्र संशयः ।२।
कार्त्तिके मार्गशीर्षे वा पौषे वा माघमासके ।
वैशाखे वा प्रकर्त्तव्यं नित्यस्नानपुरः सरं ।।३।।
विशुद्धं स्थानमाश्रित्य सिद्धक्षेत्रं मनोहरं ।
नन्दग्रामञ्च सङ्केतं वरसानु गिरिं तथा ।४।
गोवर्द्धनञ्च विमलं यमुनातीरमद्भुतं ।

एषामन्यतमं स्थानं समाश्रित्य विधिर्भवेत् ।५।
पूर्वाह्ने कृतनित्यादिः सङ्कल्प्य विधिवन्नरः ।
मण्डलं विपुलं कुर्य्याद्दीपदानोचितं मुने ॥६॥
विन्दुं चतुरस्रयुतं ततोऽष्टास्रं प्रकल्पय च ।
षोड़शास्रं विधायाथ अस्रद्वात्रिंशकं कुरु ।७।
चतुःषष्टिमितास्रं च मण्डलं विपुलं कुरु ।
भूविम्वञ्च प्रविन्यस्य पञ्चवर्णैर्विधानतः ।८।
तन्मध्ये स्थापयेद्दीपं षोड़शार्णेन वत्सक ।
सौवर्णं राजतञ्चैव युगात्मानं विधापयेत् ।९।
मार्त्तिकञ्चेद्विधातव्यं वरसानु-पुरोत्थया ।
नन्दग्रामोत्थया चैव मृदा दीपं प्रकल्पयेत् ।१०।
द्विधातु-सम्भवं दीपं धातुजन्यं प्रकल्पयेत् ।
तत्राज्यधारां सुरभीद्वयोत्थां परिपातयेत् ।११।
कृष्णायाश्चैव शुक्लाया धेनोराज्यं निधापयेत् ।
अभिमन्त्र्यैव मूलेन क्रम-व्युत्क्रम-संस्थया ।१२।
कृत्वा मातृकया चाज्यं वर्त्तिकां तत्र विन्यसेत् ।
ग्रामोत्थं च तुलं वर्णौ कार्य्यारम्भे प्रकल्पयेत् ।१३।
स्थापयित्वा घृते सम्यक् कर्षणीं तत्र तन्मयीं ।
एवं दीपं विनिर्वर्त्त्य यन्त्रराजं प्रपूजयेत् ।१४।
अष्टादशार्णमन्त्रेण नन्दसूनुं प्रपूजयेत् ।
षोड़शार्णेन विधिवद्राधिकां परिपूजयेत् ।१५।
सर्वावरणपूजान्ते पुष्पाञ्जलिं प्रविन्यसेत् ।
अथवा मूर्त्तिरूपेण राधाकृष्णौ प्रपूजयेत् ।१६।
ततः प्रकाशयेद्दीपं दीपान्तर-विधानतः ।
युगलं दीपमध्यस्थं पूजयेत् स्व स्वमन्त्रतः ।१७।
चतुरस्रेऽर्चयेन्नित्यं ललिताञ्च विशाखिकां ।
राधाञ्चैवानुराधाञ्च विधिवद्गन्धपुष्पकैः ।१८।
गोपाली पालिका चैव ध्याननिष्ठा तथैव च ।

सोमाभा तारका चैव शैव्या पद्मा च भद्रिका ।१९।
अष्टास्त्रे पूजयेदष्टौ विधिवद्गन्धपुष्पकैः ।
योनिमुद्रां ततो बध्वा प्रणमेत् सादरं मुने ।२०।
षोड़शास्त्रे ऽर्चयेच्छ्यामां माधवीं कमलां तथा ।
कलां चन्द्रकलां चन्द्रां तथा चपलतां पुनः ।।२१।।
प्रमोदां पद्मिनीं पूर्णां परमां सुभगां शुभां ।
चपलां विपुलां वामां क्रमतो गन्धपुष्पकैः ।२२।
द्वात्रिंशास्त्रे ऽर्चयेद्वेणीं वशिनीं सुप्रभां प्रभां ।
मालिनीं शालिनीं शालां विशालां कनकप्रभां ।।२३।।
मण्डिनीं मण्डलामुख्यां ज्येष्ठां श्रेष्ठाञ्च भामिनीं ।
त्वरितां पारिजातेशीं सुकलां सुरसां रसां ।२४।

### अष्टास्त्रचक्रम्
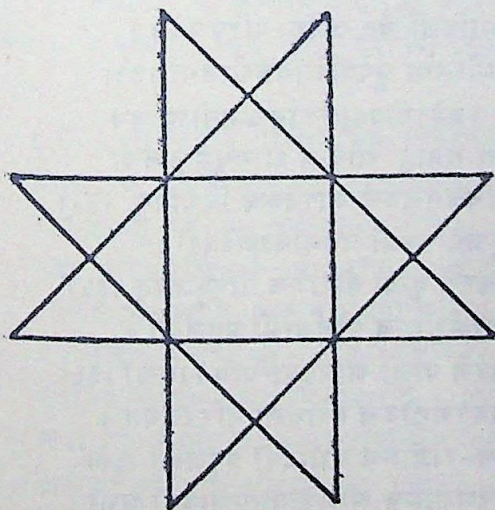
वेशिनीं केशिनीं केशां सुकेशां मञ्जुघोषिणीं ।
शुभावतीं कान्तिमतीं कान्तां भानुमतीं मुदां ।२५।
वसुधां वसुधामाञ्च क्रमतो गन्धपुष्पकैः ।

चतुःषष्टिमिताश्चै च पद्मीपुष्टां च पोषिणीं ।२६।
कञ्जप्रभां कञ्जहस्तां वर्षिणीं हर्षणीं हरां ।
हारिणीं कारिणीं धारां धारिणीं चित्रलेपिनीं ।२७।
ललामां लुलितां-लोभदाञ्च सुलोचनां ।
रोचिनीं सुरुचिं शोभां शुभ्रां शोभावतीं सभां ।२८।
रोहितां लोहितां लीलां शीलाञ्चैव सशीलिकां ।
पवित्रिणीं पल्लवाभासां विशुद्धां विशदां वलां ।।२९।।
सुदतीं सुमुखीं व्योमां सोमां सामां त्वरातुरां ।
रत्नावलीं रत्ननिभां रत्नधामां दयावतीं ।३०।
प्रभावतीं प्रेमगां च क्षेमां क्षेमावतीं क्षमां ।
मञ्जरीं खञ्जरीटाञ्च लक्षणाञ्च सुलक्षणां ।३१।
कामां कामवतीं वीणां हीनां वीणाकरां तलां ।
त्रियुगां शोणचरणां चारिणीं चारुदन्तिनीं ।३२।
विचित्रभाषिणीं चैव क्रमतः परिपूजयेत् ।
गन्धैः पुष्पैस्तथा धूपैर्दीपैर्नैवेद्यकैस्तथा ।३३।
भूविम्वे पूजयेद्गोपवालकान् क्रमतोऽष्ट च ।
सुवलञ्च सुवाहुं श्रीदामं श्रीमधुमङ्गलं ।।
माधवं चित्रलेखञ्च शारदञ्च विभावसुं ।३४।
ततः प्रपूजयेच्चित्रां प्रथमावरणेश्वरीं ।
द्वितीयावरणे वृन्दां वीराञ्च परिपूजयेत् ।३५।
तृतीयावरणेशीञ्च पौर्णमासीं प्रपूजयेत् ।
चतुर्थावरणे पालीं श्रीमद्गान्धर्विकासखीं ।३६।
पञ्चमावरणेशीञ्च श्यामलां परिपूजयेत् ।
षष्ठावरण-राज्ञीञ्च पद्मादेवीं प्रपूजयेत् ।३७।
सप्तमावरणेशीञ्च श्रीमज्ज्योत्स्नावतीं शुभां ।
दीपस्य दक्षभागे तु नन्दञ्चैव यशोदिकां ।३८।
वामे संपूजयेत् कीर्त्तिं वृषभानुञ्च गोपकं ।
मण्डलं परिपूज्याथ पुष्पाञ्जलिं परिक्षिपेत् ।३९।

दीपं पञ्चदिनं वापि कुर्य्याद्दशदिनं तथा ।
पक्षं वा रक्षयेद्दीपं मासं वापि मुनीश्वर ॥४०॥
ततो विसर्जयेद्दीपं कृतनित्यक्रियो वुधः ।
संपूज्य दीपराजन्तु पुष्पाञ्जलिमुपक्षिपेत् ।४१।
यमुनादौ शुभे नीरे दीपराजं प्रवाहयेत् ।
एवं कृत्वा विधिं सद्यः सर्व्वान् कामानवाप्नुयात् ।४२।
साक्षात् करोति युगलं दीपराज–प्रभावतः ।
पूजनादेव दीपस्य नासाध्यं विद्यते क्वचित् ।४३।

इति सनत्कुमारसंहितायां युगलदीपदानविधिः ।
पञ्चमः पटलः ।

पञ्चवाणैः पुटीकृत्य यो जपेद् राधिकामनुम् ।
तस्य सर्व्वार्थसिद्धिः स्यात् कृष्णं पश्यति तत्क्षणात् ॥

ह्रां ह्रीं क्लीं ब्रूं सः कृष्णप्रिये ह्रां ह्रीं क्लीं स्वाहा ।
इति षोड़शाक्षरो मन्त्रः । चतुःषष्टियन्त्रदीपदानप्रयोगमाह ।
अथ स्तवः—

(ॐ) मुनीन्द्रवृन्द–वन्दिते त्रिलोकशोकहारिणि
प्रसन्नवक्त्र पङ्कजे निकुञ्जभूविलासिनि ।
व्रजेन्द्रभानु–नन्दिनि व्रजेन्द्रसूनुसङ्गते
कदा करिष्यसीह मां कृपाकटाक्षभाजनं ॥१॥
अशोकवृक्षवल्लरी–वितानमण्डपस्थिते
प्रवालजालपल्लवप्रभारुणाङ्घ्रिपङ्कजे ।
वराभयस्फुरत्करे प्रभूतसम्पदालये
कदा करिष्यसीह मां कृपाकटाक्षभाजनं ।२।
अनङ्गरङ्गमङ्गल–प्रसङ्गभङ्गुरभ्रुवा
सविभ्रमं ससम्भ्रमं दृगन्तवाणपातनैः ।
निरन्तरं वशीकृत–प्रतीति–नन्दनन्दने
कदा करिष्यसीह मां कृपाकटाक्षभाजनं ॥३॥

तड़ित् सुवर्णचम्पक प्रदीप्तगौरविग्रहे
मुखप्रभा-परास्तकोटिशारदेन्दुमण्डले ।
विचित्र-चित्रसञ्चरच्चकोर-शावलोचने
कदा करिष्यसीह मां कृपाकटाक्षभाजनं ।४।
मदोन्मदातियौवन प्रमोदमानमण्डिते
प्रियानुरागरञ्जिते कलाविलास-पण्डिते ।
अनन्यधन्यकुञ्जराज्यकामकेलिकोविदे
कदा करिष्यसीह मां कृपाकटाक्षभाजनं ।।५।।
अशेषहावभावधीर-हीरहारभूषिते
प्रभूतशातकुम्भ-कुम्भ-कुम्भि-कुम्भ-सुस्तनि ।
प्रशस्तमन्दहासपूरपूर्णसौख्यसागरे
कदा करिष्यसीह मां कृपाकटाक्षभाजनं ।६।
मृणालवालवल्लरी-तरङ्गरङ्गिदोर्लते
ललामलास्यलोललीललोचनावलोकने ।
ललल्लुलन्मिलन्मनोज्ञमुग्धमोहनाकृते
कदा करिष्यसीह मां कृपाकटाक्षभाजनं ।।७।।
सुवर्णमालिकाञ्चित-त्रिरेखकम्बुकण्ठगे
त्रिसूत्र-मङ्गलागुण-त्रिरत्नदूरदीपिते ।
सलील-नीलकुन्तल-प्रसूनगुच्छ-गुम्फिते
कदा करिष्यसीह मां कृपाकटाक्षभाजनं ।८।
नितम्बबिम्ब-लम्बमानपुष्पमेखला-गुण-
प्रसक्तरत्नकिङ्किणीकलापमध्यमञ्जुले ।
करीन्द्रशुण्डदण्डिका-वरोरुसौभगावहे
कदा करिष्यसीह मां कृपाकटाक्षभाजनं ।९।
अनेकमन्त्रनादमञ्जु-नूपुरारव-स्खलत्-
समाजराजहंसवंशिकाकलालिगौरवे ।
विलोलहेमवल्लरी-विडम्बि-चारुचंक्रमे
कदा करिष्यसीह मां कृपाकटाक्षभाजनं ।१०।

अनन्तकोटिविष्णुलोकनम्रपद्मजार्चिते
हिमाद्रिजा-पुलोमजा-विरिञ्चिजा-वरप्रदे।
अपारसिद्धिवृद्धिदिग्धसत्पदाङ्गुलप्रभे
कदा करिष्यसीह मां कृपाकटाक्षभाजनं ।११।
वने (मखे)-श्वरि क्रियेश्वरि स्वरे (स्वधे)-श्वरि सुरेश्वरि
त्रिवेदभारतीश्वरि प्रमाण-शासनेश्वरि।
रमेश्वरि क्षमेश्वरि प्रमोदकाननेश्वरि
व्रजेश्वरि व्रजाधिपे श्रीराधिके नमोऽस्तु ते ।।१२।।
इतीममद्भुत-स्तवं निशम्य भानुनन्दिनी
करोतु नित्यदा जने कृपाकटाक्षपातनं।
भवत्वनेन सन्ततं त्रिरूप-कर्मनाशनं
भवत्वथ व्रजेन्द्रसूनुमण्डल-प्रवेशनं ।१३।
राकायाञ्च सिताष्टम्यां दशम्याञ्च विशुद्धधीः।
एकादश्यां त्रयोदश्यां यः पठेत् स स्वयं शिवः ।१४।
यं यं कामयते कामं तं तमाप्नोति साधकः।
राधाकृपा-कटाक्षेण भुक्त्वान्ते मोक्षमाप्नुयात् ।१५।
ऊरुदघ्ने नाभिदघ्ने हृद्दघ्ने कण्ठदघ्नके।
राधाकुण्डजले स्थिता यः पठेत् साधकः शतं ।१६।
तस्य सर्वार्थसिद्धिः स्याद्वाक्सामर्थ्यं तथा लभेत्
ऐश्वर्यं च लभेत् साक्षाद्दृशा पश्यति राधिकां ।१७।
तेन स तत्क्षणादेव तुष्टा दत्ते महावरं।
येन पश्यति नेत्राभ्यां तत्प्रियं श्यामसुन्दरं ।।१८।।
नित्यलीला-प्रवेशञ्च ददाति श्रीव्रजाधिपः।
अतः परतरं प्रार्थ्यं वैष्णवस्य न विद्यते ।।१९।।

इति श्रीमदूर्द्ध्वाम्नाये श्रीराधिकायाः कृपाकटाक्षस्तोत्रं सम्पूर्णम्।

अथ सम्मोहनतन्त्रोक्तं त्रैलोक्यविक्रम-कवचं लिख्यते,—

श्रीपार्वत्युवाच—

'यद् गोपितं त्वया पूर्वं तन्त्रादौ यामलादिषु।

त्रैलोक्यविक्रमं नाम राधाकवचमद्भुतं ।१।
तन्मह्यं ब्रूहि देवेश यद्यहं तव वल्लभा ।
सर्वसिद्धिप्रदं साक्षात् साधकाभीष्टदायकं ।'२।

श्रीमहादेव उवाच,—

'शृणु प्रिये प्रवक्ष्यामि कवचं देवदुर्लभं ।
यच्च कस्मैश्चिदाख्यातुं गोपितं भुवनत्रये ।३।
यस्य प्रसादतो देवि सर्वसिद्धोश्वरोऽस्म्यहं ।
वागीशश्च हयग्रीवो देवर्षिश्चैव नारदः ।४।
यस्य प्रसादतो विष्णुस्त्रैलोक्यस्थितिकारकः ।
ब्रह्मा यस्य प्रसादेन त्रैलोक्यं रचयेत् क्षणात्।५।
अहं संहार-सामर्थ्यं प्राप्तवान्नात्र संशयः ।
त्रैलोक्यविक्रमं नाम कवचं मन्त्रविग्रहं ।६।
तच्छृणु त्वं महेशानि भक्ति-श्रद्धा-समन्विता ।
त्रैलोक्यविक्रमस्यास्य कवचस्य ऋषिर्हरिः ।७।
छन्दोऽनुष्टुप् देवता च राधिका वृषभानुजा ।
श्रीकृष्णप्रीति-सिद्ध्यर्थं विनियोगः प्रकीर्त्तितः ।८।
राधिका पातु मे शीर्षं वृषभानुसुता शिखां ।
भालं पातु सदा गोपी नेत्रे गोविन्दवल्लभा ।९।
नासां रक्षतु घोषेशी ब्रजेशी पातु कर्णयोः ।
गण्डौ पातु रतिक्रीड़ा ओष्ठौ रक्षतु गोपिका ।।१०।।
दन्तान् रक्षतु गान्धर्वी जिह्वां रक्षतु भामिनी ।
ग्रीवां कीर्त्तिसुता पातु मुखवृत्तं हरिप्रिया ।११।
वाहू मे पातु गोपेशी पादौ मे गोपसुन्दरी ।
दक्षपार्श्वं सदा पातु कुञ्जेशी राधिकेश्वरी ।१२।
वामपार्श्वं सदा पातु रासकेलिविनोदिनी ।
सङ्केतस्था पातु पृष्ठं नाभिं वनविहारिणी ।१३।
उदरं नवतारुण्या वक्षो मे व्रजसुन्दरी ।
अंसद्वयं सदा पातु परकीया-रसप्रदा ।१४।

ककुदं पातु गोपाली सर्वाङ्गं गोकुलेश्वरी ।
चन्द्रानना पातु गुह्यं राधा सर्वाङ्गसुन्दरी ।१५।
मूलाधारं सदा पातु श्रीं क्लीं सौभाग्यवर्द्धिनी ।
ऐं क्लीं श्रीराधिके स्वाहा स्वाधिष्ठानं सदावतु ।१६।
क्लां क्लीं नमो राधिकायै मणिपूरं सदावतु ।
लक्ष्मी माया स्मरो राधा पातु चित्तमनाहतं ।१७।
क्लीं क्लीं कामकला राधा विशुद्धं सर्वदावतु ।
आज्ञां रक्षतु राधा मे हं सः क्लीं वह्निवल्लभा ।१८।
ॐ नमो राधिकायै स्वाहा सहस्रारं सदावतु ।
अष्टादशाक्षरी राधा सर्वदेशे तु पातु मां ।।१९।।
नवार्णा पातु मामूर्द्ध्वे दशार्णावतु संसदि ।
एकादशाक्षरी पातु द्यूते वादविवादयोः ।२०।
सर्वकाले सर्वदेशे द्वादशार्णा सदावतु ।
पञ्चाक्षरी राधिकेशी वासरे पातु सर्वदा ।२१।
अष्टाक्षरी च राधा मां रात्रौ रक्षतु सर्वदा ।
पूर्णा पञ्चदशी राधा पातु मां व्रजमण्डले ।।२२।।
इत्येवं राधिकायास्ते कवचं कीर्त्तितं मया ।
गोपनीयं प्रयत्नेन स्वयोनिरिव पार्वति ।।२३।।
न देयं यस्य कस्यापि महासिद्धि-प्रदायकं ।
अभक्तायापि पुत्राय दत्वा मृत्युं लभेन्नरः ।२४।
नातः परतरं दिव्यं कवच भुवि विद्यते ।
पठित्वा कवचं पश्चाद्युगलं पूजयेन्नरः ।२५।
पुष्पाञ्जलिं ततो दत्वा राधा-सायुज्यमाप्नुयात् ।
अष्टोत्तरशतञ्चास्य पुरश्चर्य्या प्रकीर्त्तिता ।।२६।।
अष्टोत्तरशतं जप्त्वा साक्षाद्देवो भवेत् स्वयं ।
कृष्णप्रेमाणमप्याशु दुर्लभं लभते ध्रुवम् ।२७।
इति श्रीसम्मोहन-तन्त्रे श्रीराधायास्त्रैलोक्यविक्रमं नाम
कवचं सम्पूर्णम् ।।

तथाहि—गोविन्द-सहितां भूरि-हावभाव-परायणां ।
योगपीठेश्वरीं राधां प्रणमामि निरन्तरम् ॥

अथ **चरणध्यानम्** ( श्रीगो० ली० ११।५१ )—

'शङ्खार्द्धेन्दुयवाब्जकुञ्जररथैः सीराङ्कुशेषुध्वजै-
श्चाप-स्वस्तिक-मत्स्य-तोमरमुखैः सल्लक्षणैरङ्कितम् ।
लाक्षावर्मितमाहवोपकरणैरेभिर्विजित्याखिलं
श्रीराधाचरणद्वयं सुकटकं साम्राज्यलक्ष्म्या बभौ ।'१।

अथ **करचिह्नम्** ( श्रीगो० ली० ११।६६ )—

' भृङ्गाराम्भोज माला-व्यजन–शशिकला-कुण्डलच्छत्रयूपैः
शङ्खश्रीवृक्षवेद्यासन-कुसुमलता-चामर-स्वस्तिकाद्यैः ।
सौभाग्याङ्कैरमीभिर्युतकरयुगला राधिका राजतेऽसौ
मन्ये तत्तन्मिषात् स्वप्रियपरिचरणस्योपचारान् बिभर्त्ति ।२।

अथ **मन्दहास्यम्** ( श्रीगो० ली० ११।८८ )

'हरेर्गुणाली-वरकल्पवल्ल्यो, राधाहृदाराममनु प्रफुल्लाः ।
लसन्ति या याः कुसुमानि तासां, स्मितच्छलात्-
किन्नुवहिः स्खलन्ति ?' ३।।

अथ **शृङ्गारः** ( उ० नी० श्रीराधा ९ )—

'स्नाता नासाग्रजाग्रन्मणिरसितपटा सूत्रिणी बद्धवेणि:
सोत्तंसा चर्चिताङ्गी कुसुमितचिकुरा स्रग्विणी पद्महस्ता
ताम्बूलास्योरुबिन्दुस्तवचित-चिबुका कज्जलाक्षी सुचित्रा
राधालक्तोज्ज्वलाङ्घ्रिः स्फुरति तिलकिनी षोड़शाकल्पिनीयम् ।'४।

**अथाभरणम्** ( उ० नी० श्रीराधा १० )—

'दिव्यश्चूड़ामणीन्द्र. पुरट-विरचिताः कुण्डलद्वन्द्वकाञ्ची-
निष्काश्चक्री-शलाकायुग-वलयघटाः कण्ठभूषोर्म्मिकाश्च ।
हारास्तारानुकारा भुजकटकतुलाकोटयो रत्नकलप्ता-
स्तुङ्गा पादाङ्गुलीयच्छविरिति रविभिर्भूषणैर्भाति राधा

अन्यच्च— सोऽयं वसन्तसमयः समियाय तस्मिन्
पूर्णं तमीश्वरमुपोढ़-नवानुरागम् ।
गूढ़ग्रहारुचिरया सह राधयासौ
रङ्गाय सङ्गमयिता निशि पौर्णमासी ॥

किञ्च, ( उ० नी० शृङ्गारभेद ४ )—

'पूर्वरागस्तथा मानः प्रेमवैचित्त्यमित्यपि ।
प्रवासश्चेति कथितो विप्रलम्भश्चतुर्विधः ॥'

( उ० नी० शृङ्गारभेद १६१ )—

'जातान् संक्षिप्त-सङ्कीर्ण-संपन्नर्द्धिमतो विदुः ॥'

तत्र संक्षिप्तः ( उ० नी० शृङ्गारभेद १६२ )—

' युवानौ यत्र संक्षिप्तान् साध्वस-व्रीड़ितादिभिः ।
उपचारान् निषेवेत स संक्षिप्त इतीरितः ।'१।

अथ सङ्कीर्णः ( उ० नी० शृङ्गारभेद १६५ )—

'यत्र सङ्कीर्य्यमाणाः स्युर्व्यलीक-स्मरणादिभिः ।
उपचाराः स सङ्कीर्णः किञ्चित्तप्तेक्षु-पेशलः ।२।'

अथ सम्पन्न ( उ० नी० शृङ्गारभेद १६८ )—

'प्रवासात् सङ्गते कान्ते भोगः सम्पन्न ईरितः ।
द्विधा स्यादागतिः प्रादुर्भावश्चेति स सङ्गमः ।३।

अथ समृद्धिमान् ( उ० नी० शृङ्गारभेद २०६ )—

'दुर्लभालोकयोर्यू नोः पारतन्त्र्याद्वियुक्तयोः ।
उपभोगातिरेको यः कीर्त्यते स समृद्धिमान् ।'४।

यथा— 'वन्दे श्रीराधिकादीनां भावकाष्ठामहं पराम् ।
विना वियोगं संयोगं या तूर्य्यमुदगाद्यतः ।।'

तत्र श्रीभागवते ( १०।३१।१५ )—

.......................'त्रुटियुर्गायते त्वामपश्यताम् ।
कुटिलकुन्तलं श्रीमुखञ्च ते जड़ उदीक्षतां पक्ष्मकृद् दृशाम् ।।इति ।

इति श्रीगोविन्ददेवसेवाधिपति-श्रीहरिदासगोस्वामिचरणानुजीवि
श्रीराधाकृष्णदासोदीरिता-साधन-दीपिकायां षष्ठकक्षा

# सप्तमकक्षा

***

अथ—'श्रीराधाप्राणबन्धोश्चरणकमलयो: केशशेषाद्यगम्या
या साध्या प्रेमसेवा व्रजचरितपरैर्गाढ़लौल्यैकलभ्या'।'
( श्रीभा० १०।१६।३६ )

'यद्वाञ्छया श्रीर्ललनाचरत्तपो, विहाय कामान् सुचिरं धृतव्रता' इत्यादे: श्रीकृष्णलीलायां श्रीराधाया अनुगत्वे श्रीमद्राधा-गोविन्दचरणसेवनं सर्वोत्कृष्टम्; तत्तु मधुररसं विना न सम्भवति। ततो मधुररसस्य श्रेष्ठत्वम्; यथा श्रीभक्तिरसामृतसिन्धौ ( द० ५।३८)

'यथोत्तरमसौ स्वादुविशेषोल्लासमय्यपि।
रतिर्वासनया स्वाद्वी भासते कापि कस्यचित्॥'

श्रीमदुज्ज्वलनीलमणौ च ( नायकभेद २)—

' मुख्य-रसेषु पुरा य: संक्षेपेणोदितो रहस्यत्वात्।
पृथगेव भक्तिरसराट् स विस्तरेणोच्यते मधुर:॥'

इति हेतोर्गौरलीलायामपि तथैव श्रीराधागदाधरस्यैवानुगत्ये श्रीगौरगोविन्दस्य भजनं सर्वोत्कृष्टम्।

ननु श्रीगदाधरस्य राधात्वे श्रीगौरस्य गोविन्दत्वे किं प्रमाण-मिति चेत्तत्राह—यथा स्वयंभगवत: श्रीकृष्णस्य परब्रह्मत्वम्, (श्रीभा ७।१०।४८, ७।१५।७५ ) —'गूढ़ं परं ब्रह्म मनुष्यलिङ्गम्' इत्यादे:। ततोऽपि गूढ़तरं शचीनन्दनस्य, ततो गूढ़तमं प्रेयसीनाम्, परमशक्तित्वं पार्षदानाम्; तथा श्रीशचीनन्दनस्य श्रीकृष्णत्वे आर्षप्रमाणानि बहूनि सन्ति; यथा, ( श्रीभा ११।५।३२ )—'कृष्णवर्णं त्विषाऽकृष्णं साङ्गो-पाङ्गास्त्रपार्षदं', श्रीभागवते सप्तमस्कन्धे ( ७।९।७८)—'इत्थं नृतिर्य्यं गृषिदेव झषावतारै,-र्लोकान् विभावयसि' इति; कलौ प्रथमसन्ध्यायां लक्ष्मीकान्तो भविष्यति'; तथा 'सुवर्णवर्णो हेमाङ्गो वराङ्गश्चन्द-नाङ्गदी'; तथा 'सन्न्यासकृच्छम: शान्तो निष्ठाशान्तिपरायण:' इति

तु संक्षेपतो लिखितम्; विशेषतस्तु ' स्मरणमङ्गलदशश्लोकीभाष्ये ( स्व-कृते ) विवृतमस्ति' इत्यादीनि ।

प्रेयसीनां परमशक्तित्वमतीवगूढ़त्वात् मुनिना तत्र तत्र नोक्तम् आप्तैः खलु स्वान्तरङ्गान् प्रतितद्द्वारातिधन्यान् प्रति कृपया प्रकटित मेव; तद्यथा प्राकृत-संस्कृतेषु च । तत्र श्रीकर्णपूरगोस्वामिनो श्रीगौरगणोद्देशे—

'श्रीराधा प्रेमरूपा या पुरा वृन्दावनेश्वरी ।
सा श्रीगदाधरो गौरवल्लभः पण्डिताख्यकः ॥

तस्यैव श्रीचैतन्यचन्द्रोदयनाटके ( ३।४४ )

'इयमपि ललितैव राधिकाली, न खलु गदाधर एष भूसुरेन्द्रः ।
हरिरयमथवा स्वयैव शक्त्या, त्रितयमभूत् स्वसखी च राधिका च

तत्रैव गणोद्देशे—

'ध्रुवानन्द-ब्रह्मचारीं ललितेत्यपरे विदुः ।
स्वप्रकाश-विभेदेन समीचीनं भवन्तु तत् ॥
अथवा भगवान् गौरः स्वेच्छयागात्त्रिरूपताम् ।
अतः श्रीराधिकारूपः श्रीगदाधर-पण्डितः ॥'

श्रीचैतन्यचरितामृते ( आ० १म० प० )—

'गदाधरपण्डितादि प्रभुर निजशक्ति ।
ताँ सभार चरणे करों सहस्र प्रणति ॥'

पुनस्तत्रैव ( म० ८म० प० )—

'अन्तरङ्गा वहिरङ्गा तटस्था कहि यारे ।
अन्तरङ्गा स्वरूपशक्ति सभार उपरे ॥'

( आ० ७म० प० )—

गदाधरपण्डित-गोसाञि-शक्ति-अवतार ।
अन्तरङ्गा स्वरूपशक्ति गणना याँहार ॥

( अ० ७म० प० )—

'पण्डितेर भावमुद्रा कहन ना याय ।
गदाधर-प्राणनाथ नाम हैल याय ॥

पण्डितेरे कृपा-प्रसाद कहन ना याय ।
'गदाइर गौराङ्ग' करि' सर्व्वलोके गाय ।

पुनस्तत्रैव (आ० १२श० प० )—

'पण्डित गोसाञिर गण भागवत धन्य ।
प्राणवल्लभ याँर श्रीकृष्णचैतन्य ।। इत्यादि

यदुक्तम् ( आ० १०म० प० )

'तेँहो लक्ष्मीरूपा ताँर सम केहो नाञि ।

तत्तु मूललक्ष्म्यभिप्रायेण; यथा बृहद्गौतमीये—

'देवी कृष्णमयी प्रोक्ता राधिका परदेवता ।
सर्वलक्ष्मीमयी सर्वकान्तिः सम्मोहिनी परा ।।' इति;

ब्रह्मसंहितायां च (५।५६ )—

'श्रियः कान्ताः कान्तः परमपुरुषः कल्पतरवो
द्रुमा भूमिश्चिन्तामणिगणमयी तोयममृतम् ।
कथा गानं नाट्यम्' इति;

( ५।२९ )—'लक्ष्मी-सहस्रशतसंभ्रमसेव्यमानम्' इति;

श्रीदशमे ( १०।५९।४३ )

'रेमे रमाभिर्निजकामसंप्लुतः' इत्यादि;

श्रीजयदेवचरणैश्च ( गीतगोविन्दे १।२६ )

' पद्मा-पयोधरतटी-परिरम्भलग्न-
काश्मीरमुद्रितमुरो मधुसूदनस्य' इति;

तत्रैव (१।२ )—

'श्रीवासुदेवरतिकेलिकथासमेतमेतं करोति' इति;

सन्दर्भे च (श्रीकृष्णाख्ये १८९ )—'श्रीवृन्दावने श्रीराधिकाया-मेव स्वयंलक्ष्मीत्वम्' इति;

श्रीजगन्नाथवल्लभनाटके श्रीरामानन्दरायचरणैः (१।२० )—'यतो गोपाङ्गनाशतधरमधुपान—निर्भरकेलि-क्लमालसापघनः क्वचित् प्रौढ़वधूस्तनोपधानीयमण्डितहृदय-पर्य्यङ्कशायी पीताम्बरो नारायणः स्मारितः ।' इत्यादि;

एवं श्रीविदग्धमाधवे ( ४।५२ ) श्रीमत्प्रभुचरणैः—'सुन्दरि ! नाहं केवलं तवाधीनः, किन्तु मम दशावतारोऽपि ' इत्यादि;
एवं श्रीगोविन्दलीलामृते च ( १८।१० )—

'गुणमणिखनिरुद्यत्प्रेमसम्पत्सुधाब्धि-
स्त्रिभुवनवरसाध्वी-वृन्दवन्द्येहितश्रीः ।
भुवन-महितवृन्दारण्यराजाधिराज्ञी
विलसति किल सा श्रीराधिकेह स्वयं श्रीः ॥'
'सौन्दर्य्यलक्ष्मीरिहकाध्य लक्ष्मीः
सङ्गीतलक्ष्मीश्च हरेर्मुदेऽस्ति';

स्वनियमदशके ( १० ) श्रीदासगोस्वामिभिश्च—

'स्फुरल्लक्ष्मी-लक्ष्मीव्रजविजयिलक्ष्मीभरलसद्-
वपुः श्रीगान्धर्वास्मरनिकरदिव्यद्-गिरिभृतोः ।
विधास्ये कुञ्जादौ विविधवरिवस्याः सरभसं
रहः श्रीरूपाख्यप्रियतमजनस्यैव चरमः ॥'

श्रीस्वरूपगोस्वामि-कड़चायाम्—

'अवनिसुरवरः श्रीपण्डिताख्यो यतीन्द्रः
स खलु भवति राधा श्रीलगौरावतारे ।
नरहरिसरकारस्यापि दामोदरस्य
प्रभुनिजदयितानां तच्च सारं मतं मे ॥' इत्यादि;

श्रीसार्वभौमभट्टाचार्य्यैः शतनामस्तोत्रे ( १४ )—

'गदाधर-प्राणनाथ आर्त्तिहा शरणप्रदः' इत्यादि;

श्रीसरकारठक्कुरेण 'भजनामृते'—

'इह मतं मे, यथा कलियुग-पावनावतार-करुणामय-श्रीश्रीचैतन्यचन्द्रः व्रजराजकुमारस्तथैव निःसीमशुद्धप्रणयसार-घनीभूत-महाभाव-स्वरूप-रसमय-परमदयितः श्रीगदाधर एव राधा';

वैष्णवाभिधाने च (५)—

'गदाधर-प्राणनाथं लक्ष्मीविष्णुप्रियापतिम्' इति;

श्रीमधुपण्डितगोस्वामिनोक्त-परमानन्दगोस्वामिपादानामष्टके च—

'गोपीनाथ-पदाब्जे, भ्रमति मनो यस्य भ्रमर-रूपतया।
तं करुणामृत-जलधिं, परमानन्दं प्रभुं वन्दे ॥'

श्रीपरमानन्द-गोस्वामिपादैर्यथा—

'कलिन्दनगनन्दिनीतटनिकुञ्जपुञ्जेषु य-
स्ततान वृषभानुजाकृतिरनल्पलीलारसम्।
निपीय व्रजमङ्गलोऽयमिह गौररूपोऽभवत्
स मे दिशतु भावुकं प्रभु-गदाधरः श्रीगुरुः ॥'

श्रीचैतन्यचरितकाव्ये (६।१२-१४)—

श्रीमान् गदाधर-महामतिरत्युदार-
श्रीलः स्वभावमधुरो बहुशान्तमूर्त्तिः।
उच्चैः समीपशयितः प्रभुणा रजन्यां
निर्माल्यमेतदुरसि प्रतिसार्य्यमेभ्यः॥
इत्थं स यद्यददात् प्रमदेन यस्मै
यस्मै जनाय तदिदं स गदाधरोऽपि।
प्रातर्ददौ सततमुल्लसिताय तस्मै
तस्मै महाप्रभु-विमुक्त-महाप्रसादम्॥
संग्रथ्य माल्यनिचयं परिचर्य्य यत्नात्
सद्गन्धसार-घनसार-वरादिपङ्कम्।
अङ्गेषु तस्य परितो जयति स्म नित्यं
सोत्कण्ठमत्र स गदाधर-पण्डिताग्र्यः ॥'

तत्र हि (५।५५)—

'श्रीवासस्तदनु गदाधरं बभाषे भक्ष्याद्यं सकलममुत्र नीयतां तत्।
इत्युक्तः स च सकलं निनाय तत्र प्रेमार्द्रो निरवधि-विस्मृतात्मचेष्टः॥

तत्र हि (५।१२८-९)—

'स तु गदाधरपण्डित-सत्तमः सततमस्य समीप-सुसङ्गतः।
अनुदिनं भजते निज-जीवित-प्रियतमं तमतिस्पृहया युतम्॥
निशि तदीय-समीपगतः स्थिरः शयनमुत्सुक एव करोति सः।
विहरणामृतमस्य निरन्तरं सदुपभुक्तमनेन निरन्तरम्॥'

तत्र हि ( ११।२२-७ )—

'निवृत्तेऽस्मिन् तैस्तैः कलित-ललनाभूमिकरुचि-
र्गदाधृक्संज्ञोऽसौ धृतवलयशङ्खोज्ज्वलकरः ।
प्रविष्टो गार्यद्भिर्लघु लघु मृदङ्गे मुखरिते
तथा तालैर्मानैर्नटनकलया तत्र विभवौ ॥
तदा नृत्यत्यस्मिन् धृतमधुरवेशोज्ज्वलरुचौ
मृदङ्गालीभङ्गीशत-मधुर-सङ्गीतकलया ।
जनैर्भूयो भूयः सुखजलधिमग्नैर्विनिमिषैः
समन्तादासेदे जड़िमजड़िमाङ्गैः किममृतम् ॥'
वृषभानुसुता राधा श्यामसुन्दर-वल्लभा ।
कलौ गदाधरः ख्यातो माधवानन्द-नन्दनः ॥
माधवस्य गृहे जातो माधवस्य कुहूतिथौ ।
श्रीराधाङ्ग तद्रूपेण पण्डितः श्रीगदाधरः ॥

अथ श्रीवासुदेवघोष-ठक्कुरः॥—

**आगम-अगोचर गोरा**

**अखिल ब्रह्मपर, वेद उपर, ना जाने पाषण्डी मतिभोरा ।ध्रु ॥**
**नित्य नित्यानन्द, चैतन्य गोविन्द, पण्डित गदाधर राधे ।**
**चैतन्य युगलरूप, केवल रसेर कूप, अवतार सदाशिव साधे ॥**
**अन्तरे नवघन, बाहिरे गौरतनु, युगलरूप परकाशे ।**
**कहे वासुदेव घोषे, युगलभजनरसे, जनमे जनमे रहु आशे ।१।**

**गौराङ्ग विहरइ परम आनन्दे ।**

**नित्यानन्द करि' सङ्गे, गङ्गा-पुलिनरङ्गे, हरिहरि वोले निजवृन्दे ।**
काँचा काञ्चनमणि, गोरारूप ताहे जिनि,' डगमगिप्रेमतरङ्ग ।
ओ नव कुसुमदाम, गले दोले अनुपाम, हेलन नरहरि-अङ्ग ॥
भावे भरल तनु, पुलक कदम्ब जनु, गरजइ येछन सिंहे ।
प्रिय गदाधर, धरिया से वाम कर, निजगुण गान गोविन्दे ॥
अरुण-नयनकोणे ईषत हासिया खेने, रोयत किवा अभिलाषे ।
सोँअरि से सब खेला, श्रीवृन्दावनरसलीला, कि वोलव वासुदेव घोषे

अथ **वासकसज्जारसः** (३५६६ॐ )—

अरुण-नयने धारा वहे। अरुणित माल माथे गोरा रहे।
कि भाव पड़ियाछे मने। भूमि गड़ि पड़े क्षणे क्षणे ॥
कमल-पल्लव विछाइया। रहे गोरा धेयान करिया ॥
वासकसज्जार भाव करि। विरले वसिया एकेश्वरी ॥
वासुदेव घोष ता देखिया। बोले किछु चरणे धरिया ॥३

अथ **दानलीला** ( गौरपद )—

आजुरे गौराचाँदेर कि भाव पड़िल।
नदीयाव वाटे गोरा दान सिरजिल॥
कि रसेर दान चाहे गोरा द्विजमणि।
वेत दिया आगुलिया राखये तरुणी॥
दान देह वलि' घने घने डाके।
नगर-नागरी यत पड़िल विपाके॥
कृष्ण-अवतारे आमि साधियाछि दान।
से भाव पड़िल मने वासुदेव गान॥४

अथ **जलक्रीड़ा** ( २६४६ )—

जलक्रीड़ा गोराचाँदेर मनेते पड़िल।
सङ्गे लैया परिषद जलेते नाम्विल॥
गोरा-अङ्गे केहो केहो जल फेलि' मारे।
गौराङ्ग फेलिया जल मारे गदाधरे॥
जलक्रीड़ा करे गोरा हरषित मने।
हुलाहुलि तुलातुलि करि' जने जने॥
गौराङ्ग-चाँदेर लीला कहन ना याय।
वासुदेव घोषे ऐ गोरागुण गाय॥५

अथ **पाशाखेला** ( २६७१ )—

पाशा-खेला-गोराचाँदेर मने त पड़िल।
पाशा लैया गोरा खेला सिरजिल॥
प्रिय गदाधर सङ्गे गोरा खेले पाशा सारि।

खेलिते लागिल पाशा हारिजिनि करि' ।।
दुयाचारि वलि दान फेले गदाधर ।
पञ्च तिन वलिया डाके गौराङ्गसुन्दर ।।
दुइ जने मगन भेल नव पाशा रसे ।
जय जय दिया गाय वासुदेव घोषे ।।६।।

अथ **चन्दनम्** ( गौरपद )—

अगुरु-चन्दन लेपिया गोरा गाय । प्रिय पारिषदगण गोरागुण गाय
आनि' सलिल केह धरि' निज करे । मनेर मानसे ढाले गोरार उपरे
चाँद जिनिया मुख अधिक करि साजे ।
मालतीफुलेर माला गोरा-अङ्गे साजे ।।
अरुण वसन साजे नाना आभरणे ।
वासुदेव गोरारूप करे निरीक्षणे ।।७

अथ **फुललीला** (१५२५)—

फुलवन गौराचाँद देखिया नयने ।
फुलेर समर गोरार पड़ि गेल मने ।।
* * *
प्रिय गदाधर सङ्गे आर नित्यानन्द ।
फुलेर समरे गोरारं हइल आनन्द ।।
गदाधर सङ्गे पहुं करये विलास ।
वासुदेव कहे रस करल प्रकाश ।।८

अथ **होलिफागुखेला**—

सहचर मिलि' फागु मारे गोरा-गाय ।
चन्दन पिचका भरि' केहो केहो धाय ।।
नाना यन्त्र सुमेलि करिया श्रीनिवास ।
गदाधर-आदि सङ्गे करये विलास ।।
हरि वुलि भुज तुलि' नाचे हरिदास ।
वासुदेव घोषे रस करिल प्रकाश ।।९
आरे मोर द्विजमणि ।
राधा राधा वलि' गौरा लोटाय धरणी ।ध्रु ।

राधा-नाम जपे गोरा परमयतने ।
सुललित धारा वहे अरुण-नयने ।।
क्षेणेक्षेणे गोराचाँद भूमे गड़ि याय ।
राधिकार वदन हेरि' क्षेणे मुरुछाय ।।
पुलके पुरल तनु गदगद बोल ।
कहे वासु गोरा मोर वड़ उतरोल ।।१०

गौराङ्ग-विरहज्वरे, हिया छटफट करे, जीवने ना बाँधये थेहा ।
ना हेरिया चाँदमुख, विदरिते चाहे वुक, केमन करिते चाहे नेहा ।।
प्राणेर हरि ! हरि ! कह मोरे जीवन-उपाय ।
ए दुखे दुखित ये, ए दुख जानये से, आर आमि निवेदिव काय ।।
गौराङ्ग-मुखेर हासि, सुधा खसे राशि राशि, ताहा आमि ना पाइ देखिते ।
यत छिल बन्धुगण, सभे भेल निकरुण, आमि जीये कि सुख खाइते ?
गदाधर आदि करि, ना देखिया प्राणे मरि, मइलु मइलु मधुमती ना देखिया ।
ये मोरे करित दया, से गेल निठुर हञा, वासु केने ना गेल मरिया ११

**यथा स्वयं भगवान् श्रीव्रजेन्द्रनन्दनः स्वस्य कायव्यूहप्रकाश-विलास-परावस्थ-प्राभववैभवरूपैः श्रीवलदेव-श्रीमथुरा-द्वारकागोलोक परव्योमनाथ-नृसिंह-रघुनाथादिभिः स्वावतारावलीभिस्तत्तत् पार्षदैश्च श्रीमन्नित्यानन्दाद्वैत-श्रीवासं कृत्वा कलौ-श्रीकृष्णचैतन्य-महाप्रभुः सन् कृपया प्रकटोऽभुत् । तथा तेन रसिकमण्डलशेखरेण स्वस्य महाशक्ति-ह्लादिनीसाररूपा सर्वलक्ष्मी स्वरूपाश्रीवृषभानु-नन्दिनी श्रीमती राधैव श्रीगोपीगण महिषीगण-लक्ष्मीगणैः स्वस्य कायव्यूह-प्रकाशरूपैः सहिता श्रीगदाधरपण्डितरूपेणावतारिताभूत्; प्रभुत्वात्तस्यैव । शक्तिश्च अघटनघटना-पटीयसी योगमाया वैभवेन यदा यदिच्छां करोति, तत् किमपि दुर्घटं न भवति अवतीर्य्य सङ्कीर्त्तनानन्दावेशेन तत्तत् पूर्वपूर्वभावं स्वस्व-विलासशक्तिपार्षदं प्रति दर्शितवान् । एतत्तु श्रीकर्णपूर-श्रीवृन्दावनदास-श्रीवासुदेव**

श्रीनरहरि–ठक्कुरादि–श्रीरूपसनातन-श्रीकृष्णदास-श्रीकविराज–श्री-लोचनदास प्रभृतिभिः स्वस्वग्रन्थे लिखित्वा स्थापितमस्ति । तस्मात् **सर्वेषां श्रीकृष्ण–चैतन्य-पार्षदानां मते श्रीगदाधरपण्डित एव श्रीवृषभानुनन्दिनी श्रीराधा, किं बहु विचारितेन ?** किञ्च.—अद्यापि श्रीवृन्दावने उपासनाप्राप्तिस्थाने श्रीमद्‌राधागोविन्द श्रीराधामदनगोपाल-सेवाधिकारी श्रीरूपसना-तनानुगत्ये राधा–गदाधर चरित्रमेव दृश्यते । श्रीचैतन्यभागवते श्रीठक्कुर-वृन्दावन-वर्णने मध्यखण्डे ( १८श० अ० )—

'प्रथम प्रहरे एइ कौतुक-विशेष । द्वितीय प्रहरे गदाधर-परवेश ।।

सुप्रभा ताहान सखी करि' निजसङ्गे ।
ब्रह्मानन्द ताँहार वड़ाइ वुड़ी रङ्गे ।।
हाते लड़ि काँखे डालि, नेत परिधान ।
ब्रह्मानन्द—येहेन वड़ाइ विद्यमान ।।
डाकि वोले हरिदास,—'के सव तोमरा ?'
ब्रह्मानन्द वोले,—'याइ मथुरा आमरा' ।।
श्रीनिवास वोले,—'दुइ काहार वनिता ?'
ब्रह्मानन्द वोले, –'केने जिज्ञास वारता ?'
श्रीनिवास वोले,—'जानिवारे ना जुयाय ।'
'हय ' वलि ब्रह्मानन्द मस्तक ढुलाय ।।
गङ्गादास वोले,–'आजि कोथाय रहिवा ?
ब्रह्मानन्द वोले,—'स्थानखानि तुमि दिवा' ।।
गङ्गादास वोले,—'तुमि जिज्ञासिले वड़ ।
जिज्ञासार काज नाहि झाट तुमि नड़ ।।
अद्वैत वोलये,—'एत विचार कि काज ?
मातृसमा पर-नारी केने देह' लाज ?

नृत्य-गीते पीत वड़ आमार ठाकुर । एथाय नाचह धन पाइवेप्रचुर ।'
अद्वैतेर वाक्य शुनि' परम हरिषे । गदाधर नृत्य करे प्रेम परकाशे ।।

रसावेशे गदाधर नाचे मनोहर। समय-उचित गीत गाय अनुचर ॥
गदाधर नृत्य देखि' आछे कोन जन ?
विह्वल हैया नाहि करये क्रन्दन ?
प्रेमनदी वहे गदाधरेर नयने। पृथिवी हइया सिक्त धन्य हेन माने ॥
गदाधर हैला येन गङ्गा मूर्त्तिमती।
सत्य सत्य गदाधर कृष्णेर प्रकृति ॥
आपने चैतन्य वलियाछेन वारवार। 'गदाधर मोर वैकुण्ठेर परिवार।
ये गाय, ये देखे, सभे भासिलेन प्रेमे।
चैतन्य-प्रसादे केहो वाह्य नाहि जाने ॥
'हरि हरि' वलि' काँदे सव वैष्णवमण्डल।
सर्वगण लइया गोविन्द-कोलाहल ॥
चौदिके शुनिये कृष्णप्रेमेर क्रन्दन।
गोपिकार वेशे नाचे माधव-नन्दन ॥
तथाहि (मध्य० २य० अ० )—
'एकदिन ताम्वूल लइया गदाधर। सन्तोषे आइला प्रभु प्रभुर गोचर।
गदाधरे देखि' प्रभु करेन जिज्ञासा।
'कोथा कृष्ण आछेन श्यामल पीतवासा ?'
से आर्त्ति देखिते सर्व हृदय विदरे।
के कि वलिवेक प्रभु, वोध नाहि स्फुरे ॥
संभ्रमे वोलेन गदाधर महाशय।
'निरवधि आछेन कृष्ण तोमार हृदय' ॥
'हृदये आछेन कृष्ण,—वचन शुनिया।
आपन-हृदय प्रभु चिरे नख दिया ॥
आस्ते व्यस्ते गदाधर प्रभुहस्त धरे।
आर्त्ति देखि' गदाधर मनेत विचारे ॥
'एइ आसिवेन कृष्ण, स्थिर हओ खानि'।
गदाधर वोले,—'आइ ! देखये आपुनि' ॥
वड़ तुष्ट हैला आइ गदाधर-प्रति।

एमत शिशुर वुद्धि नाहि आर कति ॥
मुञि भये नाहि पारो सम्मुख हइते ।
शिशु हइ केमने प्रवोधिला भालमते ॥'
आइ वोले,—'वाप ! तुमि सर्वदा थाकिवा ।
छाड़िया उहार सङ्ग कोथाह ना यावा' ॥'

तथाहि मध्यखण्डे ( १म० अ० )-

"प्रभु वोले,—'कोन् जन गृहेर भितर ?'
ब्रह्मचारी वोलेन,—'तोमार गदाधर' ॥
हेँट माथा करि' काँदेन गदाधर ।
देखिया सन्तोषे प्रभु वोले विश्वम्भर ॥
प्रभु वोले,—'गदाधर तोमरा सुकृति ।
शिशु हैते कृष्णेते हइला दृढ़मति ॥
आमार से हेन जन्म गेल वृथा-रसे ।
ना पाइल अमूल्य निधि दीनहीन-दोषे ॥''

तथाहि मध्यखण्डे ( २५श० अ० )-

" एइ सव अद्भुत सेइ नवद्वीपे हये ।
तथापि ओ भक्त वइ अन्य ना जानये ।
मध्यखण्डेर परम अद्भुत सव कथा ।
मृतदेहे तत्त्वज्ञान कहिलेन कथा ॥
हेनमते नवद्वीपे श्रीगौरसुन्दर ।
विहरये सङ्कीर्त्तन-सुखे निरन्तर ॥
प्रेमरसे प्रभुरे संसार नाहि स्फुरे ।
अन्येर कि दाय्, विष्णु पूजिते ना पारे ॥
स्नान करि' वैसे प्रभु श्रीविष्णु पूजिते ।
प्रेमजले सकल श्रीअङ्ग-वस्त्र तिते ॥
वाहिर हइया प्रभु से वस्त्र छाड़िया ।
पुन अन्य वस्त्र परि' विष्णु पूजे' गिया ॥
पुन प्रेमानन्द-जले तिते से वसन ।

पुन बाहिराइ अङ्ग करि प्रक्षालन ॥
एइ मत वस्त्र परिवर्त्त करे मात्र ।
प्रेमे विष्णु पूजिते ना पारे तिल मात्र ॥
शेषे गदाधर-प्रति वलिलेन वाक्य ।
'तुमि विष्णु पूज, मोर नाहिक सेभाग्य' ॥
एइ मत वैकुण्ठ-नायक भक्तिरसे ।
विहरइ नवद्वीप रात्रिते दिवसे ॥''

अथाहि ( अन्त्य० ७म० अ० )–

''नित्यानन्द-स्वरूप सभारे करि' कोले ।
सिञ्चिला सभार अङ्ग नयनेर जले ॥
तवे जगन्नाथ देखि हर्ष सर्व्वगणे ।
आनन्दे चलिला गदाधर-दरशने ॥
नित्यानन्द-गदाधरे ये प्रीति अन्तरे ।
इहा कहिवारे शक्ति ईश्वरे से धरे ॥
गदाधर-भवने मोहन गोपीनाथ ।
आछेन येहेन नन्दकुमार साक्षात् ॥
आपने चैतन्य ताँ'रे करियाछेन कोले ।
अतिवड़ पाषण्डी से विग्रह देखि' भुले ॥
देखि' श्रीमुरलीमुख अङ्गेर भङ्गिमा ।
नित्यानन्द-आनन्द-अश्रुर नाहि सीमा ॥
नित्यानन्द-विजय जानिया गदाधर ।
भागवत-पाठ छाड़ि' आइला सत्वर ॥
दुँहे मात्र देखि' दोँहार श्रीवदन ।
गला धरि' लागिलेन करिते क्रन्दन ॥
अन्योन्ये दुँहु प्रभु करेन नमस्कार ।
अन्योन्ये दुँहे वोले महिमा दोँहार ॥
दुँहु वोले,—'आजि हैल लोचन निर्मल' ।
दुँहु वोले,—'जन्म आजि आमार सफल' ।

बाह्य ज्ञान नाहि दुइ प्रभुर शरीरे।
दुँहु प्रभु भासे निज आनन्द सागरे॥
हेन से हैल प्रेमभक्तिर प्रकाश।
देखि' चतुर्दिके पड़ि' काँदे सर्व्वदास॥
कि अद्भुत प्रीति नित्यानन्द-गदाधरे।
एकेर अप्रिय आरे सम्भाषा ना करे॥
गदाधर-देवेर सङ्कल्प एइरूप।
नित्यानन्द-निन्दकेर ना देखेन मुख॥
नित्यानन्द-स्वरूपेरे प्रीति या'र नाइ।
देखा ओ ना देन ता'रे पण्डित गोसाञि॥
तबे दुइ प्रभु स्थिर हइ' एकस्थाने।
वसिलेन चैतन्य-मङ्गल-सङ्कीर्त्तने॥'

अथ शेषखण्डे ( ३य० अ० )—

" हेनमते सिन्धुतोरे श्रीगौरसुन्दर।
सर्वरात्रि नृत्य करे अति मनोहर॥
निरवधि गदाधर थाकेन संहति।
प्रभु गदाधरेर विच्छेद नाहि कति॥
कि भोजने, कि शयने, किवा पर्य्यटने।
गदाधर प्रभुरे सेवेन अनुक्षणे॥
गदाधर सम्मुखे पड़ेन भागवत। शुनि हय प्रभु प्रेमरसे महामत्त॥
गदाधर-वाक्ये मात्र प्रभु सुखी हय।
भ्रमे गदाधर-सङ्गे वैष्णव-आलय॥'

तथाहि ( अन्त्य० १०म० अ० )—

"एइमत प्रभु प्रिय-गदाधर-सङ्गे।
तान मुखे भागवत-कथा शुने' रङ्गे॥
गदाधर पड़ेन स्वमुखे भागवत।
प्रह्लादचरित्र आर ध्रुवेर चरित॥
शतावृत्ति करिया शुनेन सावहित।

परकार्य्य प्रभुर नाहिक कदाचित ॥
भागवत-पाठ गदाधरेर विषय ।
दामोदरस्वरूपेर कीर्त्तन सदाय ॥
एकेश्वर श्रीदामोदर-स्वरूप गाय ।
विह्वल हञा नाचे वैकुण्ठेर राय ॥
अश्रु, कम्प, हास्य, मूर्च्छा, पुलक, हुङ्कार ।
यत किछु आछे प्रेमभक्तिर विकार ॥
मूर्त्तिमन्त सभे थाके ईश्वरेर स्थाने ।
नाचेन चैतन्यचन्द्र इहाँ सभ–सने ॥
दामोदर-स्वरूपेर उच्च सङ्कीर्त्तने ।
शुनिले ना थाके वाह्य नाचे सेइ क्षणे ॥"

तथाहि ( आदि० १म० अ० )—

" ये ना माने भागवत, से यवन-सम ।
तार शास्ता आछे प्रभु जन्मे जन्मे यम ॥'

तथाहि तत्रैव ( आदि० १०म० अ० )—

''सेइ रात्रि तथाइ थाकि' तवे आर दिने ।
गृहे आइलेन प्रभु लक्ष्मी-देवी–सने ॥
श्रीलक्ष्मी सहिते प्रभु चढ़िया दोलाय ।
नदीयार लोक सव देखिवारे धाय ॥
गन्धमाला-अलङ्कार मुकुटे चन्दन ।
कज्जले उज्ज्वल दोँहे लक्ष्मी–नारायण ॥'

तथाहि तत्रैव ( आदि० १२श० अ० )—

"'काशीनाथ देखि' राजपण्डित आपने ।
वसिते आसन आनि' दिलेन संभ्रमे ॥
परम-गौरवे विधि करि' यथोचित ।
'कि कार्य्ये आइले ? जिज्ञासिलेन पण्डित ॥
काशीनाथ वोलेन,—'आछये किछु कथा ।
चित्ते लय यदि तवे करह सर्वथा ॥

विश्वम्भर-पण्डितेरे तोमार दुहिता।
दान कर सम्वन्ध उचित्त सर्वथा ।।
तोमार कन्यार योग्य सेइ दिव्य पति ।
ताहाने उचित पत्नी एइ महासती ।।
येन कृष्ण-रुक्मिणीये अन्योन्य उचित ।
सेइ मत विष्णुप्रिया-निमाइ पण्डित ।।'
शुनि' विप्र पत्नी आदि आप्तवर्ग सहे ।
लागिल करिते युक्ति के वुझि कि कहे ।
सभे वुलिलेन,—'आर कि कार्य्य विचारे ?
सर्वथा ए कर्म गिया करह सत्वरे ।।"

तथाहि तत्रैव ( आदि० १५श० अ० )—

"भोजन करिया सुखरात्रि-सुमङ्गले ।
लक्ष्मी-कृष्ण एकत्र रहिला कुतूहले ।।
सनातन पण्डितेर गोष्ठीर सहिते ।
ये सुख पाइला, ताहा के पारे वर्णिते ?
नग्नजित जनक भीष्मक जाम्वूवन्त।
पूर्वे येन ताँ'रा हइला भाग्यवन्त ।।
सेइ भाग्य गोष्ठीर सहित सनातन ।
पाइलेन पूर्वविष्णुसेवार कारण ।।'

तथाहि तत्रैव ( आदि १५श अ: )

"नृत्यगीत-वाद्य-पुष्प वर्षिते वर्षिते ।
परम आनन्दे आइलेन सर्वपथे ।।
तवे शुभक्षणे प्रभु सकल मङ्गले ।
पुत्रवधू गृहे आनिलेन हर्ष हइया ।।
गृहे आसि' वसिलेन लक्ष्मी-नारायण ।
जय जय महाध्वनि हइल तखन ।।'

अथ श्रीचैतन्यचरितामृते च ( आदि० १म० प० )—

"भगवानेर भक्त यत श्रीवास प्रधान ।

ताँ-सभार पादपद्मे सहस्र प्रणाम ॥
अद्वैत आचार्य्य—प्रभुर अंश अवतार ।
ताँ'र पादपद्मे कोटि प्रणति आमार ॥
नित्यानन्द राय—प्रभुर स्वरूप-प्रकाश ।
ताँ'र पादपद्म वन्दो या'र मुञि दास ॥
गदाधर पण्डित-आदि—प्रभुर निजशक्ति ।
ताँ-सभार चरणे करों सहस्र प्रणति ॥
श्रीकृष्णचैतन्य प्रभु—स्वयं भगवान् ।
ताँहार चरणारविन्दे अनन्त प्रणाम ॥'

तथाहि तत्रैव ( आदि० १म० प० )—

"पञ्चतत्त्वात्मकं कृष्णं भक्तरूप-स्वरूपकम् ।
भक्तावतारं भक्ताख्यं नमामि भक्त-शक्तिकम् ॥

तथाहि तत्रैव ( मध्य० ८म० प० )—

"अन्तरङ्गा वहिरङ्गा, तटस्था वुलि यारे ।
अन्तरङ्गा स्वरूपशक्ति सभार उपरे ॥'

( आदि० ७म० प० )—

"श्रीगदाधर पण्डित गोसाञि—शक्ति-अवतार ।
अन्तरङ्गा स्वरूपशक्ति गणना याँहार ॥'

तथाहि आदिखण्डे द्वादशपरिच्छेदे—

"श्रीगदाधर पण्डित शाखा महोत्तम ।
ताँर शाखा उपशाखा करिये गणन ॥
पण्डित-गोसाञिर गण भागवत धन्य ।
प्राणवल्लभ याँर श्रीकृष्णचैतन्य ॥
एइ तिन स्कन्धेर कैलु शाखार गणन ।
याँ सभार स्मरणे हय बन्ध-विमोचन ॥
याँहार स्मरणे पाइ चैतन्य चरण ।
याँ सभार स्मरणे हये वाञ्छित-पूरण ॥"

तथाहि मध्यखण्डे ( २य० प० )—

"चण्डीदास, विद्यापति, रायेर नाटकगीति,
कर्णामृत, श्रीगीतगोविन्द ।
स्वरूप-रामानन्द—सने, महाप्रभु रात्रि-दिने,
गाय, शुने परम आनन्द ।।
पुरी गोसाञिर वात्सल्य मुख्य, रामानन्देर शुद्ध सख्य,
गोविन्दाद्येर शुद्ध दास्यरस ।
गदाधर, जगदानन्द, स्वरूपेर मुख्य रसानन्द,
एइ चारिभावे प्रभु वश ।।"

अतः श्रीभगवत् कृष्णचैतन्यदेवस्यान्तरङ्गशक्तिवर्गमुख्यतमः श्रीगदाधर-पण्डितः। अतः श्रीनीलाचले स्वसेवाधि-कारित्वेन श्री-भागवत-कथाकथनाधिकारित्वेन च तेन स च निरूपितः। एवं गौरदेश-मुख्यप्रदेश-स्वप्रकट-स्थल नवद्वीप तथा सर्वधामप्रवर-श्री-वृन्दावनेऽपि। इति तु श्रीचैतन्यभागवते श्रीचैतन्यचरितामृतादौ प्रसिद्धं वर्त्तते। तत्र श्रीचैतन्यभागवते श्रीनवद्वीप-लीलायां श्रीमहा प्रभोराज्ञा ( मध्य० २५श० अ० )—

"शेषे गदाधर प्रति वुलिलेन वाक्य ।
'तुमि विष्णु पूज, मोर नाहिक से भाग्य ।।'

तथा चात्र नीलाचले ( अन्त्य० १०म० अ० )—

"भागवत—पाठ गदाधरेर विषय ।
दामोदर—स्वरूपेर कीर्त्तन सदाय ।।"

तत्र च श्रीवृन्दावने श्रीश्रीसेवाधिकारस्तु पूर्वं लिखितोऽस्ति । तथाहि ( चै० च० मध्य० ) षोड़श-परिच्छेदे श्रीवृन्दावनागमने-

"गदाधर पण्डित तवे सङ्गेते चलिला ।
'क्षेत्रसन्न्यास ना छाड़िह' प्रभु निषेधिला ।।
पण्डित कहे,—'याँहा तुमि, ताँहा नीलाचल ।
क्षेत्रसन्न्यास आमार याउक रसातल ।।'

प्रभु कहे,—इहाँ कर गोपीनाथे सेवन।'
पण्डित कहे,—'कोटि-सेवा त्वत्पाददरशन'॥
प्रभु कहे,—'सेवा छाड़िबे आमाय लागे दोष।
इहाँ रहि सेवा कर, आमार सन्तोष॥
पण्डित कहे,—'सब दोष आमार उपर।
तोमा सङ्गे ना या'ब या'ब एकेश्वर॥
आई देखिते या'ब आमि ना या'ब तोमा लागि'।
प्रतिज्ञा-सेवा-त्याग-दोष, ता'र आमि भागी॥'
एत बुलि' पण्डित गोसाञि पृथक् चलिला।
कटक आसि' प्रभु ताँ'रे सङ्गे आनाइला॥
पड़ितेर गौरप्रेम बुझन ना याय।
प्रतिज्ञा-श्रीकृष्ण-सेवा छाड़िला तृणप्राय॥
ताँहार चरित्रे प्रभु अन्तरे सन्तोष।
ताँ'र हाते धरि' प्रभु कहेन प्रणयरोष।
'प्रतिज्ञा-सेवा छाढ़िबे—ए तामार उद्देश।
से सिद्ध हइल, छाड़ि आइला दूरदेश॥
आमार सङ्गे ते रहिते चाह, वाञ्छ निज सुख।
तोमार दुइ धर्म्म याय, आमार हय दुख।
मोर सुख चाह यदि नीलाचले चल।
आमार शपथ, यदि आर किछु वल॥'
एत वलि' महाप्रभु नौकाते चड़िला।
मूर्च्छित हइया पण्डित तथाइ पड़िला॥
पण्डित लइया याइते सार्वभौमे विदाय दिला।
भट्टाचार्य्य कहे—'उठ ऐछे प्रभुर लीला॥
तुमि कृष्ण-सेवा निज-प्रतिज्ञा छाड़िला।
भक्त कृपाय प्रभु भीष्मेर प्रतिज्ञा राखिला॥'

तथाहि (श्रीभा १।९।३७) स्वनिगममपहाय मत्प्रतिज्ञा-मृतमधिकर्त्तुमु' इत्यादि।

तथाहि ( चै० च० अन्त्य० ) सप्तमपरिच्छेदे—

"वल्लभ भट्टे र हय वात्सल्य-उपासन ।
वालगोपालेर मन्त्रे करये सेवन ॥
पण्डितेर सने ताँ'र मन फिरि' गेल ।
किशोरगोपाल-उपासनाय मन हइल ॥
पण्डितेर ठाञि चाहे मन्त्रादि शिखिते ।
पण्डित कहे,—'एइ कर्म्म नहे आमा हइते ॥
आमि परतन्त्र—आमार प्रभु गौरचन्द्र ।
ताँहार आज्ञा विना आमि ना हइ स्वतन्त्र ॥
तुमि ये आमार ठाञि कर आगमन ।
ताहातेइ महाप्रभु देन ओलाहन ॥'
एइ मत भट्टे र कथेक दिन गेला ।
शेषे यदि महाप्रभु प्रसन्न हइला ॥
निमन्त्रणेर दिने पण्डितेरे वोलाइला ।
स्वरूप, जगदानन्द, गोविन्द पाठाइला ।
पथे पण्डितेरे स्वरूप कहेन वचन ।
'परीक्षिते प्रभु तोमा कैला उपेक्षण ॥
तुमि केने आसि ताँ'रे ना दिले ओलाहन ?
भीतप्राय हइ केने करिले सहन ?'
पण्डित कहे,—'प्रभु स्वतन्त्र सर्वज्ञ-शिरोमणि ।
ताँ'र सने हठ करि, भाल नाहि मानि ॥
येइ कहे, सेइ सहि, निज शिरे धरि' ।
आपने करिबे कृपा दोषादि विचारि ॥'
एत वलि' पण्डित प्रभुस्थाने आइला ।
रोदन करिया प्रभुर चरणे पड़िला ॥
ईषत् हासिया ताँ'रे कैला आलिङ्गन ।
सभा शुनाइया कहे मधुर वचन ॥
आमि चालाइलुँ तोमा, तुमि ना चलिला ।

क्रोधे किछु ना कहिला, सकलि सहिला ।।
आमार भङ्गिते तोमार मन ना चलिला ।
सूदृढ़ सरलभावे तुमि आमारे किनिला ।।
पण्डितेर भावमुद्रा कहन ना याय ।
गदाधर-प्राणनाथ नाम हैल याय ।।
पण्डिते प्रभुर कृपा कहन ना याय ।
गदाइर गौराङ्ग करि' सर्वलोक गाय ।।
चैतन्य प्रभुर लीला के बुझिते पारे ।
एक लीलाय वहे गङ्गा शत शत धारे ।।
पण्डितेर सौजन्यता, ब्रह्मण्यता, सद्गुण ।
दृढ़ प्रेममुद्रा लोके करिला ख्यापन ।।
अभिमान-पङ्क धुइया भट्टेरे शोधिला ।
सेइ द्वाराय सव लोक शिखाइला ।।
अन्तरे अनुग्रह, वाह्ये उपेक्षार प्राय ।
वाह्य अर्थ येइ लय सेइ नाश याय ।।
निगूढ़ चैतन्य-लीला बुझिते कार शक्ति ।
सेइ बुझे, गौरचन्द्रे याँ'र दृढ़भक्ति ।।
दिनान्तरे पण्डित कैला प्रभुर निमन्त्रण ।
प्रभु ताँहा भिक्षा कैला लैया निजगण ।।
ताँहा वल्लभभट्ट प्रभु-स्थाने आज्ञा लइला ।
पण्डितेर ठाघि पूर्व प्रार्थना सिद्धि कैला ।।
एइ त कहिलुँ वल्लभ-भट्टेर मिलन ।
याहार श्रवणे पाइ गौरप्रेमधन ।।
श्रीरूप-रघुनाथ-पदे या'र आश ।
चैतन्य चरितामृत कहे कृष्णदास ।।'

श्रीचैतन्यमङ्गले मध्यखण्डे,

राग—वराड़ी ( धुला-खेला-जात )—

"आर अपरूप कथा, शुन गोरागुणगाथा,
लोके वेदे अगोचर वाणी ।

आवेशेर वेशे कर,                भक्तियोग परचारे
करुणा-विग्रह गुणमणि ।
शुन कथा मन दिया,              आन कथा पासरिया,
अपरूप कहिवार वेला ।
निजजन सङ्गे करि',              श्रीविश्वम्भर हरि,
श्रीचन्द्रशेखर-वाड़ि गेला ।।
कथा-परसङ्गे कथा,               गोपिकार गुणगाथा,
कहिते से गदगद भाष ।
अरुण-वरण भेल,                 दुनयने भरे जल,
सेइ रसावेशेर विलास ।।
कमला याहार पद,                सेवा करे अविरत,
हेन पहुँ भावे गोपिकारे ।
परसङ्गे हय भोरा,                हेन भक्ति कैल ता'रा,
कथा-मात्रे से आवेश धरे ।।
तवे विश्वम्भर हरि,               गोपिकार वेश धरि',
श्रीचन्द्रशेखराचार्य्य-घरे ।
नाचये आनन्दे भोरा,             श्रीनिवास हेन वेला,
नारद-आवेश भेल तारे ।।
प्रभुरे प्रणाम करे               विनय-वचने बोले,
दास करि' जानिह आमारे ।
ए बोल वलिया वाणी,             तवे सेइ महामुनि,
गदाधर पण्डितेरे बोले ।।
शुनह गोपिका तुमि,              ये किछु कहिये आमि,
आपना मरम किछु जान ।
अपूर्व कहिये आमि,              जगते दुर्लभ तुमि,
तो'र कथा शुन सावधाने ।।
आमि तो सभार कथा,             कहि शुन गुणगाथा,
गोकुले जन्मिल जने जने ।

छाड़ि' निज पति सुत, सेवा कर अविरत
अभिमत पाञा वृन्दावने ।।
ऐछन- करिलि भक्ति, केहो ना जानये युक्ति,
परम निगूढ़ तिनलोके ।
ब्रह्मा, महेश्वर किवा, लखिमी, अनन्तदेवा,
ततोधिक परसाद तोके ।।
प्रह्लाद, नारद, शुक, सनातन, स–सनक,
केहो ना जानये भक्तिलेश ।
त्रैलोक्य-लखिमी-पति, तोरे मागे पिरीति,
अङ्ग वरये वरवेश ।।
लखिमी याहार दासी, तोर प्रेम प्रति-आशी,
हृदये धरये अनुराग ।
सकल-भुवन-पति, भुलाइलि पिरीति,
धनि धनि, भाव तो स्वभाव ।।
तोरा से जानिलि तत्त्व, प्रभुर मर्म महत्त्व,
पिरीते बाँधिलि भालमते ।
उद्धव-अक्रूर-आदि, सव तोर पद साधि,
अनुग्रह ना छाड़िह चिते ।।
एतेक कहिल वाणी, श्रीनिवास द्विजमणि,
शुनि' आनन्दित सव जन ।
सकल वैष्णव मिलि', करि, करे कोलाकुलि,
देखि विश्वम्भरेर चरण ।।
आछये आनन्दे भोरा, प्रेमे गरगर ता'रा
हेन वेले आइला हरिदास ।
दण्ड एक करि' करे, सम्मुखे दाण्डाया वोले,
गुण गाय परम उल्लास ।।
हरिगुण-कीर्त्तन, कर भाइ अनुक्षण,
इहा वुलि' अट्ट अट्ट हासे ।

हरिगुण गाने भोरा, दुनयने वहे धारा,
आनन्दे फिरये चारि दिशे ॥
शुनि' हरिदास-वाणी, सकल वैष्णव-मणि,
अमृत सिञ्चिल येन गाय ।
हरषिते नाचे गाय, माझे करि' गोरा राय,
काँदिया धरये राङ्गापाय ॥
तवे सर्वगुणधाम, अद्वैत-आचार्य्य नाम
आइला सर्व वैष्णवेर राजा ।
रूपे आलो करि' मही, सम्मुखे दाँड़ाया रहि,
प्रभु-अंशे जन्म महातेजा ॥
हरि हरि वलि' डाके, चमक पड़िल लोके,
आनन्दे नाचये प्रेमभरे ।
पुलकित सव गाय, आपाद-मस्तक याय,
प्रेमवारि दुनयने झरे ॥
विश्वम्भर-चरणे नेहारये घने घने,
हुहुङ्कार मारे मालसाट ।
सकल वैष्णव मिलि', प्रेमेर पसरा डालि,'
पसारिल अपरूप हाट ॥'

( गौरपद )

होलि खेलत गौरकिशोर । रसवती नारी गदाधर-कोर ॥
स्वेदविन्दु मुखे पुलक शरीर । भावभरे गलतहि लोचन-नीर ॥
व्रजरस गाओत नरहरि सङ्गे । मुकुन्द, मुरारि, वासु नाचत रङ्गे ॥
क्षणे क्षणे मुरुछइ पण्डित कोर । हेरइते सहचरी सुखे भेल भोर ॥
निकुन्ज-मन्दिर पहुँ करल विथार । भूमे पड़ि कहे काँहा मुरली हामार ॥
काहाँ गोवर्द्धन आर यमुनार कुल । निकुञ्ज-माधवी-युथी-मालतीक फुल ।
शिवानन्द कहे पहुँ शुनि रसवाणी । याँहा पहुँ गदाधर ताँहा रसखानि

अथ ठक्कुर-वृन्दावनस्य—

गौराङ्ग नाचे आपनार सुखे।

याँहार अनुभव, सेइ से जानये, कहने ना याय शत मुखे।ध्रु

गौराङ्ग-अङ्गे शोभे, कनया-कदम्व, ऐछन पुलक आभा।
आनन्दे भुलल, ठाकुर नित्यानन्द, देखिया भाइयार शोभा॥

के जाने केमन, ओ चाँद वदन, निशिदिशि परकाशे।
वामे रहल, पण्डित गदाधर, डाहिने नरहरि दासे॥

हेन अवतारे, ये जन वञ्चित, ता'रे कृपा करु नाथे।
श्रीकृष्णचैतन्य, ठाकुर नित्यानन्द, गुणगान वृन्दावन-दासे॥२॥

धन्य कलि-परवेश, धन्य धन्य गौड़देश, धन्य अवतार गोराचाँदे।
(प्रिय) गदाधर सङ्गे करि' कौतुके कौपीन परि,' हरिनामे जीवेर मन वाँधे॥

वाणी कमला धरे, ध्याने ना पाय या'रे वेद-निगूढ़ अवतार।
हइल आकाश-वाणी, अवतार-शिरोमणि, त्रिभुवने देय जय जयकार

प्रकाशिल षड़भुज, देखिल प्रतापरुद्र, ओ रसे वञ्चित सार्वभौमे।
सङ्गे नित्यानन्द राय, वृन्दावनदास गाय, मुञि से वञ्चित गोराप्रेमे।

तथा श्रीनरोत्तम-ठक्कुरकृत-प्रार्थनायाम्—

धन मोर नित्यानन्द, पति मोर गौरचन्द्र, देव मोर युगल किशोर।
अद्वैत-आचार्य्य वल, गदाधर मोर कुल, नरहरि विलास ये मोर॥

परमकारुण्यधाम, नित्य जप हरिनाम, श्रीगुरु-वैष्णव करि' ध्यान।
श्रीवैष्णव-पदधुलि, ताहे मोर स्नानकेलि, तरपण ताँ सभार नाम॥

हेन अनुमानि' मने, भक्तिरस-अस्वादने, मध्यस्थ पुराण भागवत।
वैष्णवेर उच्छिष्ट, ताहे मोर हउ निष्ठ, कुटुम्बिता ता सभार साथ॥

वृन्दावने चउतरा, ताँहा याँउ नित्यत्वरा, मने रहु सेवा-अभिलाष।
मुञि अतिहीनजन, मोर एइ निवेदन, कहे दीन नरोत्तमदास॥*

अथ श्रीगोविन्दकविराजस्य फागुया-वसन्त-आख्याने (१४६५)—

नीलाचले कनकाचल गोरा। गोविन्द-फागुरङ्गे भेल भोरा॥

देवकुमारी-नारीगण-सङ्ग। पुलक-कदम्ब-करम्बित अङ्ग ॥
फागुया खेलत गौरतनु। प्रेमसुधासिन्धु-मुरति जनु ॥
फागु-अरुण तनु अरुणहि चीर। अरुण-नयाने वहे अरुणहिँ नीर ॥
कण्ठहि लोलत अरुणित माल। अरुण भकत सव गाओये रसाल ॥
कत कत भाव विथरल अङ्ग। नयन ढुलाओत प्रेमतरङ्ग ॥
हेरि' गदाधर लहु लहु हास। सो नाहि ममुझत गोविन्ददास ॥*

अथ व्रजे यः स्वयं भगवतः श्रीनन्दनन्दनस्य कायव्यूहः (?) श्रीवलरामः, यश्च जगत्कर्त्ता महाविष्णुः, सर्व्वे श्रीप्रभोः सङ्गिनः श्रीनित्यानन्दाद्वैतादि-रूपेण जाता वर्त्तन्ते। तत्र प्रमाणं श्रीवृन्दावन-दासादीनां श्रीचैतन्यभागवते श्रीचैतन्यचरितामृते च प्रसिद्धम्; तत्र श्रीचैतन्यभागवते ( अन्त्य० ५म० अ० ) यथा—

"एइमत नित्यानन्द वालक-जीवन।
विह्वल करिते लागिलेन शिशुगण ॥
मासेकेओ शिशुगण ना करे आहार।
देखिते लोकेर चित्ते लागे चमत्कार ॥
हइलेन विह्वल सकल भक्तवृन्द।
सभार रक्षक हइलेन नित्यानन्द ॥
पुत्रप्राय करि' प्रभु सभारे धरिया।
करायेन भोजन आपने हस्त दिया ॥
कारेओ वा वाँधिया राखेन निज-पाशे।
मारेन, वाँधेन, महा अट्ट अट्ट हासे ॥
एकदिन गदाधर दासेर मन्दिरे।
आइलेन ताँ'र प्रीति करिवार तरे ॥
गोपीभावे गदाधर-दास महाशय।
हइयाछेन विह्वल परानन्दमय ॥
मस्तके करिया गङ्गाजलेर कलस।
निरवधि डाकेन, 'के किनिवे गोरस' ॥

श्रीबालगोपालेर मूर्त्ति तान देवालय ।
सर्व्वगणे हरिध्वनि विशाल करय ।।
हुङ्कार करिया नित्यानन्द मल्लराय ।
करिते लागिला नृत्य गोपाल लीलाय ।।
दानखण्ड गायेन माधवानन्द घोष ।
शुनि' अवधूत-सिंह परम सन्तोष ।।
भाग्यवन्त माधवेर हेन दिव्यध्वनि ।
शुणिते आविष्ट हन अवधूत मणि ।।
सुकृति श्रीगदाधर दास करि' सङ्गे ।
दानखण्ड-नृत्य प्रभु करे निजरङ्गे ।।
गोपीभावे बाह्य नाहि गदाधर-दासे ।
निरवधि आपनारे गोपी हेन वासे ।।
दानखण्ड लोला शुनि' नित्यानन्द राय ।
ये नृत्य करेन, ताहा वर्णन ना याय ।।
प्रेमभक्ति-विकारेर यत आछे नाम ।
सर्व प्रकाशिया नृत्य करे अनुपाम ।।
विद्युतेर प्राय नृत्यगतिर भङ्गिमा ।
किवा से अद्भुत भुज-चालन-महिमा ।।
किवा से नयनभङ्गी; कि सुन्दर हास ।
किवा से अद्भुत सव, केमन विलास ।।
एके एके करि' दुइ चरण सुन्दर ।
कि से जोड़े जोड़े लम्फ देन मनोहर ।।
ये दिके चाहेन नित्यानन्द प्रेमरसे ।
सेइ दिके कृष्णरसे स्त्री-पुरुष भासे ।।
हेन से करेन कृपादृष्टि अतिशय ।
परानन्दे देह-स्मृति का'रो ना थाकय ।।
ये भक्ति वाञ्छये योगीन्द्रादि मुनिगणे ।
नित्यानन्द-प्रसादे ताहा भुञ्जे जने जने ।।

हस्तिसम जल ना खाइले तिन दिन ।
चलित ना पारे, देह हय अति क्षीण ॥
एकमास एकशिशु ना करे आहार ।
तथापि सिंहेर प्राय सर्व्व व्यवहार ॥
हेन शक्ति प्रकाशे श्रीनित्यानन्द राय ।
तथापि ना बुझे केहो चैतन्य-मायाय ॥
एइ मत कथोदिन प्रेमानन्दरसे ।
गदाधर-दासेर मन्दिरे प्रभु वैसे ॥'

तथाहि श्रीचैतन्यचरितामृते ( आदि० १म० प० )—

**"सङ्कर्षणः कारणतोयशायी, गर्भोदशायी च पयोब्धिशायी ।
शेषश्च यस्यांशकलाः स नित्या,-नन्दाख्यरामः शरणं ममास्तु ॥'**

" सेइ वीरभद्र गोसाञिर चरण शरण ।
याँहार प्रसादे हय अभीष्ट-पूरण ॥
श्रीरामदास आर गदाधर दास ।
चैतन्य गोसाञिर भक्त, रहे ताँर पाश ॥'
नित्यानन्देरे यवे आज्ञा हैल गौड़ याइते ।
महाप्रभु ए दुइ दिलेन ताँर साथे ॥
अतएव दुइ गणे दोहार गणन ।
माधव-वासुदेव घोषेर एइ विवरण ॥
गदाधर-दास गोपीभावे पूर्णानन्द ।
याँ'र सने दानलीला कैला नित्यानन्द ॥

तथाहि तत्रैव ( आदि० १म० प० )—

**"महाविष्णुर्जगत् कर्त्ता मायया यः सृजत्यदः ।
तस्यावतार एवायमद्वैताचार्य्य ईश्वरः ॥'**

तत्रैव ( आदि० १२श० प० )

**" अच्युतानन्द—वड़ शाखा, आचार्य्य-नन्दन ।
आजन्म सेविला तिँहो चैतन्य-चरण ॥
येइ येइ भक्तगण लइल अच्युतानन्देर मत ।**

सेइ आचार्य्येर गण—महाभागवत ॥
सेइ सेइ आचार्य्येर कृपार भाजन ।
अनायासे पाइल सेइ चैतन्य चरण ॥' इत्यादि ।

एवं श्रीचैतन्यभागवते शेषखण्डे ( ४र्थ० अ० )—

" क्षणेके अच्युतानन्द अद्वैत-कुमार ।
प्रभुर चरणे आसि हैल नमस्कार ॥
अच्युतेरे कोले करि' श्रीगौरसुन्दर ।
प्रेमजले धुइलेन ताँ'र कलेवर ॥
अच्युतेरे प्रभु ना छाड़ेन वक्ष हैते ।
अच्युतो प्रविष्ट हैला चैतन्यदेहेते ॥
अच्युतेरे देखि देखि सर्वभक्तगण ।
प्रेमे सभे लागिलेन करिते क्रन्दन ।
चैतन्येर यत प्रिय पारिषदगण ।
नित्यानन्द-स्वरूपेर प्राणेर समान ।
गदाधर पण्डितेर शिष्येते प्रधान ॥
इहाँरे से वलि योग्य अद्वैतनन्दन ।
येन पिता, येन पुत्र उचित मिलन ॥'

किञ्च, यथा व्रजे पञ्चविध-सखीवर्गमुख्याभिः श्रीललिताविशाखाद्याभिः सहितया श्रीराधया सह सुखमास्वाद्यते, तथा श्रीगौरगोविन्ददेवः श्रीस्वरूप-श्रीरामानन्दराय-श्रीनरहरिसरकार--प्रभृतिभिः सह तत् सुखमास्वाद्यते। तत्तु श्रीचैतन्यचरितामृतादौ प्रसिद्धमेव। ततः केषाञ्चित् पार्षदानां पूर्वनामानि यथाश्रुताभिप्रायेण प्रकाश्यते; तद् यथा—

प्राण-प्रेष्ठ-सखी मध्ये या विशाखा पुरा व्रजे ।
साद्य स्वरूपगोस्वामी श्रीचैतन्यप्रियो वरः ॥

यथा श्रीगौरगणोद्देशे ( १६० )—

कलामशिक्षयद्राधां विशाखा या व्रजे पुरा ।
साद्य स्वरूपगोस्वामी तत्तद्भावविलासवान् ॥

तत्रैव ( १२०, १२२ )—

प्रियनर्मसखः कश्चिदर्ज्जुनो यः पुरा व्रजे ।
इदानीं समभूद्रामानन्दरायः प्रभोः प्रियः ।
ललितेत्याहुरेके तत्तदन्ये नानुमन्वते ।

तत्रैव ( १७७ )—

पुरा मधुमती प्राणसखी वृन्दावने स्थिता ।
अधुना नरहर्य्याख्यः सरकारः प्रभोः प्रियः ।।

यथा श्रीरूपकृतपद्यम्—

श्रीवृन्दावनवासिनो रसवती राधाघनश्यामयोः
रासोल्लासरसात्मिका मधुमती सिद्धानुगा या पुरा ।
सोऽयं श्रीसरकारठक्कुर इह प्रेमार्तिथः प्रेमदः
प्रेमानन्दमहोदधिर्विजयते श्रीखण्डभूखण्डके ।।

यथा श्रीकर्णपूरकृतपद्यम्—

श्रीचैतन्यमहाप्रभोरतिकृपा–माध्वीकसद्भाजनं
सान्द्रप्रेमपरम्पराकवलितं वाचि प्रफुल्लं मुदा ।
श्रीखण्डे रचितस्थितिं निरवधि श्रींखण्डचर्च्चार्चितं
वन्दे श्रीमधुमत्युपाधिवलितं कञ्चिन्महाप्रेमजम् ।।
गदाधरप्राणतुल्यो नरहरिस्तस्य सोऽद्यतः ( ? )
उभयोः प्राणनाथः श्रीकृष्णचैतन्य ईश्वरः ।।

**इदमेव रहस्यम्—**

"प्रेमामृतमयस्तोत्रैः पण्डित-श्रीगदाधरः ।
स्वरूपगुणमुत्कीर्त्य व्रजराजसुतस्य हि ।।
पत्रे विलिख्य तद्धीमान् प्रभोः पार्श्वमुपागतः ।
लज्जाभययुतं तन्तु ज्ञात्वा सर्वज्ञशेखरः ।।
तद्धस्तात् पत्रमानीय स्तवराजं विलोक्य सः ।
आश्वासयुक्तया वाण्या पण्डितं चावदत् प्रभुः ।।
त्वयि कृतो मया पूर्वं शक्तेः सञ्चार एव यत् ।
स्तवराजस्ततोऽयं ते मुखद्वारा प्रकाशितः ।

इत्युक्त्वा श्रीस्तवस्यान्ते स्वनामाप्यलिखत् प्रभुः ॥' इति ।

इति श्रीगोविन्ददेवसेवाधिपति-श्रीहरिदासगोस्वामिचरणानुजीवि-श्रीराधाकृष्णदासोदीरिता साधनदीपिका

सप्तमकक्षा

***

---

[ श्रीरघुनन्दनठक्कुरस्य—

गोपीनां कुचकुङ्कुमेन निचितं वासः किमस्यारुणं
निन्दत्काञ्चनकान्ति-रासरसिकाश्लेषेण गौरं वपुः ।
तासां गाढकराभिवन्धनवशाल्लोमोद्गमो दृश्यते
आश्चर्य्यं सखि पश्य लम्पटगुरोः सन्न्यासवेषं क्षितौ ॥

तथाहि वायुपुराणे—

"पुरा योषिद्गणः सर्वं इदानीं पुरुषोऽभवत् ।
इति यस्मात् कलौ विष्णुस्तदर्थे पुरुषं गतः ॥" ]

---

*****

## ❀ अष्टमकक्षा ❀

******

श्रीश्रीराधाकृष्णाभ्यां नमः

****

श्रीमद्रूप-पदाम्भोजद्वन्द्वं वन्दे मुहुर्मुहुः ।
यस्य प्रसादादज्ञोऽपि तन्मतज्ञानभाग् भवेत् ॥१॥
यस्तु श्रीकृष्णचैतन्यस्याज्ञया स्वगृहं हरेः ।
त्यक्त्वा स्वर्गोपमं सद्म, प्रयोगे तं ददर्श ह ।२।
तं दृष्ट्वा परमप्रीतः श्रीशचीनन्दनो हरिः ।
स्नेहात्तं शिक्षयामास भक्तिसिद्धान्तमाधुरीम् ।३।
कृष्णतत्त्वं भक्तितत्त्वं रसतत्त्वं पृथक् पृथक् ।
सञ्चार्य्य शक्तिं स्वां तस्मिन् कृपया करूणानिधिः ।४।
पुनस्तं कथयामास गच्छ त्वं वृन्दिकावनम् ।

सेवां प्राकाशयस्तत्र श्रीगोविन्दस्य मोहिनीम् ।५।
स्वयंभगवतस्तस्य मौनमुद्राधरस्य तु ।
दर्शनादेर्जनादीनां प्रेमभक्तिर्भविष्यति ।६।
लुप्ततीर्थप्रकटनं भक्तिशास्त्रस्य तत्तथा ।
अकिञ्चनानां भक्तानां पालनं सर्वथापि च ।७।
महाप्रभोर्वचः श्रुत्वा श्रीरूपो विरहातुरः ।
पतित्वा दण्डवद्भुमौ ननाम च पुनः पुनः ।८।
प्रभोराज्ञापालनार्थं गत्वा वृन्दावनान्तरे ।
प्रभोराज्ञापालनार्थं गत्वा वृन्दावनान्तरे ।
न दृष्ट्वा श्रीवपुस्तत्र चिन्तितः स्वान्तरे सुधीः ।९।
व्रजवासिजनानान्तु गृहेषु च वने वने ।
ग्रामे ग्रामे न दृष्ट्वा तु रोदितश्चिन्तितो बुधः ।१०।
एकदा वसतस्तस्य यमुनायास्तटे शुचौ ।
व्रजवासिजनाकारः सुन्दर कश्चिदागतः ।११।
तं दृष्ट्वा कथितं तेन हे यते दुःखितो नु किम् ?
तच्छ्रुत्वा वचनं तस्य स्नेहकर्षितमानसः ।१२।
प्रेमगम्भीरया वाचा दूरीकृतमनःक्लमः
कथयामास तं सर्वं निदेशं श्रीमहाप्रभोः ।१३।
स श्रुत्वा सर्ववृत्तान्तमागच्छेति ध्रुवम्मुम् ।
गुमाटिला इति ख्याते तत्र नीत्वाब्रवीत् पुनः ।१४।
अत्र काचिद्गवां श्रेष्ठा पूर्वाह्ने समुपागता ।
दुग्धश्रावं विकुर्वाणाप्यहन्यहनि याति भोः ।१५।
स्वमनसि विमृश्यैतदुचितं कुरु याम्यहम् ।
श्रीरूपस्तद्वचः श्रुत्वा रूपं दृष्ट्वा च मूर्च्छितः ।१६।
पुनः क्षणान्तरे धीरः धैर्य्यं धृत्वोपचिन्तयन् ।
ज्ञातसर्व्वरहस्योऽपि लोकानुकृतचेष्टितः ।।१७।।
व्रजवासिजनानाह श्रीगोविन्दोऽत्र विद्यते ।
एतच्छ्रुत्वा तु ते सर्वे प्रेमसम्भिन्नचेतसः ।१८।

मिलित्वा बालवृद्धैश्च तां भूमिं समशोधयत् ।
योगपीठस्य मध्यस्थं पश्यन् तं कृष्णमीश्वरम् ।१९।
साक्षाद्व्रजेन्द्रतनयं कोटिमन्मथमोहनम् ।
रुरुधुस्तां धरां यत्नाद्रामस्याज्ञानुसारतः ।२०।
ब्रह्मकुण्ठतटोपान्ताद्वृन्दादेवी प्रकाशिता ।
प्रभोराज्ञाबलेनापि श्रीरूपेण कृपाब्धिना ।
गुरौ मे हरिदासाख्ये श्रीश्रीसेवा समर्पिता ।२१।

तथाहि श्रीचैतन्यचरितामृते ( आदि० ८म० प० )—

"पण्डित-गोसाञिर शिष्य अनन्त-आचार्य्य ।
कृष्णप्रेममयतनु उदार महा-आर्य्य ।।
ताँहार अनन्त गुण के करु प्रकाश ?
ताँहार प्रिय शिष्य पण्डित हरिदास ।।'

तत्रैव ( आदि० ८म० प० )

" सेवार अध्यक्ष श्रीपण्डित हरिदास ।
याँ'र यश, गुण सर्वजगते प्रकाश ।।

तत्रैव हि ( मध्य० २य० प० )—

''पाञा याँ'र आज्ञाधन, व्रजेर वैष्णवगण,
वन्दो ताँ'र मुख्य हरिदास ।''

श्रीमद्रूप-पदद्वन्द्वे हृदि मे स्फुरतां सदा ।
रागानुगाधिकारी स्याद्यत्कृपालव-मात्रतः ।।
श्रीरूपमञ्जरी कुर्य्यादतुलां करुणां मयि ।
वृषभानुसुता-पादपद्मप्राप्तिर्यया भवेत् ।।
स्वरूपो हरिदासश्च रूपाद्यो रघुनाथकः ।
रूपः सनातनः श्रीमान् जन्मजन्मनि मे गतिः ।।

तत्र अखिल-भगवद्धामसु मुख्यतम-ब्रह्मादिवन्द्य-लक्ष्म्याद्यप्राप्य-श्रुत्याद्यन्वेषणीय-श्रीमद्राधागोविन्दचरणैकनिलय-श्रीमद्व्रजमण्डलाचार्य्यः श्रीरूप एव श्रीराधिकायाः प्रियनर्मसखीवर्गेषु श्रीरूप-रति-मञ्जर्य्यादिषु मुख्या श्रीरूपमञ्जरी । अस्या एवानुगत्ये 'श्रीराधा

प्राण-वन्धोश्चरण-कमलयोः केशशेषाद्यगम्या' (श्रीगोविन्दलीला-मृतम् १।३ इति या प्रेमसेवा, सैव स्यात् । अत्र प्रमाणानि-श्रीरघुनाथ-दास-गोस्वामि-पादानां मनःशिक्षायाम् (१२)—

'मनः शिक्षादैकादशक-वरमेतन्मधुरया
गिरा गायत्युच्चैः समधिगतसर्वार्थतति यः ।
सयूथ-श्रीरूपानुग इह भवन् गोकुलवने
जनो राधाकृष्णातुल-भजनरत्नं स लभते ।।' इति;

श्रीवैष्णवतोषण्याम् (१०।१)—

'श्रीमच्चैतन्यरूपस्य प्रीत्यै गुणवतोऽखिलम् ।
भूयादिदं यदादेशवलेनैव विलिख्यते ।।'

श्रीमद्‌वृहद्‌भागवतामृते (१।१।११)—

'भगवद्‌भक्तिशास्त्राणामहं सारस्य संग्रहः ।
अनुभूतस्य चैतन्यदेवे तत्प्रियरूपतः ।।'

तत्रैव पूर्वखण्डे (टीका० १।१।१)—

'नमश्चैतन्यदेवाय स्वनामामृतसेविने ।
यद्‌रूपाश्रयणाद्‌यस्य भेजे भक्तिमयं जनः ।।' इत्यादि ।

तत्रैव टीकायां शेषे—

'स्वयं प्रवर्त्तितैः कृत्स्नैर्मम्मैतल्लिखनश्रमैः ।
श्रीमच्चैतन्यरूपोऽसौ भगवान् प्रीयतां सदा ।।'

अस्य टीका—श्रीमान् चैतन्यश्चैतन्यसंज्ञया प्रसिद्धः श्रीशची-नन्दनस्तत्स्वरूपस्तन्मूर्त्तिर्वा भगवान् श्रीकृष्णदेवः, पक्षे श्रीमान् चैतन्यस्य तस्यैव प्रियसेवको रूपस्तत्संज्ञको वैष्णववरः । ततश्च 'भगवान्' इति—

'आयतिं नियतिञ्चैव भूतानामागतिं गतिम् ।
वेत्ति विद्यामविद्याञ्च स वाचो भगवानिति ।।' इत्यभिः प्रायेणेति दिक् ।

यथा भ्रातृ-सम्वन्धत्वे श्रीकृष्णलीलायां कृष्ण-वलदेवौ च गौरलीलायां चैतन्य-नित्यानन्दौ च विराजतः तत्तत् परिकरत्वे तत्त-

दनुसारेण रूप-सनातनौ प्रसिद्धावेव। यद्यपि तेषां मध्ये भेदः कोऽपि नास्ति, तथापि लीलाशक्त्यनुसारेण श्रीकृष्णचैतन्यरूप-पादानां मुख्यं मतमिदं ज्ञेयम्।

तथाहि श्रीचैतन्यचरितामृते (मध्य० १म० प०) श्रीमहाप्रभोराज्ञा—

"आजि हइते नाम दुँहार रूप-सनातन।
दैन्य छाड़ि, तोमार दैन्ये फाटे मोर मन॥'

श्रीसन्दर्भाद्ये—

'तौ सन्तोषयता सन्तौ श्रीलरूप-सनातनौ।
दाक्षिणात्येन भट्टेन पुनरेतद्विविच्यते॥'

श्रीदासगोस्वामिनः स्वनियमदशके (१)—

'गुरौ मन्त्रे नाम्नि प्रभुवर-शचीगर्भजपदे
स्वरूपे श्रीरूपे गणयुजि तदीयप्रथमजे' इत्यादि;

तथाहि श्रीसन्दर्भशेषे—श्रीश्रीभगवत् कृष्णचैतन्यदेवचरणानुचरविश्ववैष्णवसभा-सभाजन-श्रीरूप-सनातनेत्यादि।

तत्र श्रीकृष्णदास-कविराज-महानुभवानाम्—

हा राधे! क्व नु कृष्ण! क्व ललिते! क्व त्वं विशाखेऽसि, हा हा चैतन्यमहाप्रभो क्व नु भवान् हा श्रीस्वरूप क्व वा हा श्रीरूप-सनातनेत्यनुदिनमित्यादि।

तत्र (चै० च० मध्ये० १९श० प० )—

"शिवानन्द सेनेर पुत्र कवि-कर्णपूर।
दुँहार मिलन ग्रन्थे लिखियाछेन प्रचुर॥'

तस्य चैतन्यचन्द्रोदय-नाटके द्वयोमिलनं यथा (९म० अ० ३७)—

'कालेन वृन्दावनकेलिवार्त्ता
लुप्तेति तां ख्यापयितुं विशिष्य।
कृपामृतेनाभिषिषेच देव
स्तत्रैव रूपञ्च सनातनञ्च॥

तत्रैव श्रीरूपे विशेषो यथा ( ६।२८ )—

'यः प्रागेव प्रियगुणगणैर्गाढ़वद्धोऽपि मुक्तो
गेहाध्यासाद्रस इव परो मूर्त्त एवाप्यमूर्त्तः ।
प्रेमालापैर्दृढ़तरपरिष्वङ्गरङ्गैः प्रयागे
तं श्रीरूपं-सममनुपमेनानुजग्राह देवः ॥'

तत्रैव शक्तिसञ्चारो यथा (६।२९)—

प्रियस्वरूपे दयितस्वरूपे प्रेमस्वरूपे सहजाभिरूपे ।
निजानुरूपे प्रभुरेकरूपे ततान रूपे स्वविलासरूपे ॥

तथाहि चैतन्यचरितामृते च ( म० १९श० प० )—

'लोकभिड़-भये गोसाञि दशाश्वमेध यात्रा ।
रूपगोसाञिके शिक्षा करान शक्ति सञ्चारिया ॥
कृष्णतत्त्व, भक्तितत्त्व, रसतत्त्व-प्रान्त ।
सव शिखइला प्रभु भागवत-सिद्धान्त ॥'

पुनस्तत्रैव मध्यलीलानुवादकथने ( २५श० प० )—

" ता'र मध्ये श्रीरूपेर शक्तिसञ्चारण ।
विंशतिपरिच्छेदे सनातनेर मिलन ॥'"

तत्रैव श्रीलरूपपादकृतश्लोकः—

प्रियः सोऽयं कृष्णः सहचरि कुरुक्षेत्र-मिलित-
स्तथाहं सा राधा तदिदमुभयोः सङ्गमसुखम् ।
तथाप्यन्तःखेलन्मधुरमुरलीपञ्चमजुषे
मनो मे कालिन्दी-पुलिनविपिनाय स्पृहयति ॥
' गूढ़ मोर हृदय तुमि जानिला केमने ?'
एत वुलि' रूपे कैला प्रेमालिङ्गने ॥
सेइ श्लोक प्रभु लइया स्वरूपे देखाइला ।
रूपेर परीक्षा लागि' ताहारे पुछिला ॥
'मोर अन्तर-वार्त्ता रूप जानिल केमने ?'
स्वरूप कहे,—'तुमि कृपा करियाछ आपने ॥

अन्यथा ए अर्थ का'रो नाहि हय ज्ञान ।
तुमि पूर्वे कृपा करियाछ, करि अनुमाने ॥'
प्रभु कहे,—'मोहे इहों प्रयागे मिलिला ।
योग्यपात्र जानि' इहाँय मोर कृपा हैला ॥
तवे शक्ति सञ्चारिया कैलुँ उपदेश ।
तुमिह कहिय इहार रसेर विशेष ॥'
स्वरूप—कहे,—'यवे एइ श्लोक देखिल ।
तुमि कृपा करियाछ तवहिँ जानिल ॥' इत्यादि ।

श्रीमज्जीवगोस्वामिचरणैः ( श्रीमाधवमहोत्सवे २।१०६ )

'निखिलजनकुपूयं मां कृपापूर्ण-चेता
निजचरणसरोजप्रान्तदेशं निनीय ।
निजभजनपदव्यैर्वर्त्तयेद्भूरिशो य-
स्तमिह महितरूपं कृष्णरूपं निषेवे ॥'

श्रीवैष्णवतोषण्याम् ( १०।१६।१६ )

'गोपीनां परमानन्द आसीद्गोविन्ददर्शने' इति टीकायाम्—भाव-प्रेमस्नेहप्रणयमानरागानुराग-महाभावाख्यतया सप्तमकक्षामारूढ़ाया रतेः प्रपाकः श्रीमदनुजवरैर्विरचितोज्ज्वलनीलमणावलोकनीयः । ( तत्रैव ( भा० १०।३३।१६ ) 'कृत्वा तावन्तमात्मानं यावतीर्गोपयाषितः' इति टीकायाम्—'एतच्च श्रीललितमाधवादौ मदनुजवरैः स्पष्टं लिखितम्; टिप्पनी च—योऽसौ करजन्मतोऽनुजः, परमार्थतो वरः; तथाहि मनुः,—

'जन्मदः ब्रह्मदाता च गरीयान् ब्रह्मदः पिता' इति;

रुद्रयामले च—

'जन्मदश्च गुरुः प्रोक्तो ब्रह्मदः परमो गुरुः ।
परात् परगुरुस्तस्मात् परमेष्ठी ततः परम् ॥' इत्यादि ।

श्रीहरिभक्तिविलासे ( १।२ )—

'भक्तेर्विलासांश्चिनुते प्रबोधा,—नन्दस्य शिष्यो भगवत् प्रियस्य ।
गोपालभट्टो रघुनाथदासं, सन्तोषयन् रूप-सनातनौ च ॥'

प्रामाणिकैरप्युक्तम्—

न राधां न च कृष्णं वा न गौराङ्गमहं भजे।
श्रीमद्रूप-पदाम्भोजे धूलिर्भूयां भवे भवे॥

ये केचिद्वृषभानुजा-चरणयोः सेवापराः सज्जनाः
श्रीनन्दात्मज-सेवनेऽतिरसिकाश्चैतन्यपादाश्रिताः।
ते रूपानुगतिं सदा विदधतस्तिष्ठन्ति वृन्दावने
श्रीगोपाल-सनातन-प्रभृतयो हृष्यन्ति चास्याज्ञया॥

संस्कार-पञ्चकैर्युक्तोऽन्यदेवान्न पूजयेत्।
ज्ञानकर्मादि-रहितः स हि रूपानुगः सुधीः॥

गायत्रीमन्त्रो राधाया मन्त्रः कृष्णस्य तत्परम्।
महाप्रभोर्मन्त्रवरो हरिनाम तथैव च॥
मानसी वरसेवा च पञ्चसंस्कार-संज्ञकः॥*

गोपालभट्टो रघुनाथदासः, श्रीलोकनाथो रघुनाथभट्टः।
रूपानुगास्ते वृषभानुपुत्री,-सेवापराः श्रीलसनातनाद्याः॥

किञ्च,—

श्रीसनातनपादाब्जद्वन्द्वं वन्दे मुहुर्मुहुः।
यत् प्रसादलवेनापि कृष्णे भक्तिरसो भवेत्॥

श्रीउज्ज्वलनीलमणौ च (१।१)

नामाकृष्टरसज्ञः, शीलेनोद्दीपयन् सदानन्दम्।
निजरूपोत्सवदायी, सनातनात्मा प्रभुर्जयति॥

तत्र भक्तिरसामृतसिन्धौ (१।३)—

विश्राममन्दिरतया, तस्य सनातनतनोर्म्मदीशस्य।
भक्तिरसामृतसिन्धु,-र्भवतु सदायं प्रमोदाय॥

अन्यत्र—

'गोविन्दपादसर्व्वस्वं वन्दे गोपालभट्टकम्।
श्रीमद्रूपाज्ञया येन पृथक् सेवा प्रकाशिता॥
श्रीराधारमणो देवः सेवाया विषयो मतः।
कृतिना श्रीलरूपेण सोऽयं योऽसौ विनिर्मितः॥

आज्ञाया: कारणं प्रामाणिक-मुखाच्छ्रुतम्; तत्तु प्रसिद्धमेव ।

श्रीमत्प्रबोधानन्दस्य भ्रातुष्पुत्रं कृपालयम् ।
श्रीमद्गोपालभट्टं तं नौमि श्रीव्रजवासिनम् ।।
श्रीरूपचरणद्वन्द्वरागिनं व्रजवासिनम् ।
श्रीजीवं सततं वन्दे मन्देष्वानन्ददायिनम् ।।
राधादामोदरो देव: श्रीरूप-करनिर्मित: ।
जीवगोस्वामिने दत्त: श्रीरूपेण कृपाब्धिना ।।
श्रीमद्भूगर्भगोस्वामिपादा इह जयन्ति हि ।
लोकनाथेन स्वभ्रातुष्पुत्रेण व्रजमण्डले ।।
श्रीमद्रूपप्रियं श्रीलरघुनाथाख्य-भट्टकम् ।
येन वंशी-कुण्डलश्च श्रीगोविन्दे समर्पितम् ।।

[ एतत् श्रीचैतन्यचरितामृते ( अन्त्य: १३श० प० ) वर्णितमस्ति । ]

" रूपाद्वैत-तनुं वन्दे दासगोस्वामिनं वरम् ।
यत् प्राणार्व्वुद-सर्व्वस्वं श्रीगोविन्द-पदद्वयम् ।।

तथा—

वन्दे श्रीपरमानन्दं भट्टाचार्य्यं रसाश्रयम् ।
रामभद्रं तथा वाणीविलासञ्चोपदेशकम् ।।
वृन्दावन-प्रियान् वन्दे श्रीगोविन्दपदाश्रितान् ।
श्रीमत्काशीश्वरं लोकनाथं श्रीकृष्णदासकम् ।"

इति ( १०।१ ) श्रीवैष्णवतोषण्याम् ।

श्रीचैतन्य-प्रियतम: श्रीमद्राधागदाधर: ।
तत्परिवाररूपस्य श्रीगोविन्दप्रसेवनम् ।।
तयो: सत्प्रेमसत्पात्रं श्रीरूप: करुणाम्बुधि: ।
तत्पाद-कमलद्वन्द्वे रतिर्मे स्याद्व्रजे सदा ।।
श्रीमद्गौरीदासनामा पण्डित: पार्षदो हरे: ।
चैतन्यस्य प्रणयवान् पण्डिते श्रीगदाधरे ।।
अत: श्रीहृदयानन्दचैतन्यं तस्य सेवकम् ।

याचित्वा तु स्वयं निन्ये तत्सौहार्द्दं प्रकाशयन् ॥
स्वस्य सेवाधिकारं तं दत्तवान् करुणाम्बुधिः ।
यं श्रीमद् गौरीदासं श्रीसुवलं प्रवदन्ति हि ॥

श्रीकर्णपूरगोस्वामिनाम् ( आर्य्याशतके )—

श्रवसोः कुवलयमक्ष्णो,–रञ्जनमुरसो महेन्द्रमणिदाम ।
वृन्दावनरमणीना,–मखिलमण्डनं हरिर्जयति ॥

श्रीमुक्ताचरिते ( अन्ते —

यस्य सङ्गवलतोद्धृता मया, मौक्तिकोत्तमकथाः प्रचारिताः ।
तस्य कृष्णकविभूपतेर्व्रजे, सङ्गतिर्मे भवतु भवे भवे ॥

श्रीकर्णपूरगोस्वामिनाम्—

‘ इह विलसति राधाकृष्णकुण्डाधिकारी’ इत्यादि ।
श्रीप्रेमिकृष्णदासाख्यमनन्त परमं गुरुम् ।
यत्कृपालव-मात्रेण श्रीगोविन्दे मतिर्भवेत् ॥
प्रभोराज्ञावलेनापि श्रीरूपेण कृपाब्धिना ।
गुरौ मे हरिदासाख्ये श्रीश्रीसेवा समर्पिता ॥
यत् सेवाया वशः श्रीमद् गोविन्दो नन्दनन्दनः ।
पयसा संयुतं भक्त याचते करुणाम्बुधिः ॥

‘किञ्चास्मिन् कदाचिद् वसन्तवासरावसरे रात्रौ रासमण्डले भ्रमति सति सञ्चारिण्याः श्रीवृषभानुसुताया आश्चर्य्यरूपं दृष्ट्वा तमालस्य मूले मूच्छितवानिति प्रसिद्धिः ।

तस्यैव कान्तापरिचारकोऽसौ
तयोश्च दासः किल कोऽपि नाम्ना ।
स्वकीयलोकस्य तदीयदास्ये
मतिप्रवेशाय करोति यत्नम् ॥

श्रीमान् प्रेतापी गोविन्दपादभक्तिपरायणः ।
भक्तश्चैतन्यपादाब्जे मानसिंहो नराधिपः ॥
प्रतापरुद्रस्त्वैश्वर्य्यसेवालग्नमना हरेः ।
अयं माधुर्य्यसेवायां लोभाक्रान्तमना नृपः ।

महामन्दिरनिर्माणं कारितं येन यत्नतः ।
अद्यापि नृप-तद्वंश्याः प्रभुभक्तिपरायणाः ॥

श्रीरघुनाथगोस्वामिपादानां ( प्रार्थनामृते )—

श्रीरूपरतिमञ्जर्य्योरङ्घ्रिसेवैकगृध्नुना ।
असंख्येनापि जनुषा व्रजे वासोऽस्तु मेऽनिशम् ॥

किञ्च, श्रीकर्णपूरगोस्वामिनोक्त-गौरगणोद्देशानुसारेण केषाञ्चित् पूर्व्वनामानि लिख्यन्ते—

श्रीरूपमञ्जरी ख्याता ह्यासीद्वृन्दावने पुरा ।
साद्य श्रीरूपगोस्वामी भूत्वा प्रकटतामियात् ॥
या रूपमञ्जरी प्रेष्ठा पुरासीद्रतिमञ्जरी ।
साद्य गौराभिन्नतनुः सर्वाराध्यः सनातनः ॥
तं श्रीलवङ्गमञ्जरीत्यब्रवीत् कश्चन पण्डितः ।
अनङ्गमञ्जरी यासीन् साद्य गोपालभट्टकः ॥
भट्टगोस्वामिनः केचिदाहुः श्रीगुणमञ्जरीम् ॥
रघुनाथाख्यको भट्टः पुरा या रागमञ्जरी ।
कृत-श्रीराधिकाकुण्ड-कुटीरवसतेः प्रभोः ।
दास श्रीरघुनाथस्य पूर्वाख्या रसमञ्जरी ॥
भूगर्भठक्कुरस्यासीत् पूर्वाख्या प्रेममञ्जरी ।
लोकनाथाख्यगोस्वामी श्रीलीलामञ्जरी स्फुटम् ॥
शिवानन्दचक्रवर्त्ती लवङ्गमञ्जरी पुरा ॥

( श्रीराधाकृष्णगणोद्देशे )—

कलावती रसोल्लासा गुणतुङ्गा व्रजस्थिताः ।
श्रीविशाखाकृतं गीतं गायन्ति स्माद्यता मताः ।
गोविन्द-माधवानन्द-वासुदेवा यथाक्रमम् ॥
रागलेखा-कलाकेलौ राधादास्यौ पुरा स्थिते ।

एताः खलु पूर्वापरदेहैरभिन्नाः श्रीवृषभानुजायाः प्रियनर्मसख्योऽपि पादमर्द्दनपयोदानाभिसारादिकं परिचारिका इव कुर्व्वन्ति यथा स्तवावल्याम् ( श्रीव्रजविलासस्तवे ) ।

स्वाभिलषितपरिचरणविशेषलाभाय रङ्गणवल्लीरङ्गणमाला-प्रभृतयः; एताः परमप्रणयिसख्योऽपि परिचारिका इव व्यवहरन्ति ।
श्रीगोविन्दलीलामृते च ( १।८६ )

तल्पप्रान्तादुपादाय कञ्चुलीं रूपमञ्जरी ।
प्रियनर्म्मसखी सख्यैं निर्गत्य निभृतं ददौ ॥

यत्तु श्रीगणोद्देशदीपिकादौ दासीत्वेनोक्तमस्ति, तत्तु स्वयं ग्रन्थ-कृतत्वाद्दैन्येनोक्तिः स्मरणमङ्गलदशश्लोकीवैष्णवरङ्गभाष्ये धृता। श्रीगोविन्दलीलामृते वर्णनं यथा ( ३२।८६-६१ )

श्रीरूपरतिमञ्जर्य्योः पादसम्वाहनं तयोः ।
चक्रतुश्चापरा धन्या व्यजनैस्तावबीजयन् ॥
क्षणं तौ परिचर्य्येत्थं निर्गताः केलिमन्दिरात् ।
सख्यस्ताः सुषुपुः स्वे स्वे कल्पवृक्षलतालये ॥
श्रीरूपमञ्जरीमुख्याः सेवापर-सखीजनाः ।
तल्लीलामन्दिरवहिः कुट्टिमे शिशिरे सुखम् ॥

किञ्च,— श्रीराधाप्राणतुल्या प्रियसहचरी मञ्जरी रूपपूर्वा
तस्याः प्राणाधिक-प्रियतया विश्रुतानङ्गपूर्व्वा ।
विख्याता या किल हरिप्रिया तत्पादाब्जानुगात्वे
तत्पादाब्जे स्पृहयतितरां मञ्जरी रासपूर्वा ॥
श्रीरूपमञ्जरी तस्या अनुगानङ्गमञ्जरी ।
हरिप्रिया च ताः सन्तु रासमञ्जरिका हृदि ॥

## अथ श्रीरूपमञ्जर्य्यष्टकम्

**ऐशवुद्धिवासितात्मलोकवृन्ददुर्ल्लभा**
**व्यक्तरागवर्त्मरत्नदान-विज्ञवल्लभा ।**
**सप्रियालि-गोष्ठपालि-केलिकोरपञ्जरी**
**मामुरीकरोतु नित्यवेह रूपमञ्जरी ।१।**
**भक्तिहीन-मानुषेषु सानुकम्प-चिन्तया**
**शश्वदुन्नचित्तता-निसर्गविस्फुरद्दया ।**

गोष्ठचन्द्र-चेष्टितामृतावगालि-निर्झरी
मामुरीकरोतु नित्यदेह रूपमञ्जरी ।२।

शीलसीधुसिक्त-वार्षभानवीसखीगणा
नित्यतत्तदानुकूल्यकृत्य उच्छलन्मना: ।
मादृशीषु मूढ़धीषु सर्व्वत: शुभङ्करी
मामुरीकरोतु नित्यदेह रूपमञ्जरी ।३।

गौरचन्द्र-शासनादुपेत्य वृन्दिकावनं
रागमार्गपान्थसाधुमण्डलं कृजीवनम् ।
विश्ववर्त्ति-भक्तकामपूर्त्ति-कल्पवल्लरी
मामुरीकरोतु नित्यदेह रूपमञ्जरी ।४।

धीरता-गभीरतादि-सद्गुणैकसत्खनि:
स्वानुराग:-रञ्जित-व्रजेन्द्रसूनु-हृन्मणि: ।
राधिका-गिरीन्द्रधारि-नित्यदासिकाचरी
मामुरीकरोतु नित्यदेह रूपमञ्जरी ।५।

स्वाङ्घ्रिपङ्कजाशयात्र ये वसन्ति सज्जना-
स्तन्निजेष्टदान-कामनित्यविह्वलन्मना: ।
स्वासुतुल्यता-प्रतीत-सर्व्वगोपसुन्दरी
मामुरीकरोतु नित्यदेह रूपमञ्जरी ।६।

प्रौढ़भाव-भावितान्तरुद्भ्रमालि-कम्पिता
सर्वदा तथापि लोकरीतिमेत्यलज्जिता ।
कुन्दवृन्दनिन्दि-कृष्णकीर्त्तिवाद्य-झल्लरी
मामुरीकरोतु नित्यदेह रूपमञ्जरी ।७।

सर्वगुह्यरम्यकेलिरूरणादि-सम्पदा
तुष्टसख्यवर्वरि *-गोपिकाभिरात्त-सम्मदा ।
ताभिरिष्ट-कृष्णसङ्गनृत्यरङ्ग-चर्च्चरी
मामुरीकरोतु नित्यदेह रूपमञ्जरी ।८।

रूपमञ्जरी-गुणं कलेशमात्र-सूचकं
यः पठेदिदं निजार्थसारवित् सदष्टकम् ।
सप्रियेण राधिकासुवल्लभेन तुष्यता
दीयतेऽत्र स्वाङ्घ्रिपद्मसेवनेऽस्य योग्यता ।९।

किञ्च,—

...द्वहिष्कृता ये च श्रीरूपस्य कृपाम्बुधेः ।
तेषु सङ्गो न कर्त्तव्यो रागाध्वपथिकैः खलु ॥
तेषामन्नं फलं मूलमन्यदानादिकञ्च यत् ।
नाशितव्यं न पातव्यं प्राणैः कण्ठगतैरपि ।
निष्ठाभावात् स्वाधिकारे इतरेऽपि च केवलात्
येषां कापि गतिर्नास्ति श्रीभागवत-सत्पथे ॥

रूपेति नाम वद भो रसने सदा त्वं
रूपञ्च संस्मर मनः करुणा-स्वरूपम् ।
रूपं नमस्कुरु शिरः सदयावलोकं
तस्याद्वितीय-सुतनुं रघुनाथदासम् ॥

यदि जन्म ह्यनेकं स्यात् श्रीरूप-चरणाशया ।
तच्च स्वीकृतमस्माभिर्नान्यत् शीघ्रमिहापि च ॥
श्रीरूपानङ्गमञ्जर्य्योः कृपापुर्णा हरिप्रिया ।
समानन्यगतेः स्वान्ते कृपया स्फुरतां सदा ॥

इति श्रीगोविन्ददेव-सेवाधिपति-श्रीहरिदासगोस्वामिचरणानुजीवि-
राधाकृष्णदासोदीरिता साधनदीपिका

अष्टमकक्षा
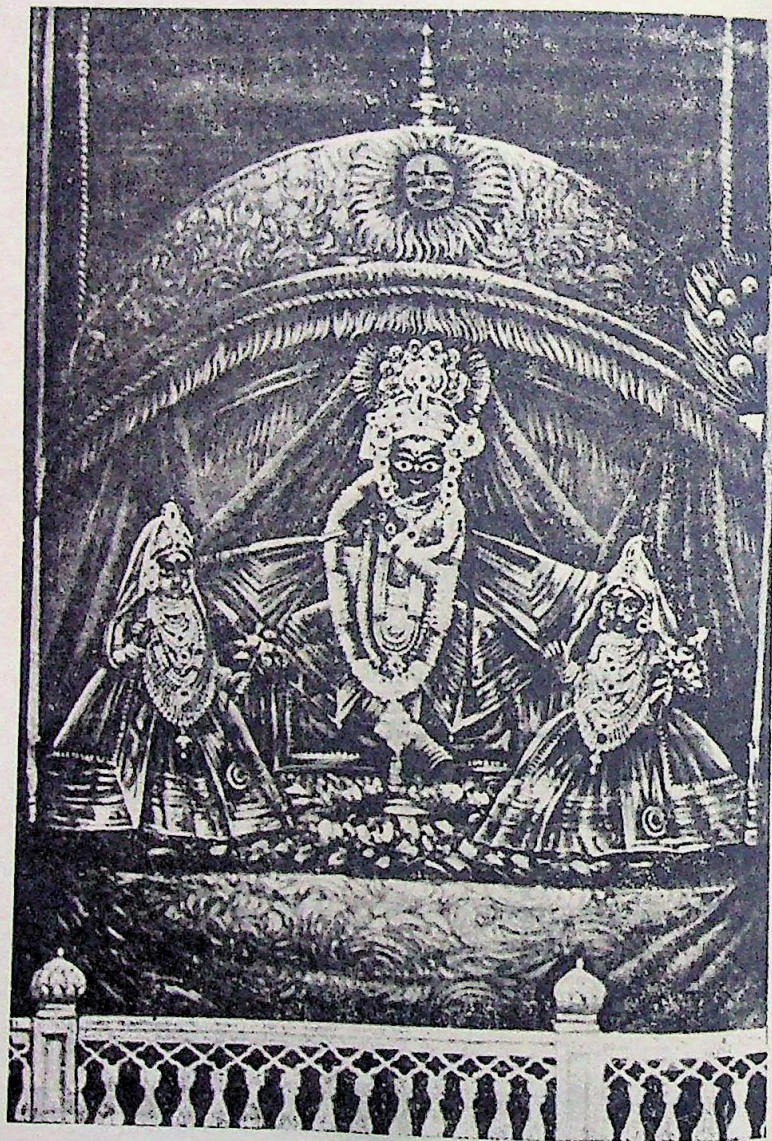
श्रीश्रीराधामदनमोहन देव जी

❁❁ श्रीश्रीगौरगदाधरौ विजयेताम् ❁❁

## ❁❁ श्री साधनदीपिका ❁❁

### ❁ नवमकक्षा ❁

अथ मुख्यं तत्त्वं निरूप्यते; श्रीभागवते ( १।२।११ )-

वदन्ति तत्तत्त्वविदस्तत्त्वं यज्ज्ञानमद्वयम् ।
ब्रह्मेति परमात्मेति भगवानिति शब्दयते ।१।

अत्र तत्तत्त्वत्रयेषु भगवानेव मुख्यः । भगवान् स्वयं भगवान्, स तु श्रीकृष्णो व्रजेन्द्रनन्दनो गोविन्द एव; तत्र प्रमाणं (ब्र०स०५।१)-

ईश्वरः परमः कृष्णः सच्चिदानन्दविग्रहः ।
अनादिरादिर्गोविन्दः सर्व्वकारणकारणम् ।२।

यत्तु ब्रह्म, तदस्यैव प्रभारूपम्; यथा ( ब्र० सं ५।५० )-

यस्य प्रभा प्रभवतो जगदण्डकोटि-
कोटिष्वशेषवसुधादि-विभूतिभिन्नम् ।
तद्ब्रह्म निष्कलमनन्तमशेषभूतं
गोविन्दमादिपुरुषं तमहं भजामि ।३।

### ❁ नवम कक्षा ❁

१ ) अनन्तर मुख्यतत्त्व का निरूपण करते हैं, श्रीभागवत में १।२।११ तत्त्वविद्गण एक अद्वय ज्ञान को ही तत्त्व कहते हैं, और उसको ब्रह्म परमात्मा एवं भगवान् यह तीन शब्दों से कहते हैं।

२) उक्त तत्त्व तीन तत्त्वों में मुख्य तत्त्व भगवान् ही है, भगवान् शब्द से स्वयं भगवान को जानना होगा, वह श्रीकृष्ण है, जिन को व्रजेन्दनन्दन गोबिन्द नाम से ही कहते हैं। उस में प्रमाण ब्रह्म सं—५।१ सच्चिदानन्द विग्रह कृष्ण परम ईश्वर हैं, वह अनादि आदि गोविन्द एवं सर्व कारण कारण हैं,। ३) जो ब्रह्म हैं, वह भी उनकी प्रभारूप ही है; ब्र० सं० ५।४०) जिस ज्योतिर्म्मय की प्रभा ही

तत्र भगवद्गीता (१४।२१) 'ब्रह्मणो हि प्रतिष्ठाहम्' इत्यादि

४ यश्च परमात्मा, स तु अस्य भगवतोऽंशांशरूपः; यथा द्वितीये ( श्रीभा० २।२।८)–

केचित् स्वदेहान्तर्हृदयावकाशे
प्रादेशमात्रं पुरुषं वसन्तम् ।
चतुर्भुजं कञ्जरथाङ्गशङ्ख-
गदाधरं धारणया स्मरन्ति ।।

५ कृष्ण-ब्रह्मणोरैक्यम् )भ० र० सि० १ २।२१८ ) किरणार्कोपमाजुषोः' इत्यादेः; अतस्तत्तत्त्व-त्रयेषु परम-तत्त्वरूपस्य स्वयं-भगवतो मुख्यत्वं दृश्यते । तस्माद् योगत्रयेषु भक्तियोग एव मुख्यः, स तु ( भ० र० सि० १।१।११ 'अन्याभिलाषिताशून्यम्' इत्यादौ उत्तमत्वेन गृहीतः; यथा श्रीभागवते ( ११।११।४८)—

६ 'प्रायेण भक्तियोगेन सत्सङ्गेन विनोद्धव ।
नोपायो विद्यते सम्यक् प्रायणं हि सतामहम् ।।' इत्यादेः ।
( भ० र० सि० १।२।१,५ )—

अनन्त कोटि ब्रह्माण्डादि में पृथक् पृथक् रूप में प्रति भात होती है, उसको ब्रह्म, निष्कल अनन्त शब्द से कहते हैं, उस आदि पुरुष गोविन्द का मैं भजन करूँ। भगवत् गीता में १४।२७। उक्त हैं, मैं ब्रह्म की प्रतिष्ठा हूँ। ४) जो परमात्मा है, वह भी उन भगवान् के अंश के अंश रूप हैं, भा० २।२।८ में उक्त है, हृदय में निवास शील चतुर्भुज शङ्ख चक्र गदा पद्म धारी पुरुष का स्मरण कुछ व्यक्ति एकाग्र मन से करते हैं। ५) कृष्ण एवं ब्रह्म में ऐक्य है, उसको सूर्य किरण एवं सूर्य के समान जानना होगा। भ० र० सि० १।२।२७८। अतएव तत्त्वत्रय में परम तत्त्व श्रीभगवान् ही हैं, अतएव योगत्रय में भक्ति योग ही मुख्य है, वह भक्तियोग भ० र० सि० अन्याभिलाषिता शून्य ज्ञान कर्माद्यनावृत आनुकूल्य से कृष्णानुशीलन का ही उत्तमा भक्ति शब्द से ग्रहण हुआ है,। ६) हे उद्धव ! सत्सङ्ग प्रभवा

७‘ सा भक्तिः साधनं भावः प्रेमा चेति त्रिधोदिता ।
‘ वैधी रागानुगा चेति सा द्विधा साधनाभिधा ।।’

तत्र रागानुगाया मुख्यत्त्वम्, यथा ( भ० र० सि० १।२।२८१)-

८ रागवन्धेन केनापि तं भजन्तो व्रजन्त्यमी ।
अङ्घ्रिपद्मसुधाः प्रेमरूपास्तस्य प्रिया जनाः ।।

९ ( भ० र० सि २।५।१)—‘ वैशिष्ट्यं पात्रवैशिष्ट्याद्भक्ति-रेषापि गच्छति ’ इति । यथाविध-स्वरूपानुगत्यलक्षणं श्रीमत्प्रभु ( रूप ) चरणैः ( भ० र० सि० १।२।२१० )-

१० ‘ विराजन्तीमभिव्यक्तं व्रजवासिजनादिषु ।
रागात्मिकामनुसृता या सा रागानुगोच्यते ।।’

इति पूर्व्वं विचारितमस्ति । श्रीभागवते च ( १०।१४।७२)-

११) अहो भाग्यमहो भाग्यं नन्दगोपव्रजौकसाम् ।
यन्मित्रं परमानन्दं पूर्णं ब्रह्म सनातनम् ।।

१२) अथ रागानुगा, सा द्विधा—सम्बन्धानुगा कामानुगा च ।

भक्ति को छोडकर मुझ को प्राप्त करने का अपर कोई उपाय नहीं है ।
७) भ० र० सि०-वह भक्ति साधन भाव प्रेम भेदसे तीन प्रकार है, साधन भक्ति वैधी एवं रागानुगा भेद से दो प्रकार हैं । ८) उस में रागानुगा भक्ति ही श्रेष्ठ है । भ० र० सि० १।२।२८१ प्रेममयी तृष्णा रूप राग के द्वारा भजन करके श्रीचरण सुधा को कुछ व्यक्ति प्राप्त करते हैं । ९) पात्र विशेष से ही भक्ति का वैशिष्ट्य होता है, भ० र० २।५।७। यथाविध स्वरूपानुगत्य का लक्षण श्रीरूप गोस्वामी चरण ने लिखाहै, व्रज वासि जन प्रभृति में जो भक्ति मूर्त्तिमती होकर विराजित है, उसका नाम ही रागात्मिका है, उस की आनुगत्यमयी भक्ति का नाम ही रागानुगाभक्ति है, इसका विचार पहले किया है, भा० १०।१४।३२ में उक्त है, नन्द व्रज निवासियों के भाग्य अद्भुत आश्चर्यजनक है, पूर्ण ब्रह्म परमानन्द सनातन ही जिन के मित्र हैं । १०) ११ ) १२) अनन्तर रागानुगा को कहते हैं—रागानुगा दो

तत्र कामानुगा मुख्या; सा द्विधा सम्भोगेच्छामयी तत्तद्भावेच्छामयी च ( भ० र० सि० १।२।२९९)—

१३) केलितात्पर्य्यवत्येव सम्भोगेच्छामयी भवेत् ।
तद्भावेच्छात्मिका तासां भावमाधुर्य्यकामिता ।।

तत्राधिकारी ( भ० र० सि० १।२।३ )-

१४) 'श्रीमूर्त्तेर्माधुरीं वीक्ष्य तत्तल्लीलां निशम्य वा ।
तद्भावकाङ्क्षिणो ये स्युस्तेषु साधनतानयो: ।।' इति ।

मत्तोऽस्य सुखं भूयादिति सम्भोगेच्छामयी; मत्तोऽनयो: सुखं भूयादिति तत्तद्भावेच्छामयीति द्वयोर्भेद: ।

१५) यथा श्रीभागवते ( १०।४४।१४)-
गोप्यस्तप: किमचरन् यदमुष्य रूपं
लावण्यसारमसमोद्र्ध्वमनन्यसिद्धम् ।
दृग्भि. पिवन्त्यनुसवाभिनवं दुराप-
मेकान्तधाम यशस: श्रिय ऐश्वरस्य ।।

आदि पुराणे-

प्रकार की होती हैं । सम्वन्धानुगा—कामानुगा । इस में कामानुगा मुख्य है, वह दो प्रकार हैं—सम्भोगेच्छामयी एवं तत्त्वद् भावेच्छामयी ( भ० र० सि० १।२।२९९ ) केलि लीला में तात्पर्य रखने वाली को सम्भोगेच्छामयी कहतेहैं, उन उन भाव के प्रति लालसा युक्ता होती, है, उस में भावमाधुर्यास्वादन की कामना रहती है । १३) उस के अधिकारी—भ० र० सि० १।२।३-श्रीमूर्त्ति की माधुरी को देखकर अथवा सुनकर—उस भाव प्राप्ति की आकाङ्क्षा जिस में जगती है, वह अधिकारी होता है । हम से उनका सुख हो, इस को सम्भोगेच्छा मयी कहते हैं, हमसे राधा कृष्ण दोनों सुखी वने इस इच्छा वाले को तत्तद् भावेच्छामयी कहते हैं । इस से ही दोनों का भेद जानना होगा । १४) १५) भा० १०।४४।१०—में—रङ्गमञ्च में कृष्ण को देखकर माथुर रमणी गण कहतीहैं—हमने तो कृष्ण को अनवसर में ही देखा, गोपीगण भाग्यवती हैं । उन्होंने कौन सी तपस्या की

१६) त्रैलोक्ये पृथिवी धन्या यत्र वृन्दावनं पुरी।
तत्रापि गोपिकाः पार्थ तत्र राधाभिधा मम ॥

श्रीभक्तिरसामृतसिन्धौ च ( २।५।३८)-

१७) " यथोत्तरमसौ ' इत्यादि; (भ० र० सि० १।२।२८६)-
' इत्युद्धवादयोऽप्येतं वाञ्छन्ति भगवत्प्रियाः ' इति;

१८) तद्‌यथा ( श्रीभा० १०।४७।६१)—
' आसामहो चरणरेणुजुषामहं स्यां
वृन्दावने किमपि गुल्मलतौषधीनाम् ।
या दुस्त्यजं स्वजनमार्य्यपथञ्च हित्वा
भेजुर्मुकुन्दपदवीं श्रुतिभिर्विमृग्याम् ॥'

१९) ब्रह्मस्तुतिः ( श्रीभा० १०।१४।३४ )-
' तद्‌भूरिभाग्यमिह जन्म किमप्यटव्यां
यद्‌गोकुलेषु कतमाङ्‌घ्रिरजोऽभिषेकम्' इत्यादि ।

जिस से लावण्यसार असमोर्द्ध अनन्यसिद्ध रूप को उन्होंने देखा। वह ईश्वर की परम सीमा है, एवं नित्यनवनवायमान है, उस को भी गोपीयों ने नेत्र से ही देखा। १६) आदि पुराण में उक्त है- तीन लोक में पृथिवी धन्या है, जहाँपर वृन्दावन पुरी विराजित है, उस में भी गोपिका श्रेष्ठा है; और उन में से राधानाम्नी गोपिका मेरी अत्यन्त प्रिया है। १७) भक्तिरसामृत सिन्धु में २।५।३८ उक्त है- विशेष उल्लास एवं आस्वादन से ही रति में तारतम्य होता है। भ० र० १।२।२८६। इसलिए उस भाव की वाञ्छा भगवत् प्रिय उद्धव प्रभृति भी करते हैं। १८) भा० १०।४७।६१ अहो मैं इस वृन्दावन तरु गुल्मलता ओषधीवनकर जन्म ग्रहण क्यों न करूँ जिस से उन गोपिकाओं की चरणरेणु मुझे मिलेगी। जिन्होंने दुस्त्यज स्वजन आर्य पथ को त्यागकर मुकुन्द के चरणारविन्द का भजन को सार किया, जिसका अन्वेषण श्रुतिगण करती रहती हैं। १९) ब्रह्म स्तुति में १०।१३।३४ उक्तहै, मैं उस को ही सुमहान् भाग्य समझूँगा

२०) अतो व्रजवासिजनादिषु विराजमानाया रागात्मिकाया मुख्यत्वेन रागानुगाया मुख्यत्वम्, तदनुसरणत्वात् । अस्यामेव रागानुगायां गृहस्थोदासीन—भेदेनाधिकारिणो द्विविधा दृश्यन्ते; तत्र उदासीना मुख्याः ।

२१ तद्यथा श्रीनारद-वाक्ये ( श्रीभा० १।५।५)—

'तत् साधु मन्येऽसुरवर्य्य देहिनां
सदा समुद्विग्नधियामसद्ग्रहात् ।
हित्वात्मपातं गृहमन्धकूपं
वनं गतो यद्धरिमाश्रयेत ।।' इत्यादि ।

२२ किञ्च, भक्ताश्च द्विविधाः-ऐश्वर्य्यानुभविनः, माधुर्य्यानुभविनश्च ऐश्वर्य्यं तावद्देवलीला-देवचेष्टा-देववपुरित्यादिकम्; माधुर्य्यं च नरलीला--नरचेष्टा--नरवपुरित्यादिकम्;—किञ्च,—ऐश्वर्य्यं —विना माधुर्य्यस्य नित्यता न सम्भवति, केवल-नरचेष्टा-साधर्म्येचण मायिकत्वापातान्माधुर्य्यस्याप्यसिद्धेः । माधुर्य्यं विना भक्तप्रेमहानिः स्यात्;

तत्र श्रीमद्भागवतं तथा श्रीलघुभागवतामृतंप्रमाणम्—

यदि इस वृन्दावन में कुछ नगण्य जन्म भी मेरा हो, इस से गोकुल वासी जिस किसीके चरण रेणुसे अभिषिक्त होने का सौभाग्य होगा ।

२०) अतएव व्रजवासिजनादि में विराजित मुख्य रागात्मिका का अनुगत रागानुगा की ही मुख्यता है, इस में उसका ही अनुसरण है, अनुकरण में भक्ति नहीं होती है, इस रागानुगा में गृहस्थ उदासीन भेद से दो प्रकार अधिकारी हैं । उस में उदासीन गण श्रेष्ठ हैं ।

२१) श्रीनारद जी के वाक्य भा० ७।५।५ में इस प्रकार है, प्रह्लाद जीने कहा—हे असुरवर्य्य ! मैं उसको ही साधु मानता हूँ । निरन्तर उद्वेग अहङ्कार द्वारा अन्धकूप रूप आत्म पतन कारी गृह को छोड़ कर वन को चले जाना, एवं एकान्त भाव से श्रीहरि की शरण लेना

२२) भक्त द्विविध होते हैं—ऐश्वर्यानुभवी, एवं माधुर्यानुभवी । ऐश्वर्य—देवलीला देवचेष्टा देववपु इत्यादि । माधुर्य—नरलीला नर चेष्टा नरवपु इत्यादि । और भी ऐश्वर्य के विना माधुर्य की नित्यता

२३) ' किम्वासनं ते गरुड़ासनाय
किं भूषणं कौस्तुभ-भूषणाय ।
लक्ष्मीकलत्राय किमस्ति देयं
वागीश किं ते वचनीयमास्ते ? इत्यादेः ।

२४) ऐश्वर्य्य माधुर्य्यानुभवविभक्तानां द्विविधत्वेऽपि पुनश्चतुर्विधा भक्ताः—

' यस्य वासः पुराणादौ ख्यातः स्थानचतुष्टये ।
व्रजे मधुपुरे द्वारवत्यां गोलोक एव च ।।'

श्रीलघुभागवतामृते च ( १।७६७-८)—

' व्रजेशादेरंशभूता द्रोणाद्या येऽवातरन् ।
हरिस्तानेव वैकुण्ठे प्राहिणोदिति साम्प्रतम् ।।
प्रेष्ठेभ्योऽपि प्रियतमैर्जनैर्गोकुलवासिभिः ।
वृन्दारण्ये सदैवासौ विहारं कुरुते हरिः ।।'

बृहद्गणोद्देशदीपिकायाम् (१२५)—

सम्भव नहीं है, केवल नरचेष्टा साधर्म्य से मायिक होने पर माधुर्य की सिद्धि नहीं होगी । माधुर्य को छोड़नेसे भक्त प्रेम की हानि होती है । इस में श्रीमद् भागवत एवं लघु भागवतामृत प्रमाण है । २३) आप का आसन गरुड़ है, अतः आप को मैं आसन क्या दूँ ? आपका भूषण कौस्तुभ है, आपको मैं भूषण ही क्या दूँ ? लक्ष्मी आप के परिकर हैं । अतः आपको देना ही क्या है ? आप तो सरस्वती पति हैं, अतः मैं आप की क्या स्तुति करूँ २४) ऐश्वर्य माधुर्यानुभवि भक्तगण दो प्रकार होने से भक्त की संख्या चार हैं । २४) पुराणादि में जिस का विवरण है, वह स्थान व्रज, मधुपुर, द्वारका गोलोक, इस स्थान के निवासी होने से स्थान भेद से भक्तों का भेद होता है । लघु भागवतामृत में उक्त है—१।७।६७-८। व्रजेश्वर प्रभृति के अंश स्वरूप द्रोण धरा प्रभृति का जो अवतार हुआ था, उनसव को हरिने वंकुण्ठ भेजदिया । प्रेष्ठ प्रियतम गोकुल वासी जनगण के साथ वृन्दावनमें हरि सर्वदा विहार करते हैं । बृहद्गणोद्देशदीपिकामें

'सर्वा एवाखिलं कर्म जानन्ते' इत्यादि।

तथा हि लघुभागवतामृते (१।७७)—

'यत्तु गोलोकनाम स्यात्तत्तु गोकुलवैभवम्' इति।

तथापि स्तवमालायां (नन्दापहरणं) च—

'वैकुण्ठं यः सुष्ठु संदर्श्य' इत्यादि।

२५) श्रीकृष्णसन्दर्भे (११६ अनु०) श्रीवृन्दावने श्रीगोलोक दर्शनन्तु तस्यैवापरिच्छिन्नस्य गोलोकाख्य-वृन्दावनाप्रकट प्रकाश-विशेषः पर्य्यवस्यतीति माहात्म्यावलम्बनेन भजतां स्फुरतीति ज्ञेयम्। तत्तु न केवलमुपासनास्थानमेवेदम् प्राप्तिस्थानमिदमेव।

तत्रोपासकाश्चतुर्विधाः— केवलैश्वर्य्यानुभविनः, माधुर्य्य-मिश्रैश्वर्य्यानुभविनः, ऐश्वर्य्यमिश्र-माधुर्य्यानुभविनः केवलमाधुर्य्यानु-भविनश्च। तत्र केवलैश्वर्य्यानुभविनां स्थानं वैकुण्ठम्, माधुर्य्य-मिश्रैश्वर्य्यानुभविनां महावैकुण्ठ-परव्योम-गोलोकम्, ऐश्वर्य्य-मिश्र-

१२५ लिखित है—वे सब कृष्ण को ही अपना मानते हैं। लघु भागवतामृत में १।७७। गोलोक नामक स्थान-गोकुल का वैभव है। स्तवमाला में उक्त है—वैकुण्ठ को दिखाकर गोकुल ले आए। २५) श्रीकृष्णसन्दर्भ में ११६ अनु) श्रीवृन्दावन में जो गोलोक दर्शन होता है, उसका कारण यह है, अपरिच्छिन्न वृन्दावन का अप्रकट प्रकाश विशेष ही गोलोक है। जो लोक माहात्म्य ज्ञान से भजन करता है, उस के निकट वृन्दावन में गोलोक की स्फूर्त्ति होती है, अतएव दृश्यमान वृन्दावन केवल उपासना करने का स्थान ही नहीं है, किन्तु परम प्राप्य स्थान भी यह ही है। उपासकगण चार प्रकार होते हैं—केवल ऐश्वर्यानुभवी, माधुर्यमिश्र ऐश्वर्यानु-भवी, ऐश्वर्यमिश्र माधुर्यानुभवी, केवल माधुर्यानुभवी। केवल ऐश्वर्यानुभवी का स्थान वैकुण्ठ है। माधुर्य मिश्र ऐश्वर्यानुभवी का स्थान महावैकुण्ठ परव्योम गोलोक है। ऐश्वर्यमिश्रमाधुर्यानु भवी का स्थान मथुरा द्वारका है। केवल माधुर्यानुभवी का स्थान

माधुर्य्यानुभविनां पुरद्वयम्, केवलमाधुर्य्यानुभविनां तु श्रीवृन्दावनम्। (भ० र० सि० १।२।३०३)—

'रिरंसां सुष्ठु कुर्वन् यो विधिमार्गेण सेवते।
केवलेनैव स तदा महिषीत्वमियात् पुरे॥ इत्यादि।

किञ्च, स्वकीया-परकीययोर्मध्ये परकीयायामेव मुख्यो रसो जायत इति पूर्व्वं विचारितोऽस्ति। अतो रतिस्त्रिधा—साधारणी, समञ्जसा, समर्था च। तत्र साधारणी सम्भोगेच्छानिदाना कुब्जादिषु समञ्जसा तु पत्नीभावाभिमानमयी क्वचिद् भेदित सम्भोगेच्छासान्द्रा रुक्मिण्यादिषु। समर्था खलु स्व-स्वरूपजाता श्रीकृष्णसुखस्वरूपा सान्द्रतमा श्रीराधिकादिषु; यथा (उ० नी०-स्थायी० ५३)

स्व-स्वरूपात्तदीयाद्वा जाता यत् किञ्चिदन्वयात्।
समर्था सर्वविस्मारिगन्धा सान्द्रतमा मता॥

श्रीवृन्दावन ही है। भा० र० सि० १।२।३०३ में रमणेच्छा को लेकर जो जन विधि मार्ग मे सेबा करता है। उसकी प्राप्ति पुर में महिषी के परिकर रूप में होगी। और भी स्वकीया परकीया के मध्य में परकीया में ही मुख्यरस होता है, इस का विचार पहले हो चुका है। अतएव रति तीन प्रकार है—साधारणी, समञ्जसा समर्था, सम्भोगेच्छा से प्रेरित कुब्जादि में राधारणी, समञ्जसा, पत्नीभाव अभिमानमयी कभी निबिड़ सम्भोगेच्छायुक्त रुक्मिणी प्रभृति है। समर्था तो निज स्वरूप से ही उत्पन्न होती है, निविड़तम श्रीकृष्ण सुख स्वरूप ही होता। यह केवल श्रीराधिकादि में होती है, उ० नी० स्थायी ५३। स्व स्वरूपोत्थ होने के कारण साधारणी समञ्जसा रति से भी अनिर्वचनीय वैशिष्टय समर्था में है। अर्थात् श्रीकृष्ण वशीकारत्वातिशय्य प्राप्ता रति के साथ सम्भोगेच्छा सर्वथा तादात्म्य रति स्वरूपता प्राप्त करती है। जो ललनानिष्ठ स्वरूप से अथवा श्रीकृष्ण निष्ठ शब्दादि के जिस किसी एक के यत् सामान्य नाममात्र सम्बन्ध से ही आविर्भूत होता है। जिस के उदय के गन्ध मात्र

२६  किञ्च, मन्त्रमयी-स्वारसिक्योर्म्मध्ये स्वारसिकी श्रेष्ठा। स्वारसिकी चात्र श्रीराधाप्राणवन्धोरित्यत्र मानस्यामपि सेवायां सद्भावात्। अतएव श्रीगीतायाम् ( १२।१० )—

'अभ्यासेऽप्यसमर्थोऽसि मत्कर्म-परमो भव।
मदर्थमपि कर्म्माणि कुर्व्वन् सिद्धिमवाप्स्यसि॥' इति।

अभ्यासो नाम मनोयोगो, मत्कर्म श्रवणकीर्त्तनादि।

श्रीहरिभक्तिविलासे ( २० वि० उपसंहार )—'एवमेकान्तिनः प्रायः कीर्त्तन-स्मरणे प्रभोः। कुर्व्वन्ति परमप्रीत्या' इत्यादि। एवं भक्तिसन्दर्भे च सनत्कुमार-संहितायां च—

सद्धर्म्मशासको नित्यं सदाचार-नियोजकः।
संप्रदायी कृपापूर्णो विरागी गुरुरुच्यते॥

टीका—विरागी विशिष्टरागवान्; तस्माद्दोषदृष्ट्या विषय-परित्यागः सुतरां लभ्यते। तथाहि ( विष्णुपुराणे )—

से ही कुल, धर्म, धैर्य, लज्जादि सब बाधा विघ्न विस्मृत होते हैं, एवं जो निविड़तमा है, अर्थात् जिस में अन्य भाव का लेश मात्र भी प्रवेश नहीं हो सकता है, वह ही शास्त्र सम्मत समर्थारति है। २६) मन्त्रमयी स्वारसिकी के मध्य में स्वारसिकी श्रेष्ठ है, स्वारसिकी श्रीराधा प्राणवन्धु की मानसी सेवा में विद्यमान है। गीता में उक्त है—अभ्यास करने में असमर्थ हो तो मेरी सेवा कर्म करो, मेरे लिए कर्म करने पर भी सिद्धि प्राप्ति होती है। मनोयोग को अभ्यास कहा जाताहै, उनका कर्म-श्रवण कीर्त्तनादि,श्रीहरिभक्ति विलास के (२०वि) उपसंहार में उक्तहै, एकान्ति व्यक्ति के लिए प्राय कर श्रवण कीर्त्तन ही विधेय है। इस प्रकार भक्ति सन्दर्भ एवं सनत कुमार संहिता में उक्त है, सत् धर्म का शासक, सर्वदा सदाचारका रक्षक, सम्प्रदायी कृपापूर्ण विरागी गुरुजन होनेके योग्यहै। विरागी शब्दका अर्थ कृष्ण के प्रति विशिष्ट रागवान है, अतएव दोष को देखकर विषय का परित्याग उन में स्वाभाविक रहता है। विष्णु पुराण में उक्त है-विषया

' विषयाविष्टचित्तानां विष्णवावेश: सुदूरत: ।
वारुणीदिग्गतं वस्तु व्रजन्नैन्द्रीं किमाप्नुयात् ?
गृहारम्भो हि दु:खाय न सुखाय कदाचन' इति च ।

श्रीनारदवाक्ये ( श्रीभ० ११५।५—
' तत् साधु मन्येऽसुरवर्य्य देहिनां, सदा समुद्विग्नधियामसद्ग्रहात् ।
हित्वात्मपातं गृहमन्धकूपं, वनं गतो यद्धरिमाश्रयेत ।।'
श्रीभागवते ( ११।७।६ ) भगवदुक्तौ—

' त्वन्तु सर्वं परित्यज्य स्नेहं स्वजनवन्धुषु ।
मय्यावेश्य मन: सम्यक् समदृग् विचरस्व गाम् ।।'

( श्रीभा० १।५।१७)—

' त्यक्त्वा स्वधर्म्मं चरणाम्वुजं हरे-
र्भजन्नपक्कोऽथ पतेत्ततो यदि ।
यत्र क्व वाभद्रमभूदमुष्य किं
को वार्थ आप्तोऽभजतां स्वधर्मत: ।।' इति ।

(गी० १८।६६)—
विष्ट चित्त के लिए विष्णु में आवेश कभी भी नहीं होगा, पश्चिमदिक् में स्थित वस्तु की प्राप्ति के लिए पूर्वादिक् के और चलने से क्या उस वस्तु की प्राप्ति होगी ।

गृहारम्भ ही दु:ख के हेतु है, कभी भी सुख के लिए नहीं है, भा० ७।५।५ में कहागया है—उस को ही साधु कहा जाता है, जो आत्मनाश कारी अन्धकूप गृह को छोड़कर वन में जाकर श्रीहरि को वरण करता है । भा० ११।७।६ भगवत् की उक्ति में तुम तो स्वजन वन्धु के प्रति सव ममताको छोड़ कर मेरेमें मनोनिवेश करके सम्यक् समदर्शी होकर पृथिवी में विचरण करो । भा० १।५।१७ स्वधर्म को छोड़कर श्रीहरि का भजन करते करते अपक्व अवस्था में पतन हो जाय तो भी संसार होने की सम्भावना ही नहीं है, अत वर्णाश्रम धर्म से हरिभजन की आवश्यकता ही क्या हैं, ।। गीता १८।६६

'सर्व्वधर्मान् परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज' इति ॥

( गी० ९।३० )—

'अपि चेत् सुदुराचारो भजते मामनन्यभाक् ।
साधुरेव स मन्तव्यः सम्यग् व्यवसितो हि सः ॥

( गी० ९।२२ )—

'अनन्याश्चिन्तयन्तो मां ये जनाः पर्य्युपासते ।
तेषां नित्याभियुक्तानां योगक्षेमं वहाम्यहम् ॥"

इत्यादि वहुशः ॥

**२७ विशेषतो रागानुगाधिकारि-लक्षणं दर्शयति—**

( भ० र० सि० १।४।७ )—

'न पतिं कामयेत् कञ्चित् ब्रह्मचर्य्यस्थिता सदा ।
तामेव मूर्त्तिं ध्यायन्ती चन्द्रकान्तिर्वरानना ॥'

इत्यत्र ब्रह्मचर्य्यं खल्वष्टविधसम्भोगपरित्यागः; अजामिलोपाख्याने ( श्रीभा० ६।१।१२ ) श्रीश्रीधरस्वामिचरणैरप्युक्तम्—

धर्म को छोड़कर मेरी शरण ही ग्रहण करो,। गीता ९।३०— सुदुराचारी जन भी यदि अनन्यभावसे भजन करता है तो उसे साधु मानलेना चाहिये, कारण-उसका निश्चय उत्तम है, उसने ठीक ही किया है, इस प्रकार अनेक प्रमाण है।

२७) विशेषकर रागानुगा अधिकारी का लक्षण को कहते है—भ० र० सि० १।४।७। वरानना चन्द्र कान्ति ब्रह्मचर्य में स्थित होकर पति वरण नहीं किया, केवल श्री हरि की मूर्त्ति का ध्यान करने लगी। यहाँपर ब्रह्मचर्य-शब्द का अर्थ अष्टविध सम्भोग का परित्याग, अजामिल उपाख्यान में श्रीधर स्वामि चरण ने कहा है- स्मरण, कीर्त्तन, केलि, प्रेक्षण, गुह्य भाषण, संकल्प, अध्यवसाय एवं क्रिया निवृत्ति, इस अष्टाङ्ग को मनीषिगण मैथुन कहते हैं, इस के विपरीत ही ब्रह्मचर्य होता है। भगवत परिकरों में जो विषय देखने में आते हैं, वे सव उन सिद्धोंके लिए भववन्धन के कारण नहीं

'स्मरणं कीर्त्तनं केलिः प्रेक्षणं गुह्यभाषणम् ।
संकल्पोऽध्यवसायश्च क्रियानिर्वृत्तिरेव च ।।
एतन्मैथुनमष्टाङ्गं प्रवदन्ति मनीषिणः ।।
विपरीतं ब्रह्मचर्य्यमेतदेवाष्टलक्षणम् ।। इत्यादि ।

ये तु भगवत् परिकराणां विषया दृश्यन्ते, ते तु सिद्धानांतेषां भवबन्धनाय न भवन्ति, 'नित्यसिद्धा मुकुन्दवत्' इत्यादेः। किञ्च श्रीस्वामिचरणैः—' गृहस्थितस्य पुनरासक्तिसम्भवात् ' इत्यादेः।

प्रसङ्गात् **शिष्यलक्षणम्** (ह० भ० वि० प्रथमबिलास-धृत-मन्त्रमुक्तावलीवाक्यम् )—

'शिष्यः शुद्धान्वयः श्रीमान् विनीतः प्रियदर्शनः ।
सत्यवाक् पुण्यचरितोऽदभ्रधीर्दम्भवर्जितः ।।
काम-क्रोध-परित्यागी भक्तश्च गुरुपादयोः ।
देवता-प्रवणः कायमनोवाग्भिर्दिवानिशम् ।।
निरुजो निर्गताशेष-पातकः श्रद्धयान्वितः ।
देव-द्विज-पितृणाञ्च नित्यमर्चापरायणः ।।
युवा विनियताशेषकरणः करुणालयः ।
इत्यादिलक्षणैर्युक्तः शिष्यो दीक्षाधिकारवान् ।।' इत्यादि ।

बनते हैं, नित्यसिद्धगण मुकुन्द के समान होते हैं, स्वामी चरण ने कहा है—गृहस्थित की पुनरासक्ति की सम्भावना है। प्रसङ्ग वश शिष्य लक्षण को कहते हैं—ह० भ० वि० प्रथम विलासधृत मन्त्रमुक्ता वली के वाक्य इस प्रकार है—शिष्य कौन होगा ?

विशुद्ध पिता माता से उत्पन्न, धनी, विनीत, प्रिय दर्शन, सत्य निष्ठ, पुण्य चरित, उच्चादर्श-दम्भवर्जित, काम, क्रोध परित्यागी गुरु चरण के भक्त काय वाक्य मन से देवता प्रवण, रोगहीन, अशेष पातक हीन, श्रद्धालु देवद्विज, पिता प्रभृति के प्रति श्रद्धाशील, नित्य अर्चना परायण, युवक, संयत सकलेन्द्रिय, करुणापूर्ण—इत्यादि लक्षण युक्त शिष्य ही दीक्षा के लिए अधिकारी होता है।

२८)    नन्वनुकार्यज्ञानं विना कथमनुसरणज्ञानम् ? इत्यत आह (भ० र० सि० १।२।२७१)—

राागानुगा-विवेकार्थमादौ रागात्मिकोच्यते ॥

टीका—अथ स्वरूपलक्षण-तटस्थलक्षणाभ्यां तामेवोपपादयति (भ० र० सि० १।२।२७२)—

'इष्टे स्वारसिकी रागः परमाविष्टता भवेत् ।
तन्मयी या भवेद्भक्तिः सात्र रागात्मिकोदिता ॥'

टीका—इष्टे स्वाभीप्सितप्रेमविषये श्रीनन्दनन्दने इति यावत्; स्वारसिकी स्वाभाविकी परमाविष्टता कायिकी वाचिकी मानसी, चेष्टा, सा रागो भवेत्; तन्मयी तन्मात्रप्रेरिता या भक्तिः सा रागात्मिकोदितेति योजना। इष्टे प्रेममयगाढ़तृष्णेति स्वरूपलक्षणम्; इष्टे स्वारसिकी परमाविष्टतेति तटस्थलक्षणम् ।

२८)—अनुकार्य ज्ञान के विना अनुसरण ज्ञान कैसे होगा ? इसलिए भ० र० सि० १।२।२७३ में कहते हैं।—रागानुगा विवेक के लिए प्रथम रागात्मिका परिचय देते हैं। स्वरूप लक्षण तटस्थ लक्षण के द्वारा उसको कहते हैं भ० र० सि० १।२।२७२ इष्ट में स्वाभाविक परमाविष्टता को राग कहते हैं, उस से जो सेवा होती है, उस को रागात्मिका कहते हैं। इस का अर्थ, इष्ट में स्वाभीप्सित प्रेमका विषय श्रीनन्दनन्दन में, स्वारसिकी स्वाभाविकी परमाविष्टता कायिकी वाचिकी मानसी चेष्टा ही राग है।

तन्मयी— केवल उससें ही प्रेरिता जो भक्तिहै, उसे रागात्मिका कहतेहैं, इष्ट मैं प्रेममय गाढ़ तृष्णा, स्वरूप लक्षण है, इष्टमें स्वारसिकी परमाविष्टता तटस्थलक्षण है। उस के विभाग को कहते हैं— वह भक्ति कामरूपा सम्बन्धरूपा भेद से दोप्रकार हैं। यद्यपि कामरूपा में भी सम्बन्ध विशेष है ही तथापि वैशिष्ट्य की अपेक्षा से ही पृथक् कहा गया है। कामरूपा को कहते हैं--भ० र० सि० १।२। २८३—जिस में सम्भोग तृष्णा रहती है, और कृष्ण सुख के लिए ही

अथ तस्या विभागमाह ( भ० र० सि० १।२।२७३ )—

'सा कामरूपा सम्वन्धरूपा चेति भवेद्द्विधा'

यद्यपि कामरूपायामपि सम्वन्धविशेषोऽस्त्येव, तथापि पृथगुपादानं वैशिष्ट्यापेक्षया।

तत्र कामरूपामाह ( भ० र० सि १।२।२८३ )—

'सा कामरूपा सम्भोगतृष्णां या नयति स्वताम्।
यदस्यां कृष्णसौख्यार्थमेव केवलमुद्यमः॥'

अथ सम्वन्धरूपा ( भ० र० सि० १।२।२८८ )

'सम्वन्धरूपा गोविन्दे पितृत्वाद्यभिमानिता।
अत्रोपलक्षणतया वृष्णीनां वल्लवा मताः॥'

अत्र शुद्धसम्वन्धरूपायां ( श्रीभ० ७।१।३० ) 'सम्वन्धाद्वृष्णयः' इत्यत्र वृष्णीनामुपलक्षणतया ये वल्लवाः प्राप्तास्त एवात्र मताः, न तु महिमज्ञानयुक्ता द्वारकादिनित्यसिद्धभक्ता इत्यर्थः। तद्धेतुमेवोपपादयति ( भ० र० सि० १।२।२८८ )—

'यदैश्यज्ञानशून्यत्वादेषां रागे प्रधानता'

२६) अथ पूर्व्वोक्त-रागानुगाभक्तेर्विभागमाह ( भ० र० सि० १।२।२६० )—

होती है। सम्वन्धरूपा भ० र० सि० १।२।२८८ गोविन्द के प्रति पिता माता प्रभृति अभिमान होना, वृष्णिगण एवं गोपगण में वह होता है। सम्वन्ध से वृष्णि गण, एवं गोपगण होते हैं, वे सव महिम ज्ञान युक्त नहीं होते हैं, उस में हेतु—ईश्वर ज्ञान शून्यता के कारण- उन सव में राग की प्रधानता है॥ २६) पूर्वोक्त रागानुगा भक्ति का विभाग को कहते हैं-रागात्मिका दो प्रकार होने से रागानुगा भी दो प्रकार हैं, उक्त रागानुगा एवं सम्वन्धानुगा। इसका अधिकारी लक्षण—रागात्मिका भक्तिनिष्ठ व्रजवासी जनके भाव के प्रति लोलुप व्यक्ति ही अधिकारी है। लुब्धयदि होता है, तभी रागानुगा भक्ति का अधिकारी होगा, लोभ को न जानने से प्रवृत्ति भी कैसे होगी ?

रागात्मिकाया द्वैविध्याद् द्विधा रागानुगा च सा ।
कामानुगा च सम्बन्धानुगा चेति निगद्यते ।।

अत्राधिकारि-लक्षणम् ( भ० र० सि० १।२।२९१ )—
रागात्मिकैकनिष्ठा ये व्रजवासिजनादयः ।
तेषां भावाप्तये लुब्धो भवेदत्राधिकारवान् ।।

ननु रागानुगायां लुब्धश्चेदधिकारवान् तर्हि लोभज्ञानं बिना **कथं प्रवृत्तिरित्यत आह--लोभ-स्वरूपम्** ( भ० र० सि० १।२।२९२ )
' तत्तद्भावादि-माधुर्य्ये श्रुते धीर्यदपेक्षते ।
नात्र शास्त्रं न युक्तिं च तल्लोभोत्पत्तिलक्षणम् ।।' इति

टीका--तत्तद्भावादिमाधुर्य्ये श्रुते श्रीकृष्णभक्तमुखात् श्रीभागवतादिषु श्रवणद्वारा यत् किञ्चिदनुभूते सति धीर्यन्माधुर्य्यादिकमपेक्षते 'कदा मम तद्भावमाधुर्य्यं चेष्टा-माधुर्य्यश्च भवेत्' इति तदेव

अतः लोभ स्वरूप को कहते हैं, भ० र० सि० १।२।२९२। श्रीकृष्ण के भक्त के मुख से श्रीभागवत कथा श्रवण के द्वारा कुछ अनुभव होने पर बुद्धि याद माधुर्यादि की अपेक्षा करती है, कब मेरा भाव माधुर्य चेष्टा माधुर्य का अनुभव होगा, इस प्रकार बुद्धि होना ही लोभोत्पत्ति का लक्षण है, अतः श्रीगुरु में उक्त भाव होना परम आवश्यक होगा कारण भा० ११।३।२१ में गुरु चरण वरण करने के लिए भगवान का आदेश है, किन्तु विद्वान् शास्त्रज्ञ, अनुभवी, एवं आचरण परायण गुरु होना आवश्यक है ।

स्वामिपादने कहाहै—अन्यथा ज्ञान दानमें गुरु असमर्थ होगा । अन्यथा न्यायतो बोधसञ्चाराभावात् ' श्री भा० १०।३३।३९, व्रजवधूयों के साथ विष्णु का विलास का श्रवण एवं वर्णन श्रद्धा से करने पर धीरव्यक्ति भगवत चरणारविन्द में अहैतुकी प्रेमलक्षणा भक्ति प्राप्त करेगा, सद्य उस के हृदय से काम वासना भी विदूरित होगी, टीका—हृद्रोग अपाप कर श्रीकृष्ण के प्रति कामादि भाव को भी हृदय शीघ्र छोड़देगा ।

लोभोत्पत्तेर्लक्षणं स्वरूपम्; अत आश्रयिष्यमाणे गुरौ तद्भावमाधुर्य्यं मायातम्, यतः ( श्रीभा० ११।३।२१)—'तस्माद्गुरुं प्रपद्येत जिज्ञासुः श्रेय उत्तमम्' इत्येकादश-स्कन्ध-पद्यटीकायां श्रीश्रीधरस्वामिभिरप्युक्त 'अन्यथा ( न्यायतो ) वोध- सञ्चाराभावात्।

( श्रीभा० १०।३३।३६ )—

विक्रीड़ितं व्रजवधूभिरिदञ्च विष्णोः
श्रद्धान्वितोऽनुशृणुयादथ वर्णयेद् यः ।
भक्तिं परां भगवति प्रतिलभ्य कामं ।
हृद्रोगमाश्वपहिनोत्यचिरेण धीरः ॥

टीका—हृद्रोगमपापकरं कामादिकमपि **शीघ्रमेव त्यजति। सामान्यतो परमत्वे सिद्धे तत्रापि परमप्रेष्ठ-श्रीराधासम्वलित-लीलामय-तद्भजनं तु परमतत्त्वमेवेति स्वतः सिध्यति; किन्तु रहस्यलीला तु पौरुषविकारवदिन्द्रियैः पितृ-पुत्र-दासभावैश्च नोपास्या, स्वकीयभाव-विरोधात्; क्वचिदल्पांशेन क्वचित् सर्वांशेनेति ज्ञेयम्।** ( भक्तिसन्दर्भे ३३८ अनु० )

३० तत्रत्यभक्तिमार्गा दर्शिताः; तथाहि—' स्वपुंस्त्वभावनायान्तु

श्रीकृष्ण भजन सामान्यत श्रेष्ठ होने पर भी उनके परम प्रेष्ठ श्रीराधा सम्वलित लीलामय श्रीकृष्ण भजन ही परम तत्त्व ही है, यह स्वतः सिद्ध होता है। किन्तु रहस्य लीला की उपासना—पौरुष विकार युक्त इन्द्रिय परायण व्यक्ति गण, एवं पिता पुत्र दास भावाक्रान्त व्यक्ति गण सर्वथा न करें भावविरुद्ध होगा। उपासना शब्द से श्रवण चिन्तन दर्शन प्रभृति को जानना होगा, यह विषय कभी तो अल्प विषय रूप से वर्णित होता है—आलिङ्गन चुम्बनादि भाव प्रकाश प्रभृति वर्णन को अल्पांश वर्णन कहते हैं, और कहींपर सर्वांश रूप में वर्णित होता है, जैसे सङ्गम सम्प्रयोग आदि। (श्रीजीव-गोस्वामी, भक्ति सन्दर्भ में ३३८ अनु )

३०) रागानुगीय भक्ति मार्ग का स्वरूप दिखाया गया है, इस

नैव रागानुगां गता ' श्रीदशमे श्रुत्यध्याये ( श्रीभा० १०।८७।२३)—
' स्त्रिय उरगेन्द्रभोगभुजदण्डविषक्तधियः' इत्यादि; श्री भा० १०।
९०।२६ )—

' श्रुतमात्रोऽपि यः स्त्रीणां प्रसह्याकर्षते मनः' ;

( भ० र० सि० १।४।७ )—

' न पतिं कामयेत् कश्चिद्ब्रह्मचर्य्यस्थिता सदा';

एवं वेदस्तुतौ ( श्रीभा० ०।८७।२१ )—

' दुरवगमात्मतत्त्वनिगमाय तवात्ततनो-
श्चारत-महामृताब्धिपरिवर्त्तपरिश्रमणाः ।
न परिलसन्ति केचिदपवर्गमपीश्वर ते
चरणसरोजहंसकुलसङ्ग विसृष्टगृहाः ।।

टीका—यानि कुलानि शिष्योपशिष्यतया तेषां सङ्गेन विसृष्ट-
गृहाः ।

शरीर में जबतक मैं पुरुष हूँ इस प्रकार ज्ञान भावना रहेगी तबतक रागानुगा भक्ति नहीं होगी, श्री भागवत के दशम स्कन्ध के श्रुत्य ध्याय में १०।८७।२३ कृष्ण के विशाल सर्प की भाँति भुजदण्डसे विषाक्त बुद्धि में स्त्रीगण-निमज्जित हो चुकी थीं। भा० १०।९० २६ श्रवण मात्र में ही वल पूर्वक स्त्रियों के मन आकृष्ट होते हैं। भ० र० सि० १।४।७ सदाब्रह्मचर्य में स्थित होकर चन्द्रकान्ति किसी भी पति की कामना भी नहीं की। एवं वेदस्तुति १०।८७।२१ में वर्णित है—भक्ति को अल्पसाधन मानना ठीक नहीं है, भक्ति ही सर्व श्रेष्ठ साधन है। हे ईश्वर ! आत्म तत्त्व अत्यन्तदुर्वोध है। उस को जानाने के लिए आप मूर्त्तिधारण कर लीला करते हैं। आप के चरितामृत में अवगाहन करके कुछ व्यक्ति संसार भ्रमण क्लेश को नहीं जानते हैं, और मुक्ति को भी नहीं चाहते हैं। इन्द्रादि पद की तो वात ही क्या है। इस प्रकार भक्ति रसिक अति विरल होते हैं, केवल अन्य कुछ नहीं चाहते हैं यह नहीं किन्तु उस भक्ति सुख से सुखी होकर अदृष्ट प्राप्त गृहादि सुख को भी छोड़ देते हैं, आप के

३१ अथ रागानुगाङ्गान्याह ( भ० र० सि० १।२।२९४-९५ )—

कृष्णं स्मरन् जनञ्चास्य प्रेष्ठं निज-समीहितम् ।
तत्तत् कथारतश्चासौ कुर्य्याद्वासं व्रजे सदा ॥
सेवा साधकरूपेण सिद्धरूपेण चात्र हि ।
तद्भावलिप्सुना कार्य्या व्रजलोकानुसारतः ॥

( भ० र० सि० १।२।३०९ )—

कृष्णतद्भक्तकारुण्य- लाभमात्रैकहेतुका ।
इयं रागानुगा कैश्चित पुष्टिमार्गतयेष्यते ॥

( भ० र० सि० १।२।३०१-३०२ )—

पुराणे श्रूयते पाद्मे पुंसामपि भवेदियम् ॥
पुरा महर्षयः सर्वे दण्डकारण्यवासिनः ।
दृष्ट्वा रामं हरिं तत्र भोक्तुमैच्छन् सुविग्रहम् ॥
ते सर्व्वे स्त्रीत्वमापन्नाः समुद्भूताश्च गोकुले ।
हरिं संप्राप्य कामेन ततो मुक्ता भवार्णवात् ॥

चरण सरोज के हंसकुल के सङ्ग से घर को छोड़ देते हैं। इस से श्रवण कीर्त्तन भक्ति का वर्णन हुआ। टीका—जो भी कुल है—शिष्य उपशिष्य परम्परा क्रमसे प्राप्त जो महदुपदेश है, उस में आसक्त होकर घर की आसक्ति को छोड़ देते हैं।

३१ अनन्तर रागानुगा के अङ्ग समूह का वर्णन करते हैं। भ० र० सि० १।२।२९४-९५ कृष्ण एवं उनके प्रियजन गुरुदेव को स्मरण कर श्रीकृष्ण लीला कथारत होकर सदा व्रज में निवास करे, कृष्ण भक्त जन के भाव लिप्सुजन यथावस्थित देह से एवं अन्तश्चिन्तित देह से श्रीरूप सनातन प्रभृति व्रज जन के आचरण के अनुसार ही श्री कृष्ण एवं तदीय जन की सेवा करे।

कृष्ण एव उन के भक्त के कारुण्य से ही लब्ध इस रागानुगा को पुष्टि मार्ग भी कहते हैं। भ० र० सि० १।२।३००--३०२ पद्मपुराण में वर्णित है, रागानुगा भक्ति पुरुष शरीर में भी होना सम्भव है, प्राचीन काल में दण्डकारण्य निवासी सब महर्षि गण की रामचन्द्र

( भ० र० सि० १।२।३०७ )—

तथापि श्रूयते पाद्मे कश्चित् कुरुपुरीस्थितः।
नन्दसूनोरधिष्ठानं तत्र पुत्रतया भजन् ।
नारदस्योपदेशेन सिद्धोऽभूद्वृद्धवार्द्धकिः ।।

टीका–सिद्धोऽभूदिति वालवत्सहरणलीलायां तत्पितॄणामेव सिद्धिर्ज्ञेया। एवञ्च सति श्रुतिकन्याचन्द्रकान्ति-प्रभृतीनां नित्य-सिद्ध-परिकरानुगत्याभावात् श्रीनन्दनन्दनस्य प्रकाशरूपस्यैव प्राप्ति र्न तु तादृश-स्वरूपस्य । अतएव प्रामाणिकैरप्युक्तम्—' धाम्नोऽ-भेदेऽपि परिकरभेदे प्रकाशः; यथा ( श्रीभा० १०।७७।७ ) ' तासां मध्ये द्वयोर्द्वयोः इति। नित्यसिद्धानुगतानां तु श्रीनन्दनन्दनस्य तादृश स्वरूपस्यैव प्राप्तिरित्यानुगत्यापेक्षावश्यकीति भूयान् विशेषोऽस्तीति विभावनीयम् ।

को देख कर सुविग्रह श्रीहरि का भजन करने की अभिलाषा हुई वे सव गोकुल में स्त्री शरीर में उत्पन्न हुए, काम भाव से श्रीहरि का भजन कर भवार्णव से मुक्त हो गए ।

भ० र० सि० १।२।३०७—पद्म पुराण में उक्त है—कुरुपुरी में एक वृद्धवार्द्धकि श्रीनारद के उपदेश से नन्दसुनु की श्रीमूर्त्ति का पुत्र भाव से भजन कर सिद्ध हो गया। टीका—-वालवत्स हरण लीला में उनकी सिद्धि हुई । इस प्रकार श्रुतिकन्या चन्द्र कान्ति प्रभृति के नित्य सिद्ध परिकरानुगत्य के अभाव से श्रीनन्दनन्दन के प्रकाश रूप की ही प्राप्ति होती है। मूलगत श्रीकृष्ण स्वरूप की नहीं, धाम एक होने पर भी परिकरभेद से स्वरूप का भिन्न भिन्न प्रकाशहै, १०।३३।३ में उक्तहैं, गोपियों के मध्यमें दो गोपी-एक कृष्ण दो कृष्ण एक गोपी हुए थे । जो लोक नित्यसिद्ध जन के आनुगत्य को मानलेता है, उस की यथार्थ स्वरूप नन्दनन्दन की प्राप्ति होती है, अतएव श्रीकृष्ण स्वरूप प्राप्ति के लिए आनुगत्य की विशेष आवश्यकता है ।।

३२ अथ चन्द्रकान्ति प्रभृतिषु रागानुगीय-गुरुचरणावलम्बनस्या-दृष्टत्वाद् रागानुगायामेतस्य कारणता न सम्भवति चेन्न-सामान्यतस्तादृश-गुरुचरणावलम्बनस्य कारणतायाः साक्षात् परम्परया स्वीकारात्। यत्र साक्षात्कारणता न सम्भवति, तत्र जन्मान्तरीण कारणकल्पनम्, फलबलात्। अतएवालङ्कारिकैर्बालकस्य कवितायां तथैव कल्प्यते। अतः स्वयमेव वक्ष्यते ( भ० र० सि० १।३।५७)-

साधनेक्षां विना यस्मिन्नकस्माद् भाव ईक्ष्यते।
विघ्नस्थगितमत्रोह्यं प्राग्भवीयं सुसाधनम्॥

अतएव 'गोपालोपासकाः पूर्वमप्राप्ताभीष्टसिद्धयः' इत्यादिकञ्च।

३३ अथ भावः ( भ० र० सि० १।३।१ )

शुद्धसत्त्वविशेषात्मा प्रेमसूर्य्यांशुसाम्यभाक्।
रुचिभिश्चित्तमासृण्यकृदसौ भाव उच्यते॥

३२ चन्द्रकान्ति प्रभृति में रागानुगीय गुरु चरणावलम्बन नहीं है, अतः रागानुगा भक्ति में गुरुचरण आश्रय करना अकारण है, इस प्रकार कहना रागानुगीय मार्ग के लिए सर्वथा विपरीत होगा। गुरु चरणावलम्बन—अपरिहार्य कारण है, किन्तु साक्षात् रूप से एवं परम्परा रूप से मानना होगा। जहाँ पर साक्षात् गुरु करण नहीं है, वहाँपर जन्मान्तरीण गुरु करण मानना आवश्यक है। कार्य को देख कर ही कारण का अनुमान होता है, आलङ्कारिक गण बालक की कविता में जन्मान्तरीण शक्ति कल्पना करते हैं। अतः स्वयं ही कहते हैं। विना साधन से ही जब भाव का दर्शन होता है, तब विघ्नस्थगित पूर्वजन्म के साधन को मानना होगा। अतएव गोपालोपासक गण पहले अभीष्ट सिद्धि को न प्राप्त कर उत्तर जन्म में अभीष्ट को प्राप्त किए थे।

३३ भाव भ० र० सि० १।३।१ ) शुद्ध सत्व विशेषात्मा प्रेम सूर्यांशु के समान, रुचि के द्वारा चित्त को मसृण करने वाले को भाव कहा जाता है। तन्त्र में उक्त है—प्रेम की प्रथमावस्था भाव है, इस

यथा तन्त्रे—

प्रेम्णस्तु प्रथमावस्था भाव इत्याभिधीयते।
सात्त्विकाः स्वल्पमात्रा स्युरत्राश्रुपुलकादयः॥

अथ प्रेमा ( भ० र० सि० १।४।१ )—

सम्यङ्मसृणितस्वान्तो ममत्वातिशयाङ्कितः।
भावः स एव सान्द्रात्मा बुधैः प्रेमा निगद्यते॥

यथा पञ्चरात्रे—

अनन्यममता विष्णौ ममता प्रेमसङ्गता।
भक्तिरित्युच्यते भीष्म-प्रह्लादोद्धवनारदैः॥

( भ० र० सि० १।४।१५-१६ )—

आदौ श्रद्धा ततः साधुसङ्गोऽथ भजनक्रिया।
ततोऽनर्थनिवृत्तिश्च ततो निष्ठा रुचिस्ततः॥
अथासक्तिस्ततो भावस्ततः प्रेमाभ्युदञ्चति।
साधकानामयं प्रेम्णः प्रादुर्भावे भवेत् क्रमः॥

( भ० र० सि० २।१।४-६ )—

३४ अथास्याः केशव-रतेर्लक्षिताया निगद्यते।
सामग्री-परिपोषेण परमा रसरूपता॥

समय पुलकादि स्वल्प मात्रा में सात्त्विक उद्गत होते हैं, प्रेम--भ० र० सि० १।४।१। अन्तः करण सम्यक् मसृण होता है अतिशय ममत्व से युक्त होता है, भाव अति सान्द्र होकर प्रेम होता है। पञ्चरात्र में उक्तहै—विष्णुमें अनन्य ममता को भीष्म प्रह्लाद उद्धव नारद आदि ने प्रेम भक्ति कहा है। भ० र० सि० १।४।१५-१६।

प्रथम, श्रद्धा ततः साधुसङ्ग अनन्तर भजन क्रिया, अनर्थ निवृत्ति, निष्ठा रुचि, आसक्ति, भाव प्रेम क्रम पूर्वक होता है, प्रेम आविर्भाव के लिए यह क्रम ही रागानुगीय मार्ग सम्मत है।

३४ अनन्तर श्रीकृष्ण विषयिणी रति की रस रूपता को कहते है--सामग्री के द्वारा पुष्ट होकर उक्त रति रस रूपता को प्राप्त करती

विभावैरनुभावैश्च सात्त्विकैर्व्यभिचारिभिः ।
स्वाद्यतां हृदि भक्तानामानीता श्रवणादिभिः ।
एषा कृष्णरतिः स्थायी भावो भक्तिरसो भवेत् ।
प्राक्तन्याधुनिकी चास्ति यस्य सद्भक्तिवासना ।
एष भक्तिरसास्वादस्तस्यैव हृदि जायते ॥

( भ० र० सि० २।१।१० )—
कृष्णादिभिर्विभावाद्यैर्गतैरनुभवाध्वनि ।
प्रौढ़ानन्द-चमत् कारकाष्ठामापद्यते पराम् ॥

तथा हि श्रूतिः ( तै० उ० व्र० १म० अनु० )—
'रसो वै सः, रसं ह्य वायं लब्ध्वानन्दीभवति ' इति ।
उपपतौ परकीयायामेव रसोत्कर्षः; अतएव श्रीमदुज्ज्वल-
नीलमणौ ( नायकभेद १९ )-
अत्रैव परमोत्कर्षः शृङ्गारस्य प्रतिष्ठितः '

है। विभाव अनुभाव सात्त्विक व्यभि चारि के द्वारा भक्त हृदय में कृष्ण रति आस्वादनीयता की प्राप्त करतीहै, यह श्रवणादि से सम्पन्न होता है, श्रीकृष्ण विषयक स्थायी भाव ही भक्ति रस होता है। पूर्व जन्म एवं इस जन्म में जिस की सद्भक्ति वासना है, उस के हृदय में ही कृष्ण रसास्वाद होता है। भ० र० सि० २।१।१०
कृष्णादि विभावादि के द्वारा अनुभव पथारूढ़ चित्तहोने पर चित्त प्रौढ़ानन्द चमत्कार की परम सीमा में पँहुच जाता है। श्रुति तै० उ० व्र० ७म० अनु० वह ही रस कहलाता है, वह रस को ही प्राप्त कर आनन्दित होता है। उपपति में एवं परकीया में रसका परम उत्कर्ष है, अतएव उज्ज्वलनीलमणि के नायक भेद प्रकरण में उक्तहै १९—यहाँपर ही शृङ्गार का परमोत्कर्ष प्रतिष्ठितहै, टीका-श्रीजीव गोस्वामीकी यहाँपर ही उपपतिमें ही, भरतमुनिनेकहाहै-नायक भेद २०-२१ ) जहाँ अनेक वाधाएँ हैं, जहाँ प्रच्छन्न कामुकता है, जहाँपर नायक नायिका में परम दुर्लभता है, मन्मथ का एक मात्र

टीका—अत्रैव उपपतौ तथा च भरतेन ( नायकभेद० २०-२१)—

'वहु वार्य्यते यतः खलु, यत्र प्रच्छन्नकामुकत्वञ्च ।
या च मिथो दुर्लभता, सा मन्मथस्य परमा रतिः ॥
लघुत्वमत्र यत् प्रोक्तं तत्तु प्राकृतनायके ।
न कृष्णे रसनिर्यासस्वादार्थमवतारिणि ॥'

पुनस्तत्रैव ( हरिप्रिया० १६)—

कन्यकाश्च परोढ़ाश्च परकीया द्विधा मताः ।
व्रजेशव्रजवासिन्य एताः प्रायेण विश्रुताः ॥

तथाहि रुद्रः ( उ० नी० हरिप्रिया० ३।२०-२३ )—

वामता दुर्लभत्वञ्च स्त्रीणां या च निवारणा ।
तदेव पञ्चवाणस्य मन्ये परममायुधम् ॥

विष्णुगुप्तसंहितायां च—

यत्र निषेध-विशेषः; सुदुर्लभत्वञ्च यन्मृगाक्षीणाम् ।
तत्रैव नागराणाञ्च, निर्भरमासज्जते हृदयम् ॥

विश्रामस्थल वह ही है। उपपति में लघुता जो कही जाती है, वह तो प्राकृत नायक में प्रयोज्य है, कृष्ण में नहीं, कारण रस निर्यास आस्वादन के लिए वह सपरिवार अवतीर्ण होते हैं। उज्ज्वल में हरिप्रिया १६ प्रकरण में परकीया—कन्या परोढ़ा भेद से दो प्रकार हैं। नन्दव्रज में यह सव प्रसिद्ध है। रुद्र ने कहा है उ० नी० हरि प्रिया ३।२०—२३ जहाँपर स्त्रियों की वामता दुर्लभता निवारणा भी रहती है, वह ही कन्दर्प का परम आयुध है। विष्णु गुप्त संहिता में उक्त है—जहाँपर निषेध विशेष एवं ललना की सुदुर्लभता है, नागर

के हृदय की परम आसक्ति वहाँपर ही होती है, परकीया के विषय में अधिक प्रमाण की आवश्यकता ही क्याहै, जिसका वर्णन महामुनि श्रीशुकने पारमहंस्य संहिता में स्वयं हि किया है। श्रीभा० १०। ३३।१६ जितनी गोपस्त्री रहीं उतने वपुसे भगवान् आत्माराम होकर भी लीलासे रमण किये। टीका श्रीजीवकी, गोपों की योषित इससे

आः किम्वान्यद्यतस्तस्यामिदमेव महामुनिः।
जगौ पारमहंस्याञ्च संहितायां स्वयं शुकः॥

यथा (श्रीभा० १०।३३।१६)
'कृत्वा तावन्तमात्मानं यावतीर्गोपयोषितः।
रराम भगवांस्ताभिरात्मारामोऽपि लीलया॥'

टीका—
गोपानां योषित इति तासां स्पष्टमेव परकीयात्वम्।
(श्रीभा० १०।२६।८)—
'ता वार्य्यमाणाः पतिभिः पितृभिर्भ्रातृवन्धुभिः' इति;
(श्रीभा० १०।२६।३२)—
'यत्पत्यपत्यसुहृदामनुवृत्तिरङ्ग
स्त्रीणां स्वधर्म इति धर्म्मविदा त्वयोक्तम्' इति;
(श्रीभा० १०।२६।२२, २४)—

परकीयात्व सुस्पष्ट हुआ। श्रीभा० १०।२६।८, अभिसार के समय गोपीगण पति पिता भाई वन्धुओं से वाधा प्राप्त हुई थीं, श्रीभा० १०।२६।३३ हे भैया तुमने कहा कि पति अपत्य सुहृद् की सेवा करना स्त्रियों का स्वधर्म है, इस से पता चला तुम धर्मज्ञ हो। भा० १०। २६।२२।२४—कृष्ण ने रात में गोपाङ्गना को घर से यमुना पुलिन में लाकर कहा जल्दी चलीजाओ पति सेवा स्त्री के लिए परम धर्म है, और तुम सब तो सती हो, वालक घर में रो रहे हैं, लाली भी रोती रहतीं है। उन सव को खिलाओ पिलाओ, और देखो! अमाया से पति की शुश्रूषा करना स्त्रीके लिए परम धर्म है। भा० १०।२६। २६ अस्वर्ग्य अयशस्कर तुच्छ, क्लेश कर, भयङ्कर, एवं सर्वत्र निन्दनीय है, कुल स्त्रीयों के लिए औपपत्य वहाँपर ही भा० १३।३३। २७ यदुपति धर्मसेतु का वक्ता कर्त्ता रक्षक हैं, हे ब्रह्मन्! परदारा भिमर्षण रूप पापाचरण आपने क्यों किया? तथा श्रीएकादश में भा० ११।१२।१३ कृष्णने कहा मुझ को जार रमण, अवलागण

तद्यात मा चिरं गोष्ठं शुश्रूषध्वं पतीन् सतीः ।
क्रन्दन्ति वत्सा बालाश्च तान् पाययत दुह्यत ।।
भर्त्तुः शुश्रूषणं स्त्रीणां परो धर्म्मो ह्यमायया ' इति;

( श्रीभा० १०।२९।२६ )—

अस्वर्ग्यमयशस्यञ्च फल्गु कृच्छ्रं भयावहम् ।
जुगुप्सितञ्च सर्वत्र ह्यौपपत्यं कुलस्त्रियाः ।।

तत्रैव ( श्रीभा० १०।३३।२७ )—

स कथं धर्म्मसेतूनां वक्ता कर्त्ताभिरक्षिता ।
प्रतीपमाचरद् ब्रह्मन् परदाराभिमर्षणम् ।।

तथा श्रीएकादशे ( श्री भा० ११।१२।१३ )—

' मत्कामा रमणं जारमस्वरूपविदोऽबलाः' इति;

पद्मपुराणे च—

' गोपनारीभिरनिशं यत्र क्रीड़ति कंसहा';

क्रमदीपिकायाञ्च—

' गो-गोप-गोपवनितानिकरैः परितम्, इति;

बृहद्गौतमीयतन्त्रे च—

' अत्र या गोपपत्न्यश्च निवसन्ति ममालये';

श्रीगोपालस्तवे—

' विचित्राम्बरभूषाभिर्गोपनारीभिरावृतम् ' इति;

बृहद्वामने च—

' जारधर्म्मेण सुस्नेहं सर्वतोऽधिकमुत्तमम् ।
' मयि संप्राप्य सर्वोऽपि कृतकृत्यो भविष्यति ।।' इति ।

जानती थी, पद्म पुराण में—कंसहा-जहाँपर निरन्तर गोपनारीओं के साथ क्रीड़ा करते हैं। क्रमदीपिका में—गो गोप गोप वनिता निकर के साथ । बृहद् गौतमीय तन्त्र में यहाँपर जो भी गोपपत्नी रहती हैं। श्रीगोपाल स्तव में विचित्र अम्बर भूषा के द्वारा शोभित गोपनारीओं से वेष्टिता बृहद्वामन पुराण में जार धर्म से सर्वतोऽधिक

३५ अथ श्रीरासपञ्चाध्यायी-श्रीवृहद् वैष्णवतोषण्यां श्री सनातन गोस्वामिचरणैरुक्तम् ( श्रीभा० १०।२२।२१ )—

'याताबला व्रजं सिद्धा मयेमा रंस्यथ क्षपाः।
यदुद्दिश्य व्रतमिदं चेरुरार्य्यार्च्चनं सतीः॥'

टीका—( श्रीभा० १०।१२।२६-२७ )—"भर्जिताः क्वथिता धानाः प्रायो वीजाय ( फलान्तरोत्पादनाय ) नेशते; किन्तु स्वयं भोग्यतापत्त्या सद्य एव परमसुखाय समर्था भवन्तीत्यर्थः। इत्येवं पतित्वेन प्रेमविशेषासिद्धेरुपपतित्वेनैव तत् संसिद्धेरिति भावः। तदेवाह— यातेति। हे अवला इत्यातिवाल्यं सूचयति। अतोऽधुना रत्ययोग्या इति भावः। यद्वा, पूर्वोक्तन्यायेन सर्व्वतोऽधिकशक्ति-मत्य इत्यर्थः। प्रकारविशेषेण मद्वशीकारविशेषात्, यतः सिद्धाः सम्पन्नकामित्वात्तदतीतफला इत्यर्थः। इमा निकट एवैष्यच्छरत्-

उत्तम सुस्नेह होता है, इस से ही मुझ को प्राप्तकर सब कृतकृत्य होंगी॥

३५ श्रीरास पञ्चाध्यायी की श्री वृहद् वैष्णवतोषणी में श्रीसनातन गोस्वामी चरण ने कहा-भा० १०।२२।२७। अवलागण, तुम्हारे मनो रथ पूर्ण हो चुके हैं, आगामी रात्री में मेरे साथ रमण होगा, जिस के लिए तुम सब ने व्रत किया। टीका—धान को भुंजकर कूटकर वोने से अङ्कुर उत्पन्न नहीं होता है। किन्तु स्वयं आस्वादन योग्य होता है। अतएव कृष्ण को पति रूपसे वरण करने पर विशेष प्रेम नहीं होगा, केवल उपपति भाव से ही विशेष ममत्व होगा। उस को ही कहते हैं। यातेति। अति वाल्य के कारण ही अवला सम्वोधन किया। अत इस समय रति की योग्यता नहीं है। अथवा अवला शब्द का अर्थ —सब से अधिक शक्तिमती, प्रकार विशेष से मेरा वशी करण किया है। अतएव सम्पन्न मनोरथ है। सन्निकट वर्त्ति शरत् रजनी में ही मनोरथ पुर्ण होगा, अथवा हेमन्त ऋतु के उत्तर मास में पूर्ण मनोरथ होगा। यदि कहो कि हमने तो पति

कालीना इति तासां विदूरवर्त्तित्वेऽपि इमा इति सन्निहिततया उक्तिः सान्त्वनार्था । अन्यत् समानम्। यद्वा, हेमन्तस्योत्तर–मास--सम्बन्धिनीरागामिनीः क्षपाः मया सह रमणं प्राप्स्यथ इति । ननु अस्मत्सङ्कल्पितं त्वयोद्वहन-सुखं सिध्यतु, तेन रासक्रीड़ादिषु सुखञ्च सम्पद्यताम् ? तत्राह—यदिति, यदुद्दिश्य आर्य्यायाश्चिच्छक्तेः कात्यायन्या अर्च्चनं व्रतं चेरुर्भवत्यः, तदिदं मयोक्तमौपपत्येन रास-क्रीड़ादिसुखमेवेत्यर्थः। विवाहेन पतित्वे रासक्रीड़ादि-सुखविशेषो न संपद्यत इति भावः। सतीः हे सत्य इति ओपपत्येऽपि यूयं सर्व्वथाः साध्व्य एव, मदेकमात्रनिष्ठत्वादिति भावः। तत्त्वतोऽनौपपत्यात्, विवाहिताभ्योऽप्यधिकप्रियत्वात्। यद्वा, सतीरिति क्षपाविशेषणम्, उत्तमा रासानन्दाविर्भाविकाः शारदाः शीतोष्णादिरहिता ज्योत्‌-स्नाश्चेत्यर्थः। यद्वा, तत् क्रीड़ामाहात्म्यमेवाह,—यद्‌यस्मात् सत्यो लक्ष्मीधरण्यादयः। इदं रासक्रीड़ादिसुखमुद्दिश्य आर्यार्च्चनव्रतं चेरुरेव, न तु तत्सुखं प्रापुरित्यर्थः। यद्रमणमिदं व्रतम्; अन्यत् समानम्।"

रूप में प्राप्त करने के लिए व्रत किया है, अतएव विवाह विधि से ही हमें ग्रहण करो, धर्म पत्नी करो, और उस से रास क्रीड़ा सुख भी होगा। इस के उत्तर में कहते हैं। जिस के उद्देश्य से चिच्छक्ति रूपा कात्यायनी की तुम सबने अर्चना की, वह तो मेरे साथ औपपत्य से ही रास क्रीड़ा करने के लिए, उपपति से ही सुख विशेष होता है; विवाह से पति होने पर रास क्रीड़ा भी नहीं होगी और सुख विशेष भी नहीं हीगा। सतीः हेसत्य, तुम सब के औपपत्य होने पर भी तुम सब परम पतिव्रता हो, मेरे प्रति सब की अविचल निष्ठा है। तत्त्व से तो औपपत्य है ही नहीं विवाह से भी अधिक प्रियता है। अथवा सती रात्रीका विशेषणहै, उत्तम रासानन्दके लिए उत्तम शारद रजनी है, शीतोष्णादि रहित है। ज्योत्स्ना भी है, इस रास क्रीड़ा सुख के लिए ही तो तुमने आर्यार्च्चन व्रताचरण किया, उसका सुख तुम्हें नहीं मिला, कारण यह व्रत रमण के लिए ही है।

३६ श्रीमज्जीवगोस्वामिचरणैः—अथ व्रजे प्रकटायाञ्च श्रीकृष्णस्यौपपत्यं नित्यम्, श्रीराधिकादीनाञ्च परकीयात्वं नित्यम्; तयोः स्वरूपेण द्वैविध्यं नास्ति; किन्तु अप्राकृतद्वापरे प्राकृतद्वापरस्य मिलने स्वयंरूपे श्रीनन्दनन्दने वसुदेवनन्दनादिषु प्रकाशेषु मिलितेषु सत्सु लीलायाः प्राकट्यं भवति; यथोक्तमाकरे ( लघुभाग० १।७१७ )—

' प्रपञ्चगोचरत्वेन सा लीला प्रकटा मता।
अन्यास्त्वप्रकटा भान्ति तादृश्यस्तदगोचराः ॥' इति;

किञ्च, श्रीकृष्णस्यौपपत्याभावे रसोत्कर्षाभावः स्यात्; यथाकरे ( उज्ज्वले नायकभेद० १९, २१ )—

अत्रैव परमोत्कर्षः शृङ्गारस्य प्रतिष्ठितः' इति;
लघुत्वमत्र यत् प्रोक्तं तत्तु प्राकृतनायके।
न कृष्णे रसनिर्य्यासस्वादार्थमवतारिणि ॥

३६ श्रीमज्जीव गोस्वामी चरण ने कहा है—व्रज में प्रकट में श्रीकृष्ण का औपपत्य नित्य है, श्रीराधिका प्रभृति का परकीयात्व भी नित्य है। कृष्ण राधा के स्वरूप में दो प्रकार नहीं है। किन्तु अप्राकृत द्वापर में प्राकृत द्वापर का जब मिलन होता है, तब स्वयं रूप श्रीनन्दनन्दन में वसुदेवनन्दन प्रभृति प्रकाश के मिलन से लीला का प्राकट्य होता है। लघु भागवतामृत में उक्त है ( १।७१४ ) जो लीला प्रपञ्च में देखी जाती है, वह प्रकट है, और जो लीला नहीं देखी जाती है, वह अप्रकट कहलाती है। और भी कृष्ण के साथ उपपति सम्वन्ध न होने पर रसोत्कर्ष होगा ही नहीं, उज्ज्वल में ( नायक भेद १९–२१ ) कहा है। शृङ्गार रस का परमोत्कर्ष उपपति में ही प्रतिष्ठित है, उपपति को लघुकहा गया है। वह कथन प्राकृत नायक पर है, कृष्ण के प्रति प्रयोज्य नहीं है, कारण कृष्ण रसास्वाद को सूचित करने के लिए ही सपरिकर आविर्भूत हुये हैं। इस से श्रृङ्गार की परमोत्कर्षता के लिए औपपत्य का होना एकान्त प्रयोजनीय है। लघुत्वं इसका अर्थ इस प्रकार है=प्राकृत नायक

इत्यनेनौपपत्यस्य—शृङ्गार--परमोत्कर्षत्वेन—परम—प्रयोजकत्वम् ।

लघुत्वमित्यस्यार्थः—प्राकृतनायके प्राकृतौपपत्ययुक्तप्राकृतोपपतौ; तत्र हेतुः—रसनिर्य्यास-स्वादार्थमवतारिणि स्वादो रुच्यर्थः; अवतारिणि औपपत्यस्याप्राकृतत्वेन नित्यत्वात् प्रकटितौपपत्ये; अथवा, अवतारिणि अवतारावलीवीजे, अवतारे लघुत्वं नास्ति; किमुतावतारिणि; यद्वा, 'प्रकाशस्तु न भेदेषु गण्यते स हि नो पृथक्' इति न्यायेन, 'यत्तु गोलोकनाम स्यात्तत्तु गोकुलवैभवम्' इति न कृष्णे, न गोलोकनाथे, अतएव सर्व्वप्रकाशमूलभूत--पूर्णतमप्रकाशे नन्दनन्दने प्रविश्यावतारिणि अवतारशीले ।
तथा हि श्रीचैतन्यचरितामृते ( आदि० ४र्थप० )—

में--प्राकृत उपपति युक्त प्राकृत उपपति में । प्राकृत में काम भोग व्यभिचार शास्त्र मर्यादा लङ्घन है, कृष्ण में निवृत्ति मार्ग की शिक्षा है । हेतु यह है—रस निर्यास आस्वादन करन के लिए अवतार में, स्वाद शब्द का अर्थ रुचि है, अवतारिणि--औपपत्य अप्राकृत होने के कारण नित्य है, प्रकटित उपपति में । अथवा अवतारिणि, अवतारा वलीवीजे, अवतार में लघुत्व हो ही नहीं सकता, कृष्ण तो अवतारी हैं । अथवा प्रकाश में भेद नहीं मानते हैं । वह पृथक् नहीं है । गोलोक को तो गोकुल का वैभव माना जाताहै, न कृष्णे न गोलोक नाथे, गोलोकनाथ मैंने अतएव सर्व प्रकाश मूल मूत पूर्णतम प्रकाश नन्दनन्दन में प्रविष्ट होकर अवतार होने पर ।। चैतन्य चरितामृत आदि के चतुर्थ में—गोपी और मेरा सम्बन्ध उपपति का निर्वाह योगमाया करेगी । मैं नहीं जानता हूँ, और गोपी भी नहीं जानेगी परस्पर के रूपगुण से परस्पर के मन परस्पर में आकृष्ट होगा । प्रकट लीला के अनुसार यह वाक्य गोलोक नाथ का है । उज्ज्वल के नायिका भेद प्रकरण में उक्त है—अङ्गीरस में कविगण परोढ़ा को स्वीकार नहीं करते हैं । किन्तु यह नियम व्रजाङ्गना को छोड़कर

"मो-विषये गोपीगणेर उपपतिभावे ।
योगमाया करिवेक आपन-प्रभावे ।।
आमिह ना जानि आर ना जाने गोपीगण ।
योगमाया करिवेक सकलि घटन * ।।"

इति च प्रकटलीलानुसारेण गोलोकनाथवाक्यमिति । तथा (उ० नी० नायिकाभेद० ३)—

'नेष्टा यदङ्गिनि रसे कविभिः परोढ़ा
तद् गोकुलाम्बुजदृशां कुलमन्तरेण ।
आशंसया रसविधेरवतारितानां
कंसारिणा रसिकमण्डलशेखरेण ।।'

इत्यस्यार्थः—कविभिः परोढ़ा यदङ्गिनिरसे नेष्टास्तद् गोकुलाम्बुजदृशां कुलमन्तरेण विना; तत्र हेतुः—स्वेन नित्यमास्वाद्यमानस्य रसनिर्य्यासस्याशंसया प्रपञ्चगत-भक्तकर्त्तृकास्वादनेच्छयावतारिताना मनादितया परमप्रेयसीत्वेनात्मनः पृथक्त्वेन प्रकाशितानामिति ।

ही प्रयोज्य है । उस में हेतु जिस रस का आस्वादन करते हैं उस रस निर्यासको प्रपञ्चान्तर्गत भक्तोंको ज्ञापित करनेके लिए अनादि कालसे नित्य प्रेयसी रूप में रहती हैं, उन सब को अपने से पृथक् रूप में प्रकाश किया है, अर्थात् अवतरण कराया है, भा० ११।१२।१३ में उक्त है, अबलागण मुझे न जान कर जार एवं रमण जानकर ही मुझ को प्राप्त किया, मैं परम ब्रह्म हूँ-आवेश से मेरा सङ्ग निरन्तर हुआ कारण यह है कि—औपपत्य में लोक विरुद्ध एवं धर्म विरुद्ध की कथा है, वह वहाँपर नहीं है, लौकिक में लघुता है, लोक विरुद्ध धर्म विरुद्ध भी है, जहाँपर लोक विरुद्ध धर्म विरुद्ध नहीं है, वहाँपर बहु निवारणादि ही शृङ्गार रसास्वादन के हेतु है, और उस से शृङ्गार का परम उत्कर्ष होता है, लौकिक औपपत्य में परदार गमन मन से भी कभी न करे, शास्त्र विरुद्ध होने से पाप होता है, धर्म विरुद्ध होने से निन्दा होती है, लज्जाकर एवं लोक विरुद्ध भी है । अतएव लौकिक औपपत्यके सम्बन्ध में श्रीकृष्ण ने कहा सुख यश हीन

अतएव एकादशे ( श्रीभा० ११।१२।१३ )—

'मत्कामा रमणं जारमस्वरूपविदोऽवलाः ।
ब्रह्म मां परममापुः सङ्गात् शतसहस्रशः ॥'

अस्य व्याख्या-स्व-दशश्लोकीभाष्ये कृतैव । तत्रेदं वीजम्—यत्रौपपत्ये लोकविरुद्धं धर्म्मविरुद्धञ्च, तत्रैव लघुत्वम्; यत्र तु तदुभयाभावस्तत्र वहुनिवारणादिहेतुभिः शृङ्गारस्य परमोत्कर्षता। तत्र लौकिकौपपत्ये—'परदारान्न गच्छेच्च मनसापि कदाचन' इति शास्त्रविरुद्धत्वेन पाप-सम्भवाद् धर्म्मविरुद्धमतएव निन्दासम्भवात्-लज्जाकरत्वेन लोकविरुद्धत्वञ्च। अतः स्वयं श्रीकृष्णेनापि ( श्रीभा० १०।२९।२६ )—

'अस्वर्ग्यमयशस्यञ्च फल्गु कृच्छ्रं भयावहम् ।
जुगुप्सितञ्च सर्वत्र ह्यौपपत्यं कुलस्त्रियाः ॥'

इत्यनेन तस्यैवाऽस्वर्ग्यादिकमुक्तम् । श्रीव्रजदेवीभिरपि

फल्गु कृच्छ्र, भयावह निन्दनीय औपपत्य को निषेध किया व्रज देवीओं ने भी कहा भा० १०।४७।७ गणिका धन हीन को छोड़देती है, जारगण रतिभुक्त स्त्री को छोड़देते हैं, श्रीकृष्ण में शास्त्र विरोध न होने से पाप की सम्भावना भी नहीं है और धर्म विरुद्ध भी नहीं है, अत लोक विरुद्ध भी नहीं है, किन्तु लोक में परम उपादेय होने के कारण आदर्श ही है, वहु निवारणादि होने से शृङ्गार का परमोत्कर्ष होता है, व्रजाङ्गनागण परम दुःख लोकलज्जा को भी न मानकर कृष्ण प्रीति के उद्देश्य से प्रवृत्त होतीं हैं, सकल शास्त्र का फल ही श्रीकृष्ण प्रीति है। भा० १०।३३।२९, यहाँपर पर दारा भिमर्शन से धर्म लङ्घन तो हुआ, समर्थ व्यक्तिगण वैसा करते भी हैं, तेजीयान् के लिए दोषावह नहीं है, वह्नि में भक्ष्याभक्ष्य विधान नहीं होता है, यह सव वचन से प्रमाणित होताहै कि वह कार्य धर्म विरुद्ध नहीं है, भा० १०।३८।८ में परकीयात्व का भी वर्णन है, अनुचरगण के साथ गोपिका के कुच कुङ्कुमाङ्कित चरण से वन वन में भ्रमण करते हैं, इस प्रकार अक्रुर ने श्रीकृष्ण के औपपत्य का उल्लेख

(श्रीभा० १०।४७।७ )—'निःस्वं त्यजन्ति गणिका जारा भुक्त्वा रतां स्त्रियम्' इति तस्यैवोल्लेखः कृतः। श्रीकृष्णे तु शास्त्रविरोधाभावेन पापासम्भावान्न धर्म्मविरुद्धत्वम्; अतएवानिन्द्यत्वेन लज्जाद्य--सम्भवान्न लोकविरुद्धत्वञ्च; प्रत्युत लोके सुष्ठूपादेयत्वमेवेति वहु-निवारणादि--हेतुभिः शृङ्गारस्य परमोत्कर्षतेति तासां परमदुःसह-लोकलज्जानादरेण तदेकप्रीत्या प्रवृत्ते-रवगमात्; तत् प्रीतेश्च सर्व-शास्त्रफलरूपत्वात्। तत्र श्रीभा० १०।३३।२९ )

धर्म्मव्यतिक्रमो दृष्ट ईश्वराणाञ्च साहसम्।
तेजीयसां न दोषाय वह्नेः सर्वभुजो यथा॥'

इत्यादि–वचन-प्रामाण्यात् न धर्म्म-विरुद्धमपि; यथा (श्रीभा० १०।३८।८ )—

'गोचारणायानुचरैश्चरद्वने
यद् गोपिकानां कुचकुङ्कुमाङ्कितम्'

किया है, आप पितृव्य थे और आपका दास भाव था, उस प्रकार कहना ठीक नहीं था, किन्तु अत्यन्त उपादेयता के कारण ही आपने कहा है। यदि कहो कि प्रीति विशेष का उल्लेख ही अक्रूर ने किया है, ऐसा नहींहै, प्रीति विशेष वाचक शब्द का प्रयोग उसमें नहीं है। श्रीभागवत आदि पुराणों में तथा नाना जातीय मुनिराज सभा प्रभृति में औपपत्य प्रतिपादिका रास लीलाका गान हुआ है। वह अतिशय उपादेयता के कारण ही है। केवल औपपत्य से नहीं, गोपिका की प्रवृत्ति भी कृष्ण के सुख के लिए ही रही, १०।३१।१९ यत्ते सुजात में प्रकाश हुआ है। सकल शास्त्र का फल ही श्रीकृष्ण में प्रीति है, १०।२९।३३ में गोपिका ने कही-कुशल व्यक्तिगण तुम्हारे प्रति प्रीति करते हैं, कुशल शब्द का अर्थ है, शास्त्रनिपुणव्यक्तिगण। परकीया का उदाहरण उज्ज्वलनीलमणि हरिप्रिया प्रकरण १८ में-है-राग के प्रादुर्भावसे जिन्हों ने साधु मार्ग की चरम सीमा का उल्लङ्घन किया है, तथापि अरुन्धती प्रमुख महासती वृन्द अतिशय श्रद्धा के

इत्यत्र यदक्रूरेण श्रीकृष्णस्यौपपत्यस्योल्लेखः कृतः, तत् खलु पितृव्यत्वेन दासत्वेन, चेत्युभयथा न युज्यते, किन्तु उपादेयत्वेनैव। न च प्रीतिविशेषोल्लेख एव कृत इति वक्तव्यम्, तद्वाचकशब्दस्यानुपादानात्। यत् खलु श्रीभागवतादि-पुराणेषु नानाजातीय-मुनिराज सभादिषु तदौपपत्यप्रतिपादिका रासलीला गीयते, तत्तु सुष्ठूपादेयत्वेनैव, नान्यथा। तासां तदेकसुखार्थंप्रवृत्तिस्तु (श्रीभा १०।३१।१९ 'यत्ते सुजात' इत्यादि श्रीभागवतोक्तेः। तत्प्रीतेः सर्व्वशास्त्र फलरूपत्वं यथा तत्रैव ( श्रीभा० १०।२९।३३ )–' कुर्वन्ति हि त्वयि रतिं कुशलाः ' इति, 'कुशलाः शास्त्रनिपुणाः ' इति टीका च।

परकीयात्वञ्चोदाहरति चाकरे (श्रीउ० नी० श्रीहरिप्रिया० १८)

' रागोल्लासविलङ्घितार्य्य-पदवीविश्रान्तयोऽप्युद्धुर-
श्रद्धारज्यदरुन्धतीमुखसतीवृन्देन वन्देयहिताः।
आरण्या अपि माधुरी-परिमलव्याक्षिप्तलक्ष्मीश्रिय-
स्तास्त्रैलोक्यविलक्षणा ददतु वः कृष्णस्य सख्यः सुखम् ॥'

साथ जिनकी कुञ्जाभिसारादि चेष्टाकी शतशः पूजा—प्रशंसा करती रहतीं हैं, वनवासिनी होने पर भी माधुर्य्यातिशयसे जिन्होंने लक्ष्मी की श्री को भी विश्री करदिया है। उक्त विशेषण चतुष्टय के द्वारा विरोधालङ्कार से गोपीगण परम पातिव्रत्य परम सौन्दर्य-माधुर्य-वैदग्धी प्रभृति गुणराजि के आश्रय हैं, अतएव जो सव त्रिभुवन विलक्षणा, अर्थात् अनुपमा है, वह कृष्ण प्रिया सखीगण तुम सव को सुख प्रदान करें। यहाँपर सखी शब्द से उन सव के श्रीकृष्ण के समान नित्यगुण शालित्व, नित्य कृष्ण सहचारित्व, परम सौभाग्य भाजनत्व द्योतित हुआ है। वे सव कौन हैं ? इस के उत्तर में कहते हैं उ० नी हरि प्रिया १९-कन्यका परोढ़ा भेद से परकीया दो प्रकार हैं। परमोत्कर्ष को कहते हैं ) उ० नी० हरि प्रिया० १९। यहाँपर ही गोकुलेन्द्र की प्रच्छन्नकामता होती है, जो उन सव के लिए सुखकर है। अत्र-परकीया विशेष में। अत

इति । कास्ता इत्यपेक्षायामाह, ( श्री उ० नी० श्रीहरिप्रिया० १६)-

' कन्यकाश्च परोढ़ाश्च परकीया द्विधा मताः '

परमोत्कर्षमाह, श्रीउ० नी० श्रीहरिप्रिया० १६)-

' प्रच्छन्नकामता ह्यत्र गोकुलेन्द्रस्य सौख्यदा ;

अत्र—परकीयात्वविशेषे इति । तस्मात् श्रीकृष्ण-तद्धामसमय-परिकर-लीलादीनां सर्वलौकिकातीतत्वेऽपि यथा लोकवल्लीलायां सच्चिदानन्दमय-श्रीविग्रहे मूत्र पुरीषोत्सर्गादिकं स्वीक्रियते, तथा तल्लीलापरिकररूपाभिर्मन्वादिभिः पाणिग्रहणे को दोषः, सङ्गमे तु दोष एव, स च नास्ति; यथा ( श्रीउ० नी० श्रीहरिप्रिया० ३२ )

' न जातु व्रजदेवीनां पतिभिः सह सङ्गमः' इति;

अतएव ( श्रीभा० १०।३३।३७ )—

' मन्यमानाः स्वपार्श्वस्थान् स्वान् स्वान् दारान् व्रजौकसः'

इति पार्श्वस्थान्, न तु सङ्गमोचितशय्यास्थानिति । तथापि योगमायया विवाहोचितं लौकिकवैदिकं कर्म्म कारयित्वा पाणिग्रहणं प्रत्यायितम् ।

श्रीकृष्ण, उनके धाम समय परिकर लीला समूह सर्व लोकातीत होने पर भी जिस प्रकार लोकवल्लीला में सच्चिदानन्द विग्रह में भी मूत्र पुरीषोत्सर्ग देखा जाता है, उस प्रकार उनके लीला परिकर अभिमन्यु के साथ पाणि ग्रहण संस्कार से कोई दोष नहीं है, सङ्गम में दोष होता है, किन्तु व्रजलीला में सङ्गम है ही नहीं, सब गोपाङ्गना रजो हीन होती है । अतएत कभी भी पति के साथ व्रज देवियों का सङ्गम होता ही नहीं । अतः भा० १०।३३।३७ व्रजवासिगण निज निज धर्म पत्नी को निज निज निकटमें देखकर खुशी होते थे । निकट में किन्तु सङ्गमोचित शय्या में नहीं । योगमाया ने विवाह के उचित जो भी लौकिक वैदिक कर्म होता है, सब कुछ यथा विधि करवाकर ही पाणि ग्रहण संस्कार सम्पन्न किया था । भा० १०।३३।३७ श्लोक के विवरण से वैसा ही ज्ञात हुआ। और भी गोकुल का

किञ्च, गोकुलस्य प्रकटाप्रकटरूपेण प्रकाश-द्वैविध्यस्वीकारे सति लीलाया द्वैविध्यं स्यात्; तयो: स्वरूपेण द्वैविध्यस्याभाव:। अत: श्रीराधिकादिभि: सार्द्धं प्रकटविहारेऽपि श्रीकृष्णस्याधोक्षज-त्वात्तत् परिवार-समय-लीलादीनां तत्स्वरूपशक्तिविलासत्वेन तत्-समान धर्म्मत्वाच्च तस्य तेषाञ्च प्रपञ्चेन्द्रियाविषयत्वमप्राकट्यम् तत: स्वयं प्रकाशत्वशक्त्या स्वेच्छाप्रकाशया 'सोऽभिव्यक्त्यो भवेन्नेत्रे न नेत्रविषयस्त्वत:' इति निर्द्धारणात् तस्य तेषाञ्च प्रपञ्चे-न्द्रियविषयत्वं प्राकट्यम्। अतएव श्रीलघुभागवतामृते (१।६६८-९)

'यदद्यापि दिदृक्षेरन्नुत्कण्ठार्त्ता निजप्रिया:।
तां तां लीलां तत: कृष्णो दर्शयेत्तान् कृपाम्बुधि:॥
कैरपि प्रेमवैवश्यभाग् भिर्भागवतोत्तमै:।
अद्यापि दृश्यते कृष्ण: क्रीड़न् वृन्दावनान्तरे॥'

इत्यत्रैव वृन्दावने लीलाया: प्रपञ्चागोचराया: साक्षाद्दर्शनम्। अप्रकटवृन्दावनसत्तापक्षे तु 'ब्रह्महृदनीता: इतिवदत्र तस्य साक्षाद्-

प्रकाश—प्रकट अप्रकट रूप से दो प्रकार मानने पर लीला भी दो प्रकार होगी, किन्तु राधा कृष्ण के स्वरूप दो प्रकार नहीं है, अतएव राधिकादि के साथ प्रकट विहारके समय भी श्रीकृष्ण अधोक्षज होने के कारण, उन के परिकर-समय लीलादि भी उनकी स्वरूप शक्ति के ही विलास है, अत: वे सव उन के समान धर्मी है, अत: वे सव प्रपञ्च इन्द्रिय का विषय नहीं होते हैं, अतएव अप्रकट कहा जाता है। स्वयं प्रकाशशक्ति के द्वारा, एवं स्वेच्छा प्रकाश से ही श्री कृष्ण नेत्र गोचर होते हैं, वे नेत्र के विषय नहीं होते हैं, इस प्रकार ही सिद्धान्त है, जव प्रपञ्चेन्द्रिय विषय होते हैं, तव ही प्राकट्य कह लाते हैं। अतएव श्रीलघु भागवतामृत में १।६६८-९ में उक्त है- वस्तु प्राप्ति के लिए महती उत्कण्ठा कारण है, अत: कृपाम्वुधि प्रभु उत्कण्ठित व्यक्ति को दर्शन देतेहैं, प्रेम विवश भागवतोत्तम व्यक्तिगण आज भी वृन्दावन में ही प्रपञ्च की अगोचर लीला का साक्षाद् दर्शन करते हैं। अप्रकट वृन्दावन की सत्ता मानने पर ब्रह्महृद में गोलोक

दर्शनानुपपत्तिः।

किञ्चाप्रकटवृन्दावनस्य सत्त्वे ( उत्कलिकावल्लरी ६६ )—

'प्रपद्य भवदीयतां कलित-निर्म्मलप्रेमभि-
र्महद्भिरपि काम्यते किमपि यत्र तार्णं जनुः।
कृतात्र कुजनैरपि व्रजवने स्थितिर्मे यया
कृपां कृपणगामिनीं मदसि नौमि तामेव वाम् ॥'

तथा (श्रीगान्धर्व्वा-संप्रार्थनाष्टके १)—वृन्दावने विहरतोरिह केलिकुञ्जे' इत्याद्यनुपपत्तिः। एवञ्च सति कल्पवृक्षादिरूपाणां निम्वादि-रूपेण यत् प्रतीतिः, तत्तु ( नैषधे ३।९४ ) 'पित्तेन दूने रसने सितापि तिक्तायते' इतिवत्, नयनदोषात् शङ्खं पीतमिव पश्यतीतिवत्, प्रकाशैकरूपायाः सूर्य्यकान्तेरुलूकेषु तमोऽभि-व्यञ्जकता इतिवच्च सापराधेष्वयोग्येषु तेषु तस्य स्वरूपाप्रकाशप्रायिकत्वाच्च। अनेन श्रीकृष्णस्यौपपत्ये श्रीराधिकादीनां परकीयात्वे

दर्शन की भाँति यहाँपर भी साक्षात् दर्शन नहीं होगा। और भी अप्रकट वृन्दावन की सत्त्वा मानलेने से श्रीरूप गोस्वामी की उक्ति सभीचीन नहीं होगी—उत्कलिका वल्लरी ६६ हे नाथ ! श्रीकृष्ण ! हे मदीश्वरि ! श्रीराधिके ! तुम्हारे दास्य भाव प्राप्त कर परम भक्त उद्धव प्रभृति महात्मागण जहाँपर तृण गुल्मादि जन्म की वाञ्छा करते हैं, उस श्रीवृन्दावन में मैं हीन जन्मा होने पर भी जिस के प्रभाव से यहाँपर रह रहा हूँ। वह दीन गामिनी तुम्हारी कृपा को मैं प्रणाम करता हूँ। श्रीगान्धर्वा प्रार्थनाष्टक १ में उक्त, हे देवि ! श्रीवृन्दावन में केलि कुञ्ज में मदमत्तमातङ्ग के समान तुम दोनों कौतुकी होकर नित्यविहार करते रहते हो, अतएव, मेरे प्रति प्रसन्न हो, और तुम्हारे वदनारविन्द को एकवार दर्शन कराओ॥ ऐसा होने पर कल्प वृक्षादि रूप वृक्ष भी निम्व रूप से प्रतीत होता है, इस का कारण-पित्त दुष्ट रसना में मिसरी कड़वी लगती है, नयन दोष से शङ्ख भी पीत दिखाई देताहै, स्वयं प्रकाश रूप सूर्य के प्रकाश को उलूक तम मानताहै, इस प्रकार अपराधी एवं अयोग्य में स्वरूप

प्राकृतदृष्ट्या दोषदृष्टिं कुर्व्वन्तो जना मायावादिन इव कामानुगाभक्ति निरतजनैः सर्व्वथा त्याज्याः ।

३७ केचित् पुनरेवमाहु—यः खलूपपत्यादयुत्कर्षो वर्णितः श्रीमद्भिर्ग्रन्थकृद्भिः, स तु परेच्छयैव, न तु स्वाभिमतः ? तन्न, तेषां प्रार्थना-विरोधात्; यथा ह्युत्कलिकावल्लर्य्याम् ( ४५ )—

'आलीभिः सममभ्युपेत्य शनकैर्गान्धर्विकायां मुदा
गोष्ठाधीशकुमार हन्त कुसुमश्रेणीं हरन्त्यां तव ।
प्रेक्षिष्ये पुरतः प्रविश्य सहसा गूढ़स्मितास्यं वला-
दाच्छिन्दानमिहोत्तरीयमुरसस्त्वां भानुमत्याः कदा ।।'

इत्यत्र हि स्वकीयत्वेन तया तया, तस्य पुष्पहरणम् ; तेन च तत्तत्सख्या । उत्तरीयाकर्षणं न सम्भवतीति; तथा कार्पण्यपञ्जिकायाञ्च ( ३५ )—

का प्रकाश नहीं होता है ।। **इस से श्रीकृष्ण के औपपत्य में एवं श्रीराधिकादि के परकीयात्व में प्राकृत दृष्टि से जो लोक दोषारोपण करता है वह मायावादी की भाँतिहै, अतः रागानुगीय भक्ति परायण जनगण उसका सङ्ग सर्वथा परित्याग करें ।**

३७—कुछ लोक कहते हैं श्रीरूपगोस्वामी ने उपपति का उत्कर्ष उज्ज्वल में वर्णन किया है वह उनका अपना मत नहीं है, दूसरे का है, निजमत विवाह है । ऐसा कहना अनुचित है । उनकी प्रार्थना के साथ विरोध होगा । उत्कलिकावल्लरीमें ४५ । हे गोष्ठाधीशकुमार ! ललितादि सखीगणके द्वारा वेष्टित होकर श्रीराधिका तुम्हारी पुष्प वाटिकामें प्रविष्ट होकर पुष्प चयन आनन्दसे करती है, उस समय तुम हठात् वहाँ जाकर श्रीराधिका की सहचरी भानुमती के उत्तरीय वसन को वल पूर्वक ग्रहण करके वाहर कोप, अन्तर में आनन्द युक्त मुखपद्मसे शोभित हो जाओगे । मैं कव उस दृश्य को देखूँगा । यहाँपर स्वकीया होने से उन के द्वारा पुष्प चोरी नहीं हो सकती है, पति होने से कृष्ण से श्रीराधा की सहचरी पर आक्रमण

'गवेषयन्तावन्योऽन्यं कदा वृन्दावनान्तरे।
सङ्गमय्य युवां लप्स्ये हारिणं पारितोषिकम् ॥'

तथा ( तत्रैव ३४ )—

' गुर्व्वायत्ततया क्वापि दुर्ल्लभान्योऽन्यवीक्षणौ।
मिथः सन्देश-सीधुभ्यां नन्दयिष्यामि वां कदा ॥'

अत्रापि परस्परान्वेषणं दुर्ल्लभान्योऽन्यवीक्षणञ्च परकीयायामेव सम्भवतीति। एवं श्रीमन्महाप्रभोः परमान्तरङ्गभक्त-श्रीरघुनाथ-दासगोस्वामिपादैर्यथा विलापकुसुमाञ्जल्याम् ( ८८ )—

' भ्रात्रा गोयुतमत्र मञ्जुवदने स्नेहेन दत्तालयं
श्रीदाम्ना कृपणां प्रतोष्य जटिलां रक्षाख्यराकाक्षणे।
नीतायाः सुखशोकरोदनभरैस्ते संद्रवत्याः परं
वात्सल्याज्जनकौ विधास्यत इतः किं लालनां मेऽग्रतः ॥'

होना भी सम्भव नहीं होगा, और स्वीया में श्रीराधा के सामने सहचरी के उत्तरीय का आकर्षण भी पति नहीं कर सकेगा। कार्पण्य पञ्जिका ३५ में उक्त है—वृन्दावन में तुम दोनों विरह व्यग्र होकर परस्पर परस्पर को अन्वेषण करोगे, उस समय तुमदोनों का मिलन कराकर मैं तुम्हारे निकट से हार पदक प्रभृति पारितोषिक रूप में कव प्राप्त करूँगा। ३४ में तुम दोनों गुरु जन के समीप में अवस्थित होने पर उस समय परस्पर दर्शन दुष्प्राप्य होताहै, अतएव उस समय परस्पर के सन्देश वाक्यरूप अमृत प्रदान कर कव मैं तुम दोनों को पुलकित करूँगा। यहाँपर भी परस्पर अन्वेषण, दुर्ल्लभ अन्योन्य वीक्षण भी परकीया में ही सम्भव है। इस प्रकार श्रीमन् महाप्रभु के परमान्तरङ्गभक्त श्रीरघुनाथदास गोस्वामीकी विलापकुसुमाञ्जलि में ८८ उक्ति इस प्रकार है, मनोज्ञ वदने ! तुम्हारे भाई श्रीदाम राखी पूर्णिमा में कृपण जटिला को अयुत गो दान करके सन्तुष्ट कर तुम्हें घर को लिवालेजाने से माता पिता के दर्शन से सुख, एवं दीर्घ काल सास के यहाँ रहने पर दुःख को युगपत् अनुभव करके जव तुम

इत्यादि वहुशः।

किञ्च, व्रजे श्रीकृष्णस्य नवयौवने समृद्धिमान् शृङ्गारो ज्ञेयः। स च महाभाव-स्वभावेन चिरप्रवास विना निकटप्रवासेऽपि तत्स्फूत्तर्या संभवति। ( श्रीभा० १०।३१।१५ ) 'त्रुटीयुगायते त्वामपश्यताम्' इत्यादिन्यायेन 'ब्रह्मरात्रततिवद्विरहेऽभूत' इत्यादिन्यायेन शरज्ज्योत्स्नी-रासे ( श्रीभा० १०।३३।१८ ) विधिरजनिरूपापि निमिषादिन्यायेन च। अतएव श्रीमदुज्ज्वलनीलमणौ ( मुख्य सम्भोग० २०३ ) संपन्नस्योदाहरणे श्रीहंसदूतस्य पद्यं दत्तम्। अतो त्रिदग्धमाधवे ( १।३९ ) पौगण्डत्वेन भासमानत्वं दर्शितम्; यथा-दुग्धमुहस्स वच्छसस्स को कखु दाणि उव्वाहाओसरो' इत्यादौ।

३८ नवयौवनस्यैव सदास्थायित्वेन ध्येयत्वम्, यथा स्तवमालायां ( उत्कलिकावल्लरी १७ )—'श्यामयोर्नववन-( वयः )-सुषमाभ्याम्

रोदन करोगी, उस समय स्नेह से तुम्हार माता पिता कीर्त्तिदा, वृषभानु मेरे सामने तुम्हें कहेंगे, मा! मत रोओ, तुम हमारे नेत्र हो, तुम्हें न देखकर चक्षु अन्ध हो जाताहै, इस प्रकार कह कर मस्तक गात्रादि स्पर्श कर के क्या लालन विधान करेंगे? इस प्रकार अनेक संवाद हैं।

और भी व्रज में श्रीकृष्ण के नव यौवन में समृद्धिमान् शृङ्गार होता है। समृद्धिमान् सम्भोग तो महाभाव स्वभाव से चिर प्रवास को छोड़कर ही होता है, निकट प्रवास में उसकी स्फूर्त्ति से ही सम्भव होगा भा० १०।३।१५ तुम्हें न देखकर निमेष काल भी युग के समान होता है, इत्यादि रीति से विरह में ब्रह्म रात्रि समूह की भाँति रात होती है। शरत्रास में १०।३३।३८ ब्रह्म रात्रि समूह भी निमेष के समान हुई थीं, अतएव उज्ज्वल नीलमणि में मुख्य सम्भोग २०३ सम्पन्न का उदाहरण में हंसदूत का पद्य लिखा गया है, अतएव विदग्ध माधव में १।३९ कृष्ण का अनुभव पौगण्ड में ही होनेलगा। आर्य! दुग्ध मुख बालक के लिए इदानीं विवाह का अवसर कैसे होगा?॥

इत्यादौ। अतः श्रीकृष्ण-दुग्धमुखत्वस्य सदा स्फूर्त्या श्रीव्रजेश्वर्य्यादिभिस्तस्य परिणयोद्यमः क्वापि न कृतः; किमुत महाभाव प्रभेदाधिरूढ़-विशेष-मादनभावस्वभावे, स च तं विना सम्भवतीति वक्तव्यम् यथा श्रीआर्ष-वचनम् —

'वन्दे श्रीराधिकादीनां भावकाष्ठामहं पराम्।
विना वियोगं संभोगं या तुर्य्यमुदपादयत्॥

अत्र भावकाष्ठाम्-मादनरूपाम्; मादनस्य लक्षणम् (उ० नी०) स्थायी० २१९, २२६, २२९ )—

'सर्वभावोद्गमोल्लासी मादनोऽयं परात्परः।
राजते ह्लादिनीसारो राधायामेव यः सदा॥'

३८ कृष्ण का नवयौवन ही सदास्थायि रूप से ध्येय है। स्तव माला की उत्कलिका वल्लरी में १७—हे कृष्ण! हे राधिके! तुम दोनों जगत् के समुदाय वस्तु के शिरोभूषण हो, तुम दोनों के मध्य में एकतो अभिनववयस हेतु श्यामा, अर्थात् उत्तमा युवतीनारी लक्षण से लक्षिता: और अपर जन परम शोभाहेतु श्याम अर्थात् मरकत मणि की भाँति उज्ज्वल है। एक व्यक्ति—निर्म्मल शोभा हेतु तद्रूप काञ्चन के समान गौराङ्गी, अपर जन,—सुविमल यशः के कारण गौर अर्थात् शुभ्रवर्ण है, अतएव तुम दोनों की इस प्रकार रूप माधुरी मेरे हृदय में सदा विराजित हो। अतः श्रीकृष्ण के दुग्ध मुखत्व की सदा स्फूर्त्ति से श्री व्रजेश्वरी प्रभृतियों ने कभी भी श्रीकृष्णके परिणय उत्सव के हेतु उद्यम नहीं किया। महाभाव के प्रभेद अधिरूढ़ विशेष मादन भाव स्वभाव में तो कहना ही क्याहै, उस के विना क्या समृद्धिमान् सम्भोग हो सकता है?। आर्षवचन भी इस प्रकार है—मैं श्री राधिकादि की भाव काष्ठा की वन्दना करता हूँ। वियोग के विना ही जिस से सम्भोग सम्पन्न होता है। भाव काष्ठा शब्द से मादन रूप भाव काष्ठा को जानना होगा, मादन का लक्षण उ० नी० स्थायी० २१९ २२६, २२९ में हैं। मादन—रत्यादि महाभाव भेद से

'न निर्वक्तुं भवेच्छक्यया तेनासौ मुनिनाप्यलम्';
स्फुरन्ति व्रजदेवीषु परा भावभिदाश्च याः ।
तास्तर्कागोचरतया न सम्यगिह वर्णिताः'

इत्यादेश्च, चिरनिकट प्रवासे चिरःप्रवास-स्फूर्त्या समृद्धिमान् सम्भोगो भवतीति किमाश्चर्य्यम् ।

ननु तर्हि कथं श्रीगोस्वामिपादैः समृद्धिमान् सम्भोगो नव-वृन्दावने उदाहृतः ? तत्तु स्पष्टलीलायां नन्दनन्दन-वसुदेवनन्द-नयोरेकत्वाभिमानात् । तद्‌यथा (श्रीभा० ११।१२।१३ (–'मत्‌कामा रमणं जारमस्वरूपविदोऽवलाः' तथा श्रीभा० १०।४६।३ )—'गच्छोद्धव व्रजं सौम्य पित्रोर्नः प्रीतिमावह' इत्यादि । अतएव श्रीमत् उज्ज्वल-नीलमणौ ( श्रृङ्गारभेदान्तर्गत-संयोग वियोग० १८५–६ )-

अधिरूढ़ मोहन पर्यन्त यावतीय भाव का जो प्राकट्य उस से भी अधिक उत्कर्ष विशिष्ट, अतएव श्रेष्ठ मोदन महाभावसे भी अत्युत्कृष्ट जो ह्लादिनी नामक महाशक्ति का स्थिरांश, जो केवल श्रीराधा में ही सदा विराजित है, उस को मादन कहतेहैं । यह मादन ललितादि में भी उदित नहीं होता है । कामवीजसे उपास्य कृष्ण के समान इस मादन की गति भी सुदुर्वोध्य है, इस लिए भरत मुनि अथवा शुक देव भी मादन के सर्वधर्मका स्पष्ट लक्षण निर्णय करने में असमर्थ रहे । भाव की रति अवस्था से आरम्भकर महाभाव पर्यन्त क्रमशः उत्तरोत्तर उत्कर्ष समूह का निरूपण लक्षण एवं उदाहरण द्वारा कर के उक्त क्रम की प्रायिकता को कहते हैं। स्नेहं प्रथमतः राग एवं अनुरागता को प्राप्त कर कभी तो मानत्व एवं प्रणयत्व को प्राप्तकरता है। श्रीविश्वनाथ के मत में राग प्रथमत उत्पन्न होकर अनुराग को प्राप्त करता है, उस के वाद स्नेह होता है, अनन्तर मान, कभी तो प्रणय उत्पन्न होता है, अतएव राधिकादि में पूर्वराग प्रसङ्ग में भी मान एवं प्रणयादि का आविर्भाव को छोड़कर ही रागाविर्भाव का संवाद सुनने में आता है, व्रजदेवी गण में श्रेष्ठ श्रेष्ठ भाव की

'हरेर्लीलाविशेषस्य प्रकटस्यानुसारतः।
वर्णिता विरहावस्था व्रज-वामभ्रु वामसौ ॥
वृन्दारण्ये विहरता सदा रासादिविभ्रमैः।
हरिणा व्रजदेवीनां विरहो नास्ति कर्हिचित् ॥'

अतएव श्रीरसामृतसिन्धौ (७।७।१२८) श्रीभागवतादि-गूढ़ार्थः श्रीगोस्वामिपादैर्दर्शितः यथा—

'प्रोक्तेयं विरहावस्था स्पष्टलीलानुसारतः।
कृष्णेन विप्रयोगः स्यान्न जातु व्रजवासिनाम् ॥'

तथा हि यामल-वचनम् —

'कृष्णोऽन्यो यदुसम्भूतो यस्तु गोपेन्द्रनन्दनः।
वृन्दावनं परित्यज्य स क्वचिन्नैव गच्छति ॥ इति;

स्पष्टलीला—श्रीनन्दनन्दन-वसुदेवनन्दनयोरेकात्मव्यञ्जिका; अस्पष्टलीला गूढ़लीला, तयोर्भेदव्यञ्जिका। अतएव श्रीनन्दयशोदा-दीनां परिकरैः सह द्वारवत्यादिगमनं ! व्रजेशादेरंशभूता ये द्रोणाद्याः'

जो भेद स्फूर्त्ति होती है, ( जिस प्रकार रास लीला में पूतनादि का अनुकरण। उसका वोध तत्काल नहीं होता है, अतः इस ग्रन्थ में उसका सम्यक् वर्णन नहीं हुआ। इस प्रकार चिर निकट प्रवास में भी चिर प्रवास स्फूर्त्ति होने के कारण समृद्धिमान् सम्भोग होगा, इस में आश्चर्य की वात क्या है ?। तव श्रीरूप गोस्वामी पाद ने समृद्धिमान् सम्भोग का उदाहरण-का प्रदर्शन, नव वृन्दावन में क्यों कियाहै ? उत्तर,—स्पष्ट लीला में नन्दनन्दन वसुदेवनन्दनमें अभेदा-भिमान के कारण वैसा हुआ, भा० ११।१२।१४ अवलागण-मुझ को रमण, जार मानकर ही प्राप्त किए। १०।४४।३ हे उद्धव ! व्रज को जाओ, और मातापिता की प्रीति विधान करो। अतएव उज्ज्वल नीलमणि शृङ्गार भेद के अन्तर्गत संयोग वियोग १८५-६ )— विप्रलम्भ शृङ्गार के उपसंहार के समय श्रीकृष्ण की नित्य लीलाको दिखाते हैं। इस ग्रन्थ में श्रीकृष्ण की प्रकट लीला विशेष के अनुसरण

इत्यादिवत्ज्ञेयम् ।
श्रीललितमाधवे श्रीराधा-प्रार्थना ( १०।३६ )—

> 'या ते लीलापदपरिमलोद्गारिवन्या-परीता
> धन्या क्षौणी विलसति वृता माधुरी-माधुरीभिः
> तत्रास्माभिश्चटुलपशुपीभाव-मुग्धान्तराभिः
> संवीतस्त्वं कलय वदनोल्लासिवेणुर्विहारम् ॥'

कृष्णः—प्रिये ! तथास्तु ।
राधिका—कथं विभ्र ?
( कृष्णः स्थगितमिवापसव्यतो विलोकते ।
( प्रविश्य गार्ग्या सहापटीक्षेपेण एकानंशा )

एकानंशा—सखि राधे ! मात्र संशयं कृथाः, यतो भवत्यः श्रीमति गोकुले तत्रैव वर्त्तन्ते, किन्तु मयैव कालक्षेपणार्थमन्यथा प्रपञ्चितम्; तदेतन्मनस्यनुभूयताम्, कृष्णोऽप्येष तत्र गत एव प्रतीयताम्
गार्गी ( स्वगतम् )—फलिदं मे तातमुहादो सुदेन ।

से व्रज सुन्दरीयों की विरहावस्था का वर्णन हुआ है, किन्तु वृन्दावन में सदा के लिए रासादि विविध लीला विनोद परायण श्रीकृष्ण के साथ व्रजदेवी गण का विरह कभी भी नहीं होता है । दशम के अन्त १०।९०।४८ में वर्णित है—जयति जन निवास " इत्यादि पद्य में भी वर्त्तमान काल का प्रयोग होने पर युगपत् द्वारका मथुरा वृन्दावन में लीला विलास की नित्यता ही सूचित हुई है । पद्म पुराण के पाताल खण्डमें मथुरा माहात्म्य में वर्णित है—वृन्दावन में गो गोप गोपीगण के साथ कंसनाशन नित्य क्रीड़ा करते हैं, इस में भी वर्त्तमान काल का प्रयोग से लीला का सातत्य सप्रमाणित हुआ है ।

३९ अतएव श्रीरसामृतसिन्धु ३।३।१२८ में श्रीभागवतादि गूढ़ार्थ को श्रीरूप गोस्वामी पादने कहा है । स्पष्ट लीला के अनुसार विरहावस्था का वर्णन हुआ है, व्रज देवीयोंके साथ कृष्ण का विरह कभी भी नहीं है । यामलवचन भी इस प्रकार है—यदुसम्भूत

श्रीभागवते यथा श्रीनन्दनन्दन–वसुदेवनन्दनयोरेकत्वव्यञ्जिका स्पष्टा, तथा श्रीललितमाधवे विन्ध्यादार–प्रसूता–कीर्त्तिदा–प्रसूत–योरेकत्वव्यञ्जिका लीला स्पष्टा। यथा गूढ़लीलायां श्रीकृष्णो वसुदेवनन्दनरूपेण गतस्तथा श्रीराधा सत्यभामारूपेण गता। यथा स्पष्टलीलायां वसुदेवनन्दने नन्दनन्दनावेशस्तथा श्रीसत्यभामायां श्रीराधावेश इति।

४० नन्वप्रकटलीलायां पूर्व्वरागो नास्तीति प्रकटलीला–विशेषोऽपेक्ष्यः, प्रकटलीलायां समृद्धिमान् सम्भोगो नास्तीत्यप्रकटलीला–विशेषोऽपेक्ष्यः। अतएव गोकुलस्य प्रकटाप्रकटप्रकाशयोः स्वरूपेण द्वैविध्यं स्यात्; एवं लीलायाश्च, ? तत्राह––समृद्धिमान् सम्भोग–स्तत्र प्रकटलीलायां न जातश्चेत्, तदर्थमप्रकटलीलाविशेषोऽपेक्षः; स तत्र जात एव यथा दन्तवक्रवधानन्तरम्–'रम्यकेलिसुखेनात्र मासद्वयमुवास ह' इति।

वसुदेव नन्दन कृष्ण अन्य है, गोपेन्द्र नन्दन कृष्ण पृथक् है। नन्दनन्दन कृष्ण कभी भी वृन्दावनकोछोड़कर नहीं जातेहैं। स्पष्ट लीला-श्रीनन्द नन्दन वसुदेव नन्दन की एकात्मबोधिका लीला,अस्पष्ट लीला— गूढ़लीला वसुदेव नन्दन–नन्दनन्दन की भेद बोधिका लीला। अतएव नन्द यशोदा प्रभृति के परिकर के साथ द्वारकादि गमन भी व्रजेशादि के अंश भूता द्रोणादि द्वारा है।

श्रीललित माधव में श्रीराधा की प्रार्थना इस प्रकार है-चञ्चल गोपाङ्गनागण के साथ जो मधुर विहार है, जिस से धरणी पवित्र हुई है, उसको प्रकट करने के लिए वंशी वादन विहार को प्रकाश करो। कृष्ण वोले। प्रिये ! ऐसा ही हो—राधिका ?, किस प्रकार कुछ रुककर दक्षिण के और देखते हैं—गागी के साथ एकानंशा कृष्ण की वहिन भङ्गी से प्रवेश करती है। एकानंशा—सखि राधे ! यहाँपर संशय न करो, तुम सव तो श्रीमति गोकुल में ही हो, किन्तु मैंने ही काल क्षेपन के लिए अन्य प्रकार किया था, उस का अनुभव मन ही मन करो, कृष्ण को भी वहाँपर ही देखो। गार्गी वोली पिता

किञ्च, स्वकीयासु समञ्जसा रतिः, सा चानुरागान्ता; तत्र जाति भेदेन समृद्धिमान् सम्भोगो रसनिर्य्यासत्वेन न कथ्यते। पर-कीयासु समर्था रतिः; सा च भावान्ता। ( भ० र० सि० २।५।१ )– 'वैशिष्टं पात्रवैशिष्ट्याद्रतिरेषोपगच्छति' इति समर्थारति-स्थायिकः समृद्धिमान् सम्भोगो रसनिर्य्यासत्वेन कथ्यते। अतएव प्रकटलीलायां पूर्वराग–समृद्धिमन्तौ जातौ। अप्रकटलीलाविशेष-स्वीकारेण किं प्रयोजनम् ? किञ्च, जात प्राकट्याः पूर्वरागादिगता लीला अप्रकटा अधुना वर्त्तन्ते, तासां पुनः प्राकट्ये किं पुनः पूर्व-रागादिरूपं निजप्रयोजनं भवति ? लीलायाः प्रकटतायां समृद्धिमत आस्वादनमस्त्येव; तदर्थं प्रकटलीलाविशेष इत्यसङ्गतिरिति; किन्तु रसशास्त्रे सम्भोगस्य रात्रि-प्राधान्यत्वात्, स च समृद्धिमान् रात्रावेव जायते यथा निकटदूरेत्यादि पूर्ववत्।

४१ केचित्तु दन्तवक्रवधानन्तरं प्रौढ़यौवने ❀ ❀ प्रोढ़-यौवनं विचार्य्यते—आनुक्रमिकी लीला नित्या; सा च ( गीता ४।६ )

की वाणी सत्य हुई। श्रीभागवत में जिस प्रकार श्रीनन्दनन्दन वसु देव नन्दन की एकत्व व्यञ्जिका स्पष्ट लीला है, इस प्रकार श्रीललित माधव में विन्ध्यादार प्रसूता कीर्त्तिता प्रसूता की एकत्व व्यञ्जिका स्पष्ट लीलाहै। जिस प्रकार गूढ़ लीला में श्रीकृष्ण वसुदेव नन्दन रूप से मथुरा गए, तथा श्रीराधा सत्यभामारूपसे द्वारका गई, यथा स्पष्ट लीला में वसुदेव नन्दन में नन्दनन्दनावेश है तथा श्रीसत्यभामा में श्रीराधा का आवेश है ॥

४० यदि कहो कि अप्रकट लीला में पूर्वराग नहीं है, अतः प्रकट लीला विशेष की अपेक्षा करनी होगी। प्रकट लीला में समृद्धिमान् सम्भोग नहीं है, इस के लिए अप्रकट लीला विशेष की अपेक्षा होती है। अतएव गोकुल के प्रकट अप्रकट प्रकाश स्वरूप में दो होते हैं, इस प्रकार लीला भी दो होगी ? उस पर कहते हैं—समृद्धिमान् सम्भोग की यदि प्रकट प्रकाश में सम्भावना ही नहीं है, तो उस के

—'जन्म कर्म च मे दिव्यम्' इत्यादेः। तस्यां श्रीनन्दनन्दनस्य वयोगणनं श्रीवैष्णवतोषण्यां निर्णीतमेव। तत्तु पञ्चविंशत्याधिक-शतवर्षपर्य्यन्तम्; तद्व्यवस्था,—व्रजे एकादशसमाः; तत्र सावित्र्य-जन्माभावेन धर्म्मशास्त्रविरोधाद् विवाहो नास्ति; रासक्रीड़ासुख-सम्भोगे परकीयात्वमेवेत्यर्थः। मथुरायां चतुर्विंशतिः वर्षाः तत्रापि नास्ति विवाहः। शेषन्तु वयो द्वारकादिषु; तत्रापि प्रथमतः श्री-रुक्मिण्या विवाहः, ततः सम्भोगादनन्तरं सत्यभामादीनाम्; ततः षोड़श-सहस्रकन्यानाम्; ततः पुत्रपौत्रादयो बहवो जाताः ततो दन्त-वक्रवधानन्तरं लीलावसाने व्रजागमनम्; तत्रापि केषांचिन्मते विवाहः श्रीराधादिभिः सम्मतः। तदसङ्गतम्, श्रीभागवते कुत्राप्यवर्णित-त्वात्, वन्धुवर्गादेर्निषेधाभावेन रसोत्कर्षाभावाच्च। अतएव गोचा-रणादिजन्य-विरहाभावस्ततो रासदानमानादिलीलादेरभावेन दूती प्रेषणादेरभावःस्यात् अतएव श्रीरूपपादैर्नवयौवनस्यसदाध्येयत्वेन वर्णित त्वात् श्रीमहाप्रभोः पार्षदवृन्दैर्विवाहस्य कुत्राप्यवर्णितत्वाच्च। श्री

लिए अप्रकट प्रकाश लीला विशेष की अपेक्षा करो। वह तो वहाँपर हो गया है, यथा दन्तवक्र वध के वाद रम्य केलि सुख से व्रज में दो मास विताए हैं। और भी स्वकीया में समञ्जसा रति होती है, वह तो अनुरागान्ता हैं, वहाँपर जाति भेद से समृद्धिमान् सम्भोग का कथन रस निर्यास आस्वादन के लिए निर्णीत नहीं है, परकीया में समर्था रति है—वह भावान्ता है। भ० र० सि० २।५।७ पात्र विशेष से ही रति का वैशिष्ट्य होता है। इस प्रकार समर्थारति स्थायि भावापन्न समृद्धिमान् सम्भोग के लिए रस निर्यास कहा गया है। अतएव प्रकट लीला में पूर्व राग समृद्धिमान उत्पन्न हुए हैं। अप्रकट लीला विशेष स्वीकार करने का प्रयोजन ही क्या है? और भी पूर्व रागादि लीला प्रकट में प्रकाश होती है, इस समय तो वह लीला अप्रकट होकर रहती हैं, उस का प्रकट होने पर पुनर्वार क्या पूर्वरागादि का प्रयोजन सिद्ध होगा? लीला प्रकट होने पर समृद्धि मान् का आस्वादन होता ही है, उस के लिए फिर से प्रकट लीला

पद्मपुराणमते ललित माधवे विवाहवर्णनं कल्पभेदेन समाधेयम्। तस्मात् सर्वेषां मते प्रकटाप्रकटलीलायां परकीयैव, नित्यत्वात्। विवाहं स्वीकृत्य तेनैव लीलाया अप्रकटत्वं मत्वा स्वकीयाया नित्यत्वं मन्यते। तदसङ्गतम्, पूर्वहेतोः, श्रीव्रजेश्वरादीनां श्रीकृष्णस्य सदा-दुग्धमुखत्वस्फूर्त्या सावित्रजन्याभावेन विवाहाभावात्। नवयौवन सम्वलितपूर्णतमत्वस्य श्रीरूप-गोस्वाम्यादिभिः सदा ध्येयत्वाच्च, तत्त् श्रीकृष्णस्य मथुरादि-गमनाभावात्। स च 'कृष्णोऽन्यो यदु-सम्भूतः' इत्यादि, मथुरादिगमने तु पूर्णतरत्वादि-पातात्। नव-यौवनस्य सदा ध्येयत्वं यथा स्तवमालायाम् (उत्कलिकावल्लरी १८)

'श्यामयोर्नववय सुषमाभ्यां,
गौरयोरमल-कान्तियशोभ्याम्।
कापि वामखिलवल्गुवतंसौ,
माधुरी हृदि सदा स्फुरतान्मे ॥' इति;

'श्याममेव परं रूपं, वयः कैशोरकं ध्येयम्' इत्यादेश्च।

विशेष की अपेक्षा, करो, इस से लीला की असङ्गति होगी, किन्तु रस शास्त्र में सम्भोग विधान रात्रि में है, अतएव समृद्धिमान रात्रि में ही होगा, जिस प्रकार प्रवास के लिए निकट दूर की व्यवस्था है।

४१ कुछ व्यक्ति कहते हैं—दन्तवक्र वध के वाद प्रौढ़ यौवन में समृद्धिमान सम्भोग होता है। प्रौढ़ योवन का विचार करते हैं। आनु क्रमिकी लीला नित्या है, गीता ४।९ सें कहा है—जन्म कर्म मेरा दिव्य है। श्रीवैष्णवतोषणी में श्रीनन्दनन्दन की वयोगणना है, १२५ वर्ष पर्यन्त श्रीकृष्ण की स्थिति है, उस की व्यवस्था इस प्रकार है—व्रज में ११ वर्षतक, उस समय उपनयन संस्कार द्वारा द्विजत्व न होने के कारण धर्म शास्त्र विरोध हेतु विवाह नहीं हुआ। रास क्रीड़ा रूप सुख सम्भोग के लिए परकीयात्व की परमावश्यकता मथुरा में २४ वर्ष। वहाँपर भी विवाह नहीं हुआ। अवशिष्ट वयस द्वारकादि में है। उस में प्रथम रुक्मिणी विवाह, सम्भोग के वाद

४२ अस्मन्मते तु श्रीवसुदेवनन्दनरूपेण मथुरा-द्वारकादौ गत्वा दन्तवक्रवधानन्तरं पुनर्व्रजमागत्य तत्र तु स्वयं प्रकाश रूपेण श्रीव्रजेन्द्रनन्दनेन लीलायाः प्रकटनं कृतम्; तत्तु त्रिमास्याः परतस्तासां साक्षात् कृष्णेन सङ्गतिः' इति जातम् ; ततः समृद्धिमान् सम्भोगश्च जातः। अस्य तु प्रकटाप्रकटे जातत्वं पूर्वमेव लिखितम्। ततः सत्यभामादि से विवाह। उस के वाद सोलह हजार कन्याओं से विवाह, वाद में पुत्र पौत्र अनेकानेक हुए। इसके वाद लीला वसान करके दन्तवक्र वध के वाद व्रजागमन, किसी के मत में उस समय श्रीराधा प्रभृति के साथ विवाह हुआ। यह असङ्गत है, श्रीभागवत के किसी भी स्थान में वर्णित नहीं है ।। विवाह होने पर पत्नी मिलन में वन्धवर्ग से वाधा भी नहीं होगी, रसोत्कर्ष की तो सम्भावना नहीं रहेगी। अतएव गोचारण जन्य विरह भी नहीं होगा, रास दान मानादि लीला भी नहीं होगी दूती प्रेषण की कोई आवश्यकता नहीं रहेगी। अतएव श्रीरूप गोस्वामी चरण ने नव यौवन का वर्णन सदा ध्येयत्वेन किया है। श्रीमहाप्रभु के पार्षद वृन्द ने कहीं परभी विवाह का वर्णन नहीं कियाहै, श्रीपद्म पुराणके मत को लेकर ललित माधव में जो विवाह लिखा गया है; उसका समाधान कल्पभेद से करना चाहिये। अतएव सब के मत में प्रकट अप्रकट लीला में परकीया ही है। परकीया लीला नित्य है। विवाह को मानकर उस लीला को अप्रकट मानकर स्वकीया का नित्यत्व जो मानता है। वह असङ्गत है। इस का कारण पहले कहा गया है। श्रीव्रजेश्वर ने सदा ही कृष्ण को दुग्धमुख शिशु ही माना है, सावित्री जन्म न होने से विवाह होना भी असम्भव है। श्रीरूप गोस्वामी प्रभृति ने नव यौवन सम्वलित पूर्णतम रूप को ध्येय रूप में माना है। श्री कृष्ण का मथुरा गमन हुआ ही नहीं, यदुसम्भूत कृष्ण अन्य है, जो मथुरा गया है। मथुरा गमन से कृष्ण में पूर्णतरत्वादि प्राप्ति होगी नव यौवन सदाध्येय है, स्तवमाला में श्रीरूप गोस्वामी जीने लिखा है, श्याम रूप ही परं रूप है, और वयस कैशोर ही ध्येय है ।।

श्रीमद्व्रजेन्द्रनन्दने पूर्णतरादि प्रकाशे, न तु मथरा-द्वारकादौ च; अत: प्रकटाप्रकटे परकीयाया: सद्भावेन नित्यत्वात्। तत्तु ( भा० १०। ६०।४८ ) 'जयति जननिवास:' इत्यादेर्वर्त्तमान प्रयोगा वहव: सन्ति अत: श्रीकृष्णचैतन्यमहाप्रभो: परिवारेषु श्रीमन्नित्यानन्दाद्वैतादिभि: श्रीभागवतमतानुसारेण प्रकटाप्रकटे व्रजलीलायां श्रीकृष्णस्यौपपत्यं नित्यत्वेन स्वीकृत्य स्वस्वपरिवारे प्रवर्त्तितं दृश्यते, तेषु च श्रीगदाधर स्वरूप-रूप-सनातन–भट्टरघुनाथदास-कर्णपूरादिभिस्तत्तन्मतानुसारेण तत्र तत्रैव परकीयात्वं स्वस्वग्रन्थगणे वर्णयित्वा प्रवर्त्तितं दृश्यते, लीलामात्रस्य नित्यत्वात्; तत्तु 'जयति जननिवास: ' इत्यादे:। तथा श्रीरामानुजाचार्य्य-मध्वाचार्य्य-प्रभृतिभिश्च लीलामात्रस्य नित्यत्वं स्थाप्यते। अतो लीलामात्रस्य नित्यत्वेनानुक्रमिक्या लीलाया नित्यत्वे न दोषस्तस्मात् प्रकटाप्रकटे परकीयाया नित्यत्वम्।

४२ हमारे मत में श्रीवसुदेवनन्दन रूप से मथुरा द्वारका को जाकर दन्त वक्र वध के वाद पुनर्वार व्रज में आकर स्वयं प्रकाश रूप व्रजेन्द्रनन्दन रूप में लीला को प्रकट किया। यह सव विवरण कुल तीन मास के वाद ही हुआ, कारण तीन मास के वाद ही व्रजाङ्गना गण के साथ सङ्गति हुई। उस के वाद समृद्धिमान सम्भोग हुआ यह तो प्रकट अप्रकट दोनों में ही होता है। पहले लिखा भी गया है। उस के वाद श्रीमद् व्रजेन्द्रनन्दन में पूर्णतरादि का प्रकाश होने से, किन्तु द्वारका मथुरादि में नहीं। अतएव प्रकट एवं अप्रकट में परकीया की स्थिति नित्य होने के कारण परकीया नित्य है, भा० १०।६।४८ में जयति जननिवास में वर्त्तमान प्रयोग के द्वारा प्रति पादन किया है। अतएव श्रीकृष्ण चैतन्य महाप्रभु के परिवार में श्रीमन् नित्यानन्द अद्वैत प्रभृतियों ने श्रीभागवतमत के अनुसार प्रकट एवं अप्रकट में व्रज लीला में श्रीकृष्ण का औपपत्य नित्यरूप से मानकर निज निज परिवार में प्रवर्त्तन किया है। उन में से श्रीगदाधर नरहरि स्वरूप रूप सनातन भट्ट रघुनाथ दास कर्ण पूरादि ने निज निज ग्रन्थ में परकीयात्व का वर्णन किया है, लीला

४३ तत्तु पुन: परिपाट्या विचार्य्यते—स्वयं भगवान् श्रीव्रजेन्द्रनन्दन: श्रीकृष्णचैतन्य; स च सप्तोत्तरचतुर्दशशत-शकाब्दे प्रकटित:; जगद्गुरुत्वादाचार्य्यत्वमङ्गीकृतवान्। अवतारे तु मुख्यकारणमाह-

'श्रीराधाया: प्रणयमहिमा कीदृशो वानयैवा-
स्वाद्यो येनाद्भु त–मधुरिमा कीदृशो वा मदीय:।
सौख्यञ्चास्या मदनुभवत: कीदृशं वेति लोभा-
त्तद्भावाढ्य: समजनि शचीगर्भसिन्धौ हरीन्दु:॥' इत्यादि।

गौणकारणन्तु भूभाररूप–महापापिनामसुर–स्वभावं दूरीकृत्य कलौ मुख्यधर्म्मनाम-सङ्कीर्त्तन प्रवर्त्तनम्। तस्य प्रमाणम् (श्रीभा० १०।३३।३६) 'अनुग्रहाय भक्तानाम्' इत्यादि। अतएव श्रीनित्या-

मात्र ही नित्य है। जयति जन निवास:' इस में प्रति पादन किया है। श्रीरामानुजाचार्य मध्वाचार्य प्रभृतियों ने लीला मात्र को नित्य माना है। अतएव लीला मात्र नित्य होने से आनुक्रमिक लीला का नित्यत्व में कोई दोष नहीं है, अतएव प्रकट एवं अप्रकट में पर कीया का नित्यत्व है॥

४३ पुनर्वार उस का विचार परिपाटी के द्वारा करते हैं। स्वयं भगवान् श्री व्रजेन्द्रनन्दन श्रीकृष्ण चैतन्य हैं। आप का प्रकट काल १४०७ शकाब्द है। जगद्गुरु होने के कारण आपने आचार्यत्व को भी अङ्गीकार किया। अवतार के लिये मुख्य कारण तीन है। भगवान् की भगवत्ता भक्त होनेसे, प्रभु होने से नहीं, व्रज में भगवान् कृष्ण, सब की प्रीति का विषय हैं, भक्तों का महत्त्व उन के हृदय में कम था, अनुभव नहीं था केवल विधान पालन करना ही था, अतएव भक्त राधा किस प्रकार प्रीति करती है, उस प्रीति का महत्त्व कैसा है, उस को जानना परम आवश्यकहै, यह एकहै, दूसरी बात यह है, मेरी माधुरी भी कैसीहै, जिस को राधा उस असमोद्ध प्रीति के द्वारा आस्वादन करती है? तीसरी है, मेरी माधुरी का अनुभव कर राधा का सुख कैसा होता है, यह तीन वस्तु को जानने के लिए अति

न्दाद्वैत-गदाधर-स्वरूप-रूप-सनातनादीन् निजपार्षदान् प्रकटय्य तद्द्वारेण युगधर्म्मं प्रवर्त्तयित्वा तैः सह पुनरष्टचत्वारिंशद्वर्षपर्य्यन्तं प्रकटमुख्यकारणं मुख्यरसास्वादनं कृतवान्। आस्वादनन्तु सर्व्व-वेदान्त-सार-श्रीभागवत-सम्मतम्, तत्तु प्रकटाप्रकटे नित्यत्वात्। तत्र च ( श्रीभा० १०।३३।१९ )—

'कृत्वा तावन्तमात्मानं यावतीर्गोपयोषितः।
रराम भगवांस्ताभिरात्मारामोऽपि लीलया ॥'

इत्यादि वहुशः। तस्माद्व्रजेन्द्रनन्दनस्य गोपस्त्रीषूपपतित्वम् तासां तु तस्मिन् परकीयात्वं क्रमलीलावसाने प्रकटं नित्यमेव। यतः श्रीमन्महाप्रभुः श्रीकृष्णचैतन्यः सर्व्वभक्तान् तदेवास्वादनं कारयित्वा स्वयमेवास्वादनं कृतवान्।

उत्कट लालसा हुई, और उस लालसा से प्रेरित होकर राधाभाव युक्त होकर शचीगर्भ सिन्धु में हरीन्दु श्रीकृष्ण चैतन्य अवतीर्ण हुए। यह ही उत्तमा भक्ति भागवत धर्म है, इस में प्रत्येक प्राणी को विशेष कर नारी प्रभृति सेवक सत्ता को स्वराट् रूप से मान लिया गया है, अर्थात् भगवान् सर्वस्व देकर अकपट रूप से भक्त के उल्लास के लिए जीवित रहेंगे, भक्त भी अकपट भाव से भगवान के लिए जीवित रहेंगे। व्रज में इस का आस्वादन करना सम्भव नहीं था, अतएव परिशिष्ट लीला में गौराङ्ग होकर उस का आस्वादन कर जगत में प्रचार किया, यह है, भागवतीय उत्तमा भक्ति परकीया भाव।

गौण कारण दूसरा था, आसुरिक स्वभाव सम्पन्न व्यक्ति ही पृथिवी के लिए भार होता है, उस महापापी आसुरिक स्वभाव को विदूरित करके कलि का मुख्य धर्म हरिनाम सङ्कीर्त्तन का प्रवर्त्तन। भा० १०।३३।३६ में उक्त है, भक्तों को अनुग्रह करने के लिए वैसा आचरण करते हैं भगवान्। जिस को सुनकर मानव धर्मलोभी वनेंगे। अतएव श्रीनित्यानन्द अद्वैत गदाधर स्वरूप रूप सनातनादि निज पार्षद को प्रकट कर उनके द्वारा युग धर्म नाम सङ्कीर्त्तन का

तत्र स्वयमास्वादनं यथा श्रीचैतन्यचरितामृते ( मध्य० २।११)

"चण्डीदास, विद्यापति, रायेर नाटक-गीति,
कर्णामृत, श्रीगीतगोविन्द ।
स्वरूप-रामानन्द सने, महाप्रभु रात्रिदिने,
गाय नाचे परम-आनन्द ॥' इति ।

एतदभावे ( भ० र० सि० १।१।२ )—'हृदि यस्य प्रेरणया प्रवर्त्तितोऽहं वराकरूपोऽपि' इति वचनात्, श्रीमहाप्रभुणा निज-प्राकट्यस्य प्रयोजनस्य श्रीमद्रूपगोस्वामि कृत-श्रीमदुज्ज्वलनील-मण्यादिभिः संपादितत्वात् । प्राकट्यमुख्यप्रयोजनस्य हान्या श्री महाप्रभोः प्राकट्यमप्रयोजकम्; तस्मात् श्रीमहाप्रभोः कृतास्वादनस्य परमविज्ञसेव्यत्वम्; यथा तत्र श्रीदासगोस्वामिकृत-स्तवावल्लयाम् ( श्रीचैतन्याष्टके ४ )—

प्रचार किया एवं उनसब के साथ ४८ वर्ष पर्यन्त प्रकट का मुख्य कारण रूप राधाभाव का आस्वादन किया। वह आस्वादन सर्व वेदान्त सार श्रीभागवत सम्मत परकीया भाव ही है, वह प्रकट एवं अप्रकट में नित्य है। श्रीभा० १०।३३।१९—आत्माराम होकर भी भगवान् गोप योषित के समान समान आपने को प्रकट कर लीला पूर्वक रमण किए। इत्यादि अनेक प्रमाण है। अतएव व्रजेन्द्रनन्दन का गोप स्त्री के साथ उपपतित्व है, उन सब का परकीयात्व-क्रम लीला के अवसान में नित्य प्रकटित है। कारण श्रीमहाप्रभु श्रीकृष्ण चैतन्य सकल भक्तों को उसका आस्वादन करवाकर स्वयं आस्वादन किए थे। स्वयं आस्वादन का प्रकार चैतन्य चरितामृत में वर्णित है। चण्डीदास विद्यापति, रायेर नाटक गीति, कर्णामृत श्रीगीत-गोविन्द, स्वरूप रामानन्द सने, महाप्रभु रात्रिदिने, नाचेगाय परम आनन्द" इस के अभाव से उस को कोई नहीं जान पाता। भ० र० सि० १।१।१ श्रीरूप गोस्वामी चरण ने कहा-हृदय में जिन की प्रेरणा से मैं क्षुद्र होकर भी भक्ति रस का अङ्कन कर रहा हूँ। निज प्राकट्य के प्रयोजन को श्रीमन्महाप्रभु ने श्रीमद्रूप गोस्वामी कृत श्रीमदुज्ज्वल

'अनावेद्यां पूर्व्वैरपि मुनिगणैर्भक्तिनिपुणैः
श्रुतेर्गूढ़ां प्रेमोज्ज्वलरसफलां भक्तिलतिकाम्।
कृपालुस्तां गौड़े प्रभुरपि कृपाभिः प्रकटयन्
शचीसूनुः किं मे नयनशरणीं यास्यति पुनः॥' इत्यादि।

४४ अतएव श्रीमहाप्रभोः शक्तिरूपैः श्रीरूपगोस्वामिचरणैः श्रीमदुज्ज्वलनीलमणि-श्रीविदग्धमाधव-दानकेलिकौमुद्यादि-ग्रन्थानां समर्थारति-विलासरूपाणां सूत्ररूपे श्रीस्मरणमङ्गले प्रतिज्ञातम्,— 'श्रीसधा-प्राणबन्धोः' इति। एव लघुभागवतामृते (१।७१७)-

'प्रपञ्चगोचरत्वेन सा लीला प्रकटा मता' इति।

(लघुभाग० १।७३०)—

अथ प्रकटतां लब्धे व्रजेन्द्रविहिते महे।
तत्र प्रकटयत्येव लीला बाल्यादिकाः क्रमात्।
करोति याः प्रकाशेषु कोटिशोऽप्रकटेष्वपि॥

एवं स्तवमाला-स्तवावली-गणोद्देशदीपिकादिषु प्रकटाप्रकटे वर्त्तमानाः परकीया लीलाः प्रार्थनीया वर्त्तन्ते। एवं श्रीमहाप्रभु-

नीलमणि आदि ग्रन्थ में लिखवाया है। प्राकट्य का मुख्य प्रयोजन की हानि होनेपर श्रीमन् महाप्रभु का प्राकट्य भी निष्प्रयोजन होगा अतएव श्रीमन् महाप्रभुका आस्वादन परम विज्ञजन सेव्य ही है, श्री रघुनाथ दास गोस्वामी जी ने स्तवावली के श्रीचैतन्याष्टक में लिखा है—पूर्व पूर्व भक्ति निपुण मुनिगण जिस भक्ति को नहीं जानते थे, जो उज्ज्वल प्रेमरस फल युक्त भक्तिलतिका श्रुति में गूढ़ रूप में है, कृपालु प्रभु निज कृपा से गौड़ देश में अवतीर्ण होकर उस को प्रकट किए हैं, वह शचीनन्दन प्रभु क्या पुनर्वार मेरे नयन समक्ष में उपस्थित होंगे॥

४४ अतएव श्रीमहाप्रभु की शक्ति स्वरूप श्रीरूप गोस्वामीचरण ने उज्ज्वल नीलमणि, विदग्ध माधव, दान केलि कौमुदी प्रभृतिग्रन्थों में समर्थारति की वर्णना की है, एवं उसका सूत्र के वर्णन श्रीस्मरण

पार्षदवर्गैः कृतेषु संस्कृत-प्राकृतमय-ग्रन्थनिचयेषु बहुविधानि प्रमाणानि वर्त्तन्ते। तत्र श्रीमहाप्रभु-परमगुरु-श्रीमाधवेन्द्र पुरी-गोस्वामिपादैः श्रीश्रीभगवत् प्राप्तिकाले प्रार्थितम्—

'अयि दीनदयार्द्र नाथ हे, मथुरानाथ कदावलोक्यसे।
हृदयं त्वदवलोक-कातरं, दयित भ्राम्यति किं करोम्यहम्।

इत्यादि; तत्तु पार्षदाः श्रीकृष्णचैतन्यस्य प्रकटाप्रकटे सभासु स्वयमास्वादितवन्तस्तेषां शिष्य-प्रशिष्यादयस्तद्ग्रन्थद्वारेणे दानीमप्यास्वादयन्ति, (श्रीभा० १०।९०।४८)—'जयति जननिवास इत्यादि-वर्त्तमानप्रयोगैर्लीलामात्रस्य नित्यत्वात्। तत्र प्रमाणानि यथा—श्रीरामानन्दराय-गोस्वामिपादानां जगन्नाथवल्लभाख्यं नाटकम्; श्रीस्वरूपगोस्वामिपादानां करचा; श्रीगदाधर-पण्डित-गोस्वामि-पादानां प्रेमामृत-स्तोत्रादि; श्रीनरहरिठक्कुर-

मङ्गल में किया है, श्रीराधा प्राणवन्धु की प्रेम सेवा साध्याहै। एवं लघु भागवतामृत में ३।७।१७—उक्त है प्रपञ्च गोचर होने से ही वह लीला प्रकट कही जाती है। लघु भागवतामृते १।७३० में उक्त है-व्रजराज की प्रीति से कृष्ण चन्द्र प्रकट होने पर वाल्यादि लीला का प्रकाश क्रमश होता है, जो भी लीला प्रकट प्रकाश में करते हैं, वही सवलीला अप्रकट प्रकाश में भी करते हैं। इस प्रकार स्तवमाला स्तवावली गणोद्देशदीपिका प्रभृति ग्रन्थ में प्रकट अप्रकटमें वर्त्तमान परकीया लीला की ही प्रार्थना है। इस प्रकार श्रीमहाप्रभु के पार्षद गण द्वारा रचित संस्कृत प्राकृतमय ग्रन्थ नियम में वहुविध प्रमाण समूह है। श्रीमन्महाप्रभु के परम गुरु श्रीमाधवेन्द्र पुरीगोस्वामी पाद ने श्री भगवत् प्राप्तिकालमें प्रार्थना की है—हे दीनदयार्द्रनाथ! हे मथुरानाथ! कव दर्शन देओगे, हृदय तुम्हारे अवलोकन के लिए कातर है। हे प्रिय! मैं क्या करूँ। इत्यादि। पार्षदगण श्री-कृष्णचैतन्य देव के प्रकट अप्रकट में सभा में परकीया भाव का आस्वादन किये हैं, शिष्य प्रशिष्य के द्वारा ग्रन्थ रचना के द्वारा भी उस का आस्वादन कराये हैं, श्रीभा० १०।९०।४१ जयति जननिवासः

पादानां श्रीकृष्णभजनामृतादि ; श्रीवासुदेवघोषपादानां पदावल्यादि; श्रीराघवपण्डितगोस्वामि-पादानां श्रीभक्तिरत्न-प्रकाशादि; श्री-विष्णु पुरीगोस्वामिपादानां भक्तिरत्नावल्यादि ; श्रीसार्व्वभौमभट्टाचार्य्य-पादानां श्रीमन्महाप्रभोः शतनामस्तोत्रादि; श्रीप्रबोधानन्द-सरस्वतीपादानां श्रीवृन्दावनशतकादि; श्रीसनातनगोस्वामिपादानां श्रीवैष्णवतोषण्यादि; श्रीरूपगोस्वामिपादानां श्रीभक्तिरसामृतसिन्धुः, श्रीउज्ज्वलनीलमणिः, श्रीविदग्धमाधवादि; श्रीगोपालभट्टगोस्वामि-पादानां श्रीभागवत-सन्दर्भ-श्रीकृष्णकर्णामृतटीकादि; श्रीरघुनाथ-भट्टगोस्वामि-पादानां तत्‌शिष्यद्वारेण श्रीभागवतादिभक्तिशास्त्र-पठनपाठनादिकम् ; श्रीरघुनाथदासगोस्वामिपादानां मुक्ताचरित-स्वतमालादि ; श्रीकर्णपूरगोस्वामिपादानां श्रीआनन्दवृन्दावनचम्पू-

यहाँपर वर्त्तमान प्रयोग से लीला मात्र का ही नित्यत्व सूचित हुआ है। प्रमाण समूह—श्रीरामानन्दराय गोस्वामीकृत जगन्नाथ वल्लभ नाटक, श्रीस्वरूप गोस्वामी पाद की करचा। श्रीगदाधर पण्डित गोस्वामि पाद कृत प्रेमामृत स्त्रोत्रादि। श्रीनरहरि ठक्कुरकृत श्री कृष्ण भजनामृनादि। श्रीवासुदेव घोष पाद के पदावली प्रभृति। श्रीराधव पण्डित कृत भक्तिरत्न प्रकाशादि, श्रीविष्णुपुरी गोस्वामी पाद कृत भक्ति रत्नावली प्रभृति। श्रीवासुदेव सार्वभौमभट्टाचार्य पाद कृत श्रीमन् महाप्रभु के शतनामस्त्रोत्रादि। श्रीप्रवोधानन्द-सरस्वती पाद कृत श्रीवृन्दावन शतकादि, श्रीसनातन गोस्वामी पाद कृत श्रीवैष्णव तोषणी प्रभृति। श्रीरूप गोस्वामी पाद कृत श्रीभक्ति रसामृत सिन्धु, श्रीउज्ज्वल नीलमणि, श्रीविदग्धमाधवादि। श्री गोपाल भट्ट गोस्वामी पाद कृत भागवत सन्दर्भ श्रीकृष्ण कर्णामृत टीकादि। श्रीरघुनाथ भट्टगोस्वामिपाद कृत एवं उन के शिष्यकृत श्रीभागवतादि भक्ति शास्त्र पठन पाठनादि। श्रीरघुनाथ दास गोस्वामी पाद कृत मुक्ता चरित स्तवमालादि, श्रीकर्णपूर गोस्वामि पाद कृत आनन्द वृन्दावन चम्पू श्रीकृष्णाह्निक कौमुदी, श्रीगौर-गणोद्देश दीपिका, श्रीचैतन्य चन्द्रोदय नाटकादि। श्रीभागवता

**श्रीकृष्णाह्निककौमुदी–श्रीगौरगणोद्देश–श्रीचैतन्यचन्द्रोदयनाटकादि; श्रीभागवताचार्य्यपादानां श्रीकृष्णप्रेमतरङ्गिनी ; तत्र श्रीमदनन्ताचार्य्य–पाद–श्रीनयनानन्दपादादीनां पदावल्यादि ।**

एवं च श्रीमहाप्रभोस्ताम्बुलचर्वित-जन्म–श्रीनित्यानन्दप्रभु-सेवक—-श्रीनारायणीपुत्र-—श्रीवृन्दावनठक्कुर-—वर्णित--श्रीचैतन्य-भागवतादि ; तत्तु श्रीनित्यानन्दप्रभुणा साक्षात् प्रेरणया लिखितं भवति ; तथा हि श्रीचैतन्यचरितामृते ( आदि० ८म १० )—

'चैतन्यलीलार व्यास वृन्दावनदास' इत्यादि ।

४५ एवं श्रीमहाप्रभोर्म्मतविरोधिनः श्रीमदच्युतानन्दादि विना श्रीमदद्वैतप्रभुपुत्राः श्रीमदद्वैताचार्य्यपादैस्त्यक्ताः ; तत्तु श्रीचैतन्य-चरितामृतादौ प्रसिद्धम् । एवमुपमहत्सु—श्रीलोचनदासठक्कुरकृत-श्रीचैतन्यमङ्गल-दुर्लभसारादि; श्रीकृष्णदास-कविराज महानुभावकृत श्रीगोविन्दलीलामृत--श्रीचैतन्यचरितामृत-श्रीकृष्णकर्णामृतटीकादि ;

चार्य पाद कृत श्रीकृष्ण प्रेमतरङ्गिनी श्रीमदनन्ताचार्य पाद कृत श्री-नयनानन्द पाद कृत पदावली प्रभृति एवं श्रीमन् महाप्रभु के चर्वित ताम्बूल से जन्म श्रीनित्यानन्द प्रभु के सेवक श्रीनारायण के पुत्र श्रीवृन्दावन ठक्कुर प्रणीत श्रीचैतन्य भागवतादि उन्होंने श्रीनित्या-नन्द प्रभु की साक्षात् प्रेरणा से उस ग्रन्थ को लिखा है, चैतन्य चरितामृत में उक्त है, चैतन्य लीला का व्यास वृन्दावन दास है ।

४५ श्रीअद्वैत प्रभु के पुत्र श्रीअच्युतानन्दादि को छोड़कर श्री अद्वैत प्रभु के पुत्रगण—श्रीमन्महाप्रभु के मत के विरोधी थे। इस लिए श्रीअद्वैत प्रभुने अपने उन पुत्रों का त्याग किया था। चैतन्य चरितामृत में प्रसिद्ध लेख है। इस प्रकार उपमहत् गण के मध्य में श्रीलोचन दास ठक्कुर कृत श्रीचैतन्य मङ्गल दुर्लभसारादि श्रीकृष्ण दास कविराज महानुभाव कृत–श्रीगोविन्द लीलामृत श्रीकृष्ण कर्णा-मृत श्रीचैतन्यचरितामृतादि। उन के शिष्य—श्रीमुकुन्द दासकृत श्रीभक्तिरसामृत सिन्धु की टीकादि। श्रीनिवासाचार्यकृत चतुःश्लोकी टीकादि, श्रीनरोत्तम ठक्कुरकृत, श्रीगोविन्द कविराज कृत पदावली

श्रीनिवासाचार्यकृत-चतुःश्लोकी-टीकादि; श्रीनरोत्तमठक्कुर-श्री-गोविन्द-कविराज-कृत-पदावल्यादयः सर्वत्र प्रसिद्धाः। एवमुत्कल-निवासि-श्रीश्यामानन्दादीनां पदावली प्रसिद्धा। किञ्च, श्रीमन्-महाप्रभोर्म्मन्त्रसेवकः (साक्षात्) कोऽपि नास्ति; किन्तु ये तन्मतानु-सारिणस्ते तस्य सेवकाः; एवं श्रीरूपसनातनादीनाञ्च। तत्र शक्ति-सञ्चारकृतसेवकत्वे प्रमाणं 'मनःशिक्षा'याम् (७, १२)—'यदीच्छेरा वासं व्रजभुवि सरागं प्रतिजनुः' इत्यत्रैव, 'सयूथ-श्रीरूपानुग इह भवन् गोकुलवने' इत्यादि; श्रीवृहद्भागवतामृत—पूर्वखण्डे (१।१।१। —'नमश्चैतन्यचन्द्राय स्वनामामृतसेविने। यद्रूपाश्रयणाद्यस्य' इत्यादि ॥

४६ अथ श्रीजीवगोस्वामिपादः श्रीमद्रूपपादस्य भ्रातुष्पुत्र-स्तस्मात्तं मन्त्रसेवकं कृतवान्। तस्य तु श्रीमन्महाप्रभोर्दर्शनं नास्ति श्रीमद्-रूपादीनामप्रकटे परकीयात्वं स्वकीयात्व च मतं स्वग्रन्थे

प्रभृति सर्वत्र प्रसिद्ध है। इस प्रकार उत्कल निवासी श्रीश्यामानन्द प्रभृति की पदावली प्रसिद्ध है। और भी श्रीमन्महाप्रभु के साक्षात् मन्त्रसेवक कोई भी नहीं है। किन्तु जो उनके मतानुसार चलते हैं, वे सब उनके सेवक हैं। इस प्रकार श्रीरूप सनातन प्रभृति भी हैं, उन में शक्ति सञ्चारकर सेवकत्व में प्रमाण मनः शिक्षा में ४, १२, है, इस व्रज वन में श्रीरूपादि हैं, श्रीवृहद् भागवतामृत के पूर्व खण्ड में उक्त है—निजनामामृत सेवी श्रीकृष्ण चैतन्य चन्द्र को नमस्कार करता हूँ, जिन के रूप के आश्रय से वाञ्छित फललाभ होता है।

४६ श्रीजीव गोस्वामि पाद श्रीमद् रूप गोस्वामी चरण के भ्रातुष्पुत्र थे, इसलिए उन्हे मन्त्र सेवक श्रीरूप गोस्वामी जीने किया था, श्रीजीव गोस्वामी जीने श्रीमन्महाप्रभु का दर्शन नहीं पाया है, श्रीमद् रूपादी के अप्रकट में उन्होंने निज ग्रन्थ में परकीयात्व स्वीयात्व मत को लिखा है, उस में स्वकीयात्व को श्रीमद् रघुनाथ दास गोस्वामि प्रभृति श्रीचैतन्य पार्षदगण, जो रूपगोस्वामी के सङ्गी थे, उन्होंने अस्वीकार किया। श्रीजीव गोस्वामी जी के वह

लिखितं तेन। तत्र स्वकीयात्वं श्रीमद्रघुनाथदासप्रभृतयः श्रीचैतन्य पार्षदाः श्रीरूपादिसङ्गिनोऽनङ्गीकृतवन्तः। श्रीजीवपादस्य तत्तु स्वेच्छालिखनं न भवति, किन्तु परेच्छालिखनम्। तत्पाण्डित्य-वलात् लिखन-परिपाटीदर्शनेन पण्डितजनास्तत् स्वीकुर्व्वन्ति। ये च लब्ध-श्रीमहाप्रभुकृपा लब्ध-श्रीरूपादिकृपास्ते तु सर्वथा नाङ्गी कुर्व्वन्ति। एतन्मत-प्रवर्त्तनन्तु कालकृतमेव, 'तत्तु सर्व्वं कालकृतं मन्ये' इत्यादि, श्रेयांसि वहुविघ्नानि' इत्यादि च।

४७ अत तु केचिदेवं वदन्ति— श्रीजीवपादस्तु भ्रातुष्पुत्र एवं शिष्यश्च; तन्मतं स्वकीयात्वमेव, तस्मात् (श्रीभा० १।१।८) 'ब्रूयुः स्निग्धस्य शिष्यस्य गुरवो गुह्यमप्युत' इत्यादि-न्यायेन श्रीमद् रूपपादमतं स्वकीयात्वमेव। एवञ्चेत् श्रीमन्महाप्रभोः पार्षदेषु विरुद्धं जातम्। श्रीमन्महाप्रभुणा तु श्रीमद्रूपसनातनौ प्रति स्वकीयात्वमुपदिष्टम्, अन्येषु तु परकीयात्वमुपदिष्टमिति गुरुतरविरुद्धं

लेख स्वेच्छा कृत नहीं है, किन्तु परेच्छाकृत है। उन के पाण्डित्य एवं लिखन परिपाटी को देखकर पण्डित लोक उसे मान लेंगे। जिन्हों ने श्रीमन् महाप्रभु की कृपा एवं श्रीरूपादी की कृपा प्राप्त की है, वे सव उस मत को नहीं मानेंगे, स्वकीयामत का प्रवर्त्तन काल कृत है, सव काल कराता है, और मङ्गल में अनेक विघ्न भी होते हैं।

४७ इस विषय में कुछ लोक कहते हैं कि—श्रीजीव चरण श्री रूप गोस्वामी के भ्रातुष्पुत्र एवं शिष्य हैं। श्रीरूपका मत स्वकीया ही है, इस लिए भा० १।१।८ में लिखा है—गूढ़ रहस्य शिष्य को कहे। इस न्याय से श्रीरूप पाद का मत स्वकीया ही है। इस प्रकार कहने से श्रीमन्महाप्रभु के पार्षदों में विरोध उपस्थित होगा। श्रीमन् महाप्रभुने श्रीरूप सनातन को स्वकीया उपदेश किया, अन्य सव को परकीया उपदेश किया, इस प्रकार गुरुतर विरोध उपस्थित होगा॥ श्रीमद् रूप गोस्वामी पाद के शक्ति सञ्चारोपदिष्ट श्री-मज्जीव पाद प्रभृति शिष्यों में सव के मत में परकीया ही है। केवल

स्यात् । श्रीमद्रूपगोस्वामिपादानां शक्तिसञ्चारोपदिष्ट-श्रीमज्जीव-पादादि-शिष्याणां सर्व्वेषां परकीयैव, केवलं श्रीजीवगोस्वामिपाद-गणमध्ये क्वचित् क्वचिद्गुरुविरुद्धमाश्चर्य्यं दृश्यते । यतोऽद्यापि तेषु सन्तानेषु एवं शिष्येषु स्वस्व-ग्रन्थेषु प्रकटेऽप्रकटे च परकीयात्वं दृश्यते, तस्मात् श्रीमन्महाप्रभोस्तत्-पार्षदादीनाञ्च परकीयात्वमेव मतम् । श्रीमज्जीवपादेन तु यत् स्वकीयात्वं लिखितम्, तत् परेच्छयैव अतएव श्रीकृष्णसन्दर्भे स्वकीयासिद्धान्तानन्तरं तद्दोषः प्रार्थनया स्वय मेव क्षमापितः; तथा हि ( तत्रैव १८१ अनु० )—

'यदेतत्तु मया क्षुद्रतरेण तरलायितम् ।
क्षमतां तत् क्षमाशीलः श्रीमान् गोकुलवल्लभः ।।'

४८ तत्र शिष्यपरम्परा-श्रवणमाह—गोपालदासनामा कोऽपि वैश्यः श्रीजीवगोस्वामिपादानां प्रियशिष्यः । तत् प्रार्थना-परवशेन

श्रीजीव गोस्वामी पाद के गण के मध्य में किसी किसीमें गुरुद्रोह आचरण आश्चर्यरूपसे दिखाई देता है, कारण आज भी उन की परम्परा में शिष्य एवं सन्तानों में निज निज ग्रन्थ में प्रकट एवं अप्रकट में परकीयात्व ही देखने में आता है । अतएव श्रीमन् महा प्रभु एवं उनके पार्षदगण के मत परकीया ही हैं । श्रीजीव गोस्वामी पादने जो स्वकीयात्व लिखा है वह परेच्छासे ही है, अतएव श्रीकृष्ण सन्दर्भ में स्वकीया सिद्धान्त लिखने के वाद निज दोष को स्वीकार कर उन्होंने स्वयं ही क्षमा प्रार्थना की है । श्रीकृष्ण सन्दर्भ १८१ अनुच्छेद, अतिक्षुद्र होकर जो कुछ भी मैंने रस को तरल किया है, उस के लिए क्षमाशील श्रीमान् गोकुल वल्लभ मुझे क्षमा करेंगे ।

४८ श्रीजीव गोस्वामी पाद की शिष्य परम्परा इस प्रकार है, गोपाल दास नामक एक वैश्य श्रीजीव गोस्वामी चरण के प्रिय शिष्य था । उस की प्रार्थना से सन्तुष्ट होकर उन्होंने स्वकीयात्व को लिखा है । अतएव श्रीमद् रूप सनातनादि के ग्रन्थ में कहीं कहीं पर कुछ कुछ परिवर्त्तन भी किया है । इस प्रकार करने के वाद आपने

तेन स्वकीयात्वं सिद्धान्तितम्। अतएव श्रीमद्रूपसनातनपादादीनां ग्रन्थेषु कुत्र कुत्रापि छेदनादिकं कृतम्; कृत्वापि तत्र तत्रापि स्वदोष-क्षमापणं कृतम्; यथा श्रीकृष्णसन्दर्भे (१८१ अनु० )—'यदेतत्तु मया क्षुद्रतरेण तरलायितम्;' श्रीलघुवैष्णवतोषण्याञ्च ( सर्व्वान्तिमे )—

'लीलास्तवष्टिप्पनी च सेयं वैष्णवतोषणी।
या संक्षिप्ता मया क्षुद्रतरेणापि तदाज्ञया ।।'
अबुद्धया बुद्धया वा यदिह मयकाऽलेखि सहसा
तथा यद्वाच्छेदि द्वयमपि सहेरन् परमपि।
अहो किंवा यद्यन्मनसि मम विस्फोरितमभु-
दमीभिस्तन्मात्रं यदि वलमलं शङ्कितकुलैः ।।

हरिनामामृते तन्नाम स्पष्टमेवोट्टङ्कितम्; तद्यथा—

हरिनामामृत-संज्ञं, यदर्थमेतत् प्रकाशयामासे।
उभयत्र मम मित्रं स, भवतु गोपालदासाख्यः ।।

निज दोष के लिए क्षमा प्रार्थना की है। श्रीकृष्ण सन्दर्भ १८१ अनुच्छेद में, अति क्षुद्र होकर जो कुछ मैंने तरल किया है, क्षमा करें श्रीलघु वैष्णव तोषणी के अन्तिम में लिखा है—लीलास्वव टिप्पनी एवं वैष्णव तोषणी के लेखमें क्षुद्रतर होकर भी मैंने जो कुछ किया है, वह बुद्धि से हो, अथवा अबुद्धि से ही हो, सहसा मैंने जो कुछ लेखा काटा है, उस को सहन करेंगे, अथवा मन में आपने प्रेरणा देकर जो कुछ भी करवाया है, वही मैंने किया है।

हरिनामामृत में उनका नाम आपने स्पष्टत ही लिखा है, हरि नामामृत जिस के लिए मैंने लिखा है, वह गोपाल दास उभयत्र मेरा मित्र हो। गोपाल चम्पूके मङ्गला चरण में लिखा है-श्रीगोपाल के गण गोपाल के प्रमोद के लिए यह गोपाल चम्पू आनन्द दायक हो श्रीमद् उज्ज्वल नीलमणि की टीका में आपने लिखा है—कुछ तो स्वेच्छा से लिखा है, और परेच्छा से, स्वेच्छा से जो लिखा वह पर-कीया वाद है, उस का सम्बन्ध परकीया वाद मय लेखन के साथ होगा। और स्वकीया का जो लेख मैंने दूसरे की इच्छा के लिए

श्रीगोपालचम्पू-मङ्गलाचरणे च—

'श्रीगोपालगणानां, गोपालानां प्रमोदाय ।
भवतु समन्तादेषा, नाम्ना गोपालचम्पूर्या ।।'

श्रीमदुज्ज्वलनीलमणि-टीकायाश्च—

'स्वेच्छया लिखितं किञ्चित् किञ्चिदत्र परेच्छया ।
यत् पुर्वापर-सम्वन्ध तत् पूर्वमपरं परम् ।।'

श्रीभागवत-सन्दर्भे च—

तौ सन्तोषयतः सन्तौ श्रीलरूपसनातनौ ।
दाक्षिणात्येन भट्टेन पुनरेतद्विविच्यते ।।
तस्याद्यं ग्रन्थनालेखं क्रान्तव्युत्क्रान्त-खण्डितम् ।
पर्य्यालोच्याथ पर्य्यायं कृत्वा लिखति जीवकः ।।

इत्यादिकञ्च ।

श्रीकृष्णदासनामा ब्राह्मणो गौड़ीयः श्रीमज्जीवविद्याध्ययने शिष्यः न तु मन्त्रशिष्यः, तेषां शिष्याकरणात् । शिष्यकरणे प्रवृत्ति श्चेत्तर्हि श्रीनिवास-नरोत्तमादीनां शिष्यत्वं श्रीजीवेन कथमत्याजि ? तस्मात् तेष्वप्रकटेषु स्वाधिकारेच्छया तन्मन्त्रशिष्यत्व-प्रकटनं कृष्ण दासेन स्वेनैव कृतम्; तेषां ग्रन्थेषु छेदनादि कुत्र कृतम्, कुत्रापि पल्लवितम् ।।

लिखा उस का सम्बन्ध स्वकीया के साथ जोड़ना होगा । श्रीभागवत सन्दर्भ में आपने लिखा है—श्रीरूप सनातन के सन्तोष के लिए दाक्षिणात्य भट्ट ने इस ग्रन्थ को लिखा था, उनका प्रथम लेख को मैंने पर्याय करके लिख रहा हूँ ।

श्री कृष्णदास नामक गौड़ीय ब्राह्मण श्रीजीव गोस्वामी के विद्यार्थी था, मन्त्र शिष्य नहीं श्रीजीव गोस्वामी ने मन्त्र शिष्य नहीं किया है । शिष्य करने की रुचि होती तो श्रीनिवास नरोत्तम प्रभृति को भी शिष्य करते, अतएव श्रीजीव गोस्वामी जी के अप्रकट काल में अधिकार जमाने की इच्छा से अपने को मन्त्र शिष्य रूपसे

अतएव श्रीवैष्णवतोषण्यादिषु कुत्र कुत्रापि संशयास्पदत्वेन न सर्व्वसन्मतम्। तस्मादेकस्याप्रामाण्येनान्यस्याप्रामाण्यमिति न्यायात् स्वकीयात्वसिद्धान्ते सर्वेषां श्रीचैतन्यपार्षदानामसम्मतत्वेन श्रीमत्-जीवपादेन तु परापेक्षाकृतेन च परकीयात्वं सर्व्वसम्मतं मतमिति सङ्गतम् ॥

इति श्रीगोविन्ददेव-सेवाधिपति श्रीहरिदासगोस्वामिचरणानु जीवि-श्रीराधाकृष्णदासोदीरिता साधनदीपिका नवमकक्षा ॥

***

## दशमकक्षा

१ (भ० र० सि०, पूर्व्व-वि० सामान्य भक्ति०)—

तत्रादौ सुष्ठु वैशिष्ट्यमस्याः कथयितुं स्फुटम् ।
लक्षणं क्रियते भक्तेरुत्तमायाः सतां मतम् ।१।

प्रचार कृष्णदास ने स्वयं ही किया था। और श्रीजीव गोस्वामी के ग्रन्थों में कहीं पर काटा और कहींपर विस्तार भी कियाथा।

अतएव वैष्णवतोषणी आदि में कहीं कहीं पर संशयास्पद होता है, वह सर्व सम्मत नहीं है, अतएव एक के अप्रमाण से दूसरे का अप्रामाण्य होता है, इस से निर्णय होता है कि स्वकीया सिद्धान्त में समस्त श्री चैतन्य पार्षदों की असम्मति है, श्री जीव गोस्वामी जीने परापेक्षा से स्वकीया को लिखाहै, किन्तु परकीया मत हीं उनका एवं सव परि कर के सम्मत है।

इति श्रीगोविन्ददेव सेवाधिपति श्रीहरिदासगोस्वामि चरणानुजीविश्रीराधाकृष्णदासलिखितसाधनदीपिकाकी नवमकक्षा ॥

**

## दशमकक्षा

१ प्रथम विभाग में भक्ति की विशेषता को दिखाने के लिए सज्जनगण सम्मत उत्तमा भक्ति का लक्षण करते हैं।

तद्यथा—

अन्याभिलाषिताशून्यं ज्ञानकर्माद्यनावृतम् ।
आनुकूल्येन कृष्णानुशीलनं भक्तिरुत्तमा ।।२।।

यथा नारदपञ्चरात्रे—

सर्वोपाधि-विनिर्मुक्तं तत्परत्वेन निर्म्मलम् ।
हृषीकेण हृषीकेश-सेवनं भक्तिरुच्यते ।।३।।

श्रीभागवते तृतीयस्कन्धे च ( ३।२९।१२-१४ )—

' अहैतुक्यव्यवहिता या भक्तिः पुरुषोत्तमे ।।
सालोक्यसार्ष्टि-सारूप्य-सामीप्यैकत्वमप्युत ।
दीयमानं न गृह्णन्ति विना मत्सेवनं जनाः ।।४।।
स एव भक्तियोगाख्य आत्यन्तिक उदाहृतः ।
सालोक्येत्यादिपद्यस्थ-भक्तोत्कर्ष-निरूपणम् ।।
भक्तेर्विशुद्धता-व्यक्तया लक्षणे पर्य्यवस्यति ।।५।।
क्लेशघ्नी शुभदा मोक्षलघुताकृत् सुदुर्लभा ।
सान्द्रानन्दविशेषात्मा श्रीकृष्णाकर्षिणी मता ।।६।।

२ लक्षण इस प्रकार है—अन्याभिलाषिताशून्यं ज्ञान कर्म्मादि के द्वारा अनावृत आनुकूल्य से कृष्णानु शीलन ही उत्तमा भक्ति है,
३ नारद पञ्चरात्र में उक्त है—सर्वोपाधि विनिर्मुक्त अर्थात् अन्याभिलाषिता शून्य-तत् परत्वेन सकलेन्द्रिय द्वारा आनुकूल्य से सेवन अनुशीलन निर्मल—ज्ञान कर्मादि से अनावृत ही उत्तम भक्ति है,
(४) भा० ३।२९।१२-१२ अहैतुकी अव्यवहिता जो भक्ति पुरुषोत्तम के प्रति होती है, वह उत्तम भक्ति है, उसके अधिकारी को सालोक्य समान ऐश्वर्य, समानरूप, समीप में अवस्थान, सायुज्यमुक्ति देने पर भी वे लोक भगवत् सेवा को छोड़कर कुछ नहीं लेते हैं। सालोक्य प्रभृतिके द्वाराभक्तिका उत्कर्ष दिखाया गयाहै, किन्तु भक्तिलक्षणाक्रान्त भक्ति ही विशुद्ध भक्ति होती है। वह भक्ति साधन दशा में क्लेशघ्नी शुभदा होतीहै, भाव अवस्था में मोक्ष लघुताकृत् सुदुर्लभ

अग्रतो वक्ष्यमाणायास्त्रिधा भक्तेरनुक्रमात् ।
द्विशः षड्भिः पदैरेतन्माहात्म्यं परिकीर्त्तितम् ।।७।।

किञ्च,—

स्वल्पापि रुचिरेव स्याद्भक्तितत्त्वाववोधिका ।
युक्तिस्तु केवला नैव यदस्या अप्रतिष्ठता ।।८।।

तथा च प्राचीनैरप्युक्तम्—

यत्नेनापादितोऽप्यर्थः कुशलैरनुमातृभिः ।
अभियुक्ततरैरन्यैरन्यथैवोपपाद्यते ।।९।।

( भ० र० सि० पूर्व्व-वि० साधनभक्ति० )—

सा भक्तिः साधनं भावः प्रेमा चेति त्रिधोदिता ।।१०।।

तत्र साधनभक्तिः—

कृतिसाध्या भवेत् साध्यभावा सा साधनाभिधा ।
नित्यसिद्धस्य भावस्य प्राकट्यं हृदि साध्यता ।।११।।

वैधी रागानुगा चेति सा द्विधा साधनाभिधा ।।

प्रेम अवस्था में सान्द्रानन्द विशेषात्मा एवं श्रीकृष्णाकर्षिणी होती है । साधन भक्ति का माहात्म्य क्लेशघ्नी शुभदा पद से भाव भक्ति का वैशिष्ट्य मोक्षलघुता कृत् सुदुर्लभा के द्वारा सान्द्रानन्द विशेषात्मा श्रीकृष्णाकर्षिणीके द्वारा प्रेम भक्तिका वैशिष्ट्य कहा गया है, साधन भक्ति के दो गुण-भाव भक्ति के चार, प्रेम भक्ति में छ गुण विद्यमान हैं । ५। प्राचीन संस्कार के द्वारा यदि श्रीमद्भागवत प्रभृति भक्ति तत्त्व प्रति पादक शास्त्र में उत्तम वुद्धि होती है, वह ही भक्ति को जान सकती हैं, केवल शुष्क तर्क युक्ति के द्वारा भक्ति का वोध नहीं होता है, युक्ति तर्क अस्थिर पदार्थ होते हैं । ६। प्राचीनोंने कहा है कि यत्नसे भी प्रतिपादित वस्तुको प्रतिभाशील व्यक्ति खण्डन कर देता है । ७। भ० र० सि० पूर्व्व वि० साधन भक्ति—उक्त लक्षणाक्रान्त उत्तमा भक्ति साधन भाव प्रेम भेद से तीन प्रकार होते हैं । ८। साधनभक्ति—प्रयत्न द्वारा साध्य भावोत्पन्नकारिणी भक्ति

तत्र वैधी—

यत्र रागानवाप्तत्वात् प्रवृत्तिरुपजायते।
शासनेनैव शास्त्रस्य सा वैधी भक्तिरुच्यते ॥१२॥

यथा द्वितीये ( श्रीभा० २।१५ )—

तस्माद्भारत सर्व्वात्मा भगवान् हरिरीश्वरः।
श्रोतव्यः कीर्त्तितव्यश्च ध्येयः पूज्यश्च नित्यदा ॥१३॥

तत्राधिकारी—

यः केनाप्यतिभाग्येन जातश्रद्धोऽस्य सेवने।
नातिसक्तो न वैराग्यभागस्यामधिकार्य्यसौ ॥१४॥

यथैकादशे ( श्रीभा० ११।२०।८ )

यदृच्छया मत् कथादौ जातश्रद्धस्तु यः पुमान्।
न निर्विण्णो नातिसक्तो भक्तियोगोऽस्य सिद्धिदः ॥१५॥

अथ रागानुगा—

विराजन्तीमभिव्यक्तं व्रजवासिजनादिषु।
रागात्मिकामनुसृता या सा रागानुगोच्यते ॥१६॥

को साधन भक्ति कहते हैं, श्रीगुरुदेव से लेकर नित्य सिद्ध परिकरों में वर्त्तमान भाव भक्ति का साधक हृदय में प्रेरणा रूपमें प्राकट्य का नाम ही भाव साध्य है। यह वैधी रागानुगा भेद से दो प्रकार साधनभक्ति होती है, '१' वैधी भक्ति—जहाँपर साधक की प्रवृत्ति शास्त्र के अनुशासन से होती है, भक्ति विषयिणी तृष्णा से नहीं उसे वैधी भक्ति कहते हैं ।१०। यथा द्वितीय में भा० २।१।५ इस लिए १३ हे भारत ! सर्वात्मा भगवान हरि ईश्वर ही नित्य श्रवणीय कीर्त्तनीय ध्येय एवं पूज्य होते हैं।

१२। उसका अधिकारी, जो व्यक्ति महत् सङ्गसे सौभाग्य १३।१४ प्राप्तकर श्रीहरि की सेवा में श्रद्धालु हुआ है, जागतिक विषयों में अतिशय आसक्ति एवं वैराग्य भी नहीं, वह व्यक्ति इस भक्ति का अधिकारी है १५। भा० ११।२०।८ में उक्त है—महत् एवं ईश्वर की कृपा से श्री-

टीका—अभिव्यक्त सुव्यक्त यथा स्यात्तथा व्रजवासिजनादिषु विराजन्तीं रागात्मिकां भक्तिमनुसृता या भक्तिः, सा रागानुगा उच्यते इति योजना। व्रजवासिजनादिष्वित्यत्र जनपदेन मनुष्य-मात्रं बोधितम्; आदि-पदेन पशुपक्ष्यादयो गृह्यन्ते। अतएवोक्तम् (श्रीभा० १०।२६।४०)—

'त्रैलोक्यसौभगमिदञ्च निरीक्ष्य रूपं
यद् गोद्विजद्रुममृगाः पुलकान्यबिभ्रन्' इति।

विराजन्तीमिति विशेषेण राजमानाम्, न तु धामान्तर-परिवारभक्तिवदैश्वर्य्यज्ञानादिनाभिभूताम्; अनुसृतेत्यत्रानुसरणं नित्य सिद्धव्रजवासिजन-भावचेष्टानुगमनात्मकानुकरणम्; तच्च श्रीकृष्ण प्रेष्ठानुगतनिष्ठं तदेवानुगत्यमिति फलितार्थः; तच्च तदनुगतत्वे सति तादृशकायवाङ्मानसीयसेवाकर्त्तृत्वञ्चेति।

१४ श्रीकृष्णप्रेष्ठाधीनत्वं यथैकादशे (श्रीभा० ११।३।२१)

हरि कथा सेवनादि में यदि प्रवृत्ति होती है, विषय में निर्विण्ण, एवं अति आसक्ति भी नहींहै, यह वैधी भक्ति योग उसके लिए सुगम होता है। १६ रागानुगा—सुव्यक्त रूप से व्रजवासि जनादि में जो भक्ति विराजित है, उस रागात्मिकाके अनुसरण जो से भक्ति होती है, उस को रागानुगा कहते हैं। व्रजवासि जनादि यहाँपर जन पद से मनुष्य मात्र को जानना होगा, आदि पद से पशु पक्षी प्रभृति को जानना होगा, व्रज के स्थावर जङ्गम समस्त पदार्थ की ही प्रेममयी तृष्णा कृष्ण के प्रति है। भा० १०।२६।४० में उक्त है, तीन लोकों के सौभाग्य पूर्ण रूप श्रीकृष्ण के रूप को देखकर व्रज के गो, पक्षी, वृक्षलता, मृग प्रभृति के शरीर में पुलक व्याप्त हो जाता है। विराजन्ती शब्द से विशेष रूप से शोभित भक्ति को ही जानना होगा किन्तु धामान्तर परिवार की भक्ति की भाँति ऐश्वर्यादि ज्ञान से अभिभूत नहीं है, अनुसृत्य शब्द का अर्थ अनुसरण है, नित्य सिद्ध व्रज वासी जन के भाव चेष्टा प्रभृति के अनुसरणात्मक अनुकरण है, श्रीकृष्ण प्रेष्ठ श्रीगुरु देव के आनुगत्य से ही भजन करना होगा, उस

तस्माद्गुरुं प्रपद्येत जिज्ञासुः श्रेय उत्तमम् ।
शाब्दे परे च निष्णातं ब्रह्मण्युपशमाश्रयम् ॥१७॥

टीका च ' उत्तमं श्रेयो जिज्ञासुः, शाब्दे ब्रह्मणि वेदाख्ये निष्णातम्, अन्यथा संशयनिरासकत्वायोग्यत्वाद्धेतोः; परे ब्रह्मणि अपरोक्षानुभवे च निष्णातम्, अन्यथा यतो वोधसञ्चाराभावात्; परे ब्रह्मणि निष्णातत्वे द्योतकमाह—उपशमाश्रयमिति ।'

तत्रैव श्रीमदुद्धवं प्रति श्रीभगवान् ( श्रीभा० ११।१०।१२)—
'आचार्य्योऽरणिराद्यः स्यादन्तेवास्युत्तरारणिः ।
तत्सन्धानं प्रवचनं विद्या सन्धिः सुखावहा ॥

टीका—आद्योऽधरः, तत्सन्धानञ्च तयोर्मध्यमं मन्थनकाष्ठम् प्रवचनमुपदेशः, विद्या शास्त्रोत्थं ज्ञानम्, तत्र सन्धौ भवोऽग्निरिव । तथा च श्रुतिः—' आचार्य्यं पूर्वरूपः अन्तेवास्युत्तररूपः ' इत्यादि । अतएव ' तद्विज्ञानार्थं स गुरुमेवाभिगच्छेत् ' इति, आचार्य्यवान् पुरुषो वेद' इति, 'नैषा तर्केण मतिरापनेया ' इत्यादि च ।

को ही आनुगत्य शब्द से कहा गया है, सारार्थं यह हुआ कि श्रीगुरु देव के अनुगत होकर कायिक वाचिक मानसिकी सेवा करना ही रागानुगा भक्ति है ।

१७ श्रीकृष्ण प्रेष्ठाधीन होने के विषय में भा० ११।३।२१ में उक्त है—उमम श्रेय जिज्ञासु व्यक्ति श्रीगुरुचरण में पपन्न हो जाय । गुरु कैसा होना चाहिये—शब्द ब्रह्म पर ब्रह्ममें निष्णात एव ब्रह्म उपशमा श्रय सम्पन्न ही गुरुहोगा । टीका । उत्तम श्रेय, व्रज, रागानुगीयव्रज भक्ति जिज्ञासु व्यक्ति, गुरु करण करे, गुरु कैसा होगा, शब्द ब्रह्म वेदादि शास्त्र में निष्णात, गुरु परम्परा से शास्त्राध्यायन एवं परि पूर्ण ज्ञानवान् होना आवश्यक है, अन्यथा संशय निरसन करने में गुरु असमर्थ होगा, परे ब्रह्मणि निष्णात—शब्द का अर्थ अपरोक्षानुभव में भी निष्णात होना आवश्यक होगा, अन्यथा वोध सञ्चार करने में गुरु असमर्थ होगा, परे ब्रह्मणि निष्णात का अर्थ को विशेष रूप से

१५ तथा श्रीकृष्णप्रेष्ठ-गुरुसंसर्गेणैव तद्भावोत्पत्तिः स्यात् नान्यथेति भावः।

अतएव श्रीभागवते ( ११।१७।२१ )

'आचार्य्यं मां विजानीयान्नावमन्येत कर्हिचित् ।

न मर्त्यबुद्ध्यासूयेत सर्व्वदेवमयो गुरुः ।।' इति विचार्य्यते

( भ० र० सि० पूर्व्व-वि० साधनभक्ति० ) 'नित्यसिद्धस्य भावस्य प्राकट्यं हृदि साध्यता' इति नित्यसिद्धस्य भावस्य साधक-भक्तानां हृदि स्वयं प्रकटनं साध्यता; ( भ० र० सि० १।२।२९२ )— 'तद्भावादिमाधुर्य्ये श्रुते धीर्यदपेक्षते' इत्याश्रयिष्यमाणे गुरौ तद्भावमाधुर्य्यं सुतरां दृश्यते । एतादृशे श्रीकृष्णरूपगुरौ दृष्टे सति लोभः स्वतः एव उत्पद्यते; यथा ( तत्रैव १।२।२४१ )—

दृगम्भोभिर्धौतः पुलकपटली-मण्डिततनुः

स्खलन्नन्तःफुल्लो दधदतिपृथुं वेपथुमपि ।

दृशोः कक्षां यावन्मम स पुरुषः कोऽप्युपययौ

न जाने किं तावन्मतिरिह गृहे नाभिरमते ।।

कहते हैं, उपशमाश्रय उपासनारत होना भी आवश्यक होगा श्रीमद् उद्धव के प्रति श्रीभगवान ने कहा है, ११०।१२, प्रथम काष्ठ आचार्य है, द्वितीय शिष्य, उनका प्रवचन ही मन्थन काष्ठ है, विद्या शास्त्रोत्थ ज्ञान, काष्ठ द्वयकी सन्धि में जिस प्रकार अग्नि रहती है, उस प्रकार जानना होगा श्रुति आचार्य्य पूर्वरूप है, शिष्य उत्तर रूप है, इत्यादि उत्तमा वस्तु भक्ति है, उसको जानने के लिए आचरण शील शिक्षित अभिज्ञ गुरु वरण करे, जिन्होंने आचार्य्य वरण किया है, वह तत्त्व को जान पायेगा । व्यर्थ तर्क से मति को नष्ट न करो ।।१५।। उस प्रकार श्रीकृष्ण प्रेष्ठगुरु के संसर्ग से ही रागानुगीय व्रज भक्ति की उत्पत्ति होगी, अन्यथा नहीं अतएव श्रीभा० ११।१७।२७ में कहा है, मुझ को ही आचार्य जानना, कभी भी अवमानना न करे, मरण धर्म को देखकर उनके प्रति असूया दोषारोपण न करे, गुरु सर्वमय होते

१६   अथ श्रवणगुरु-भजनशिक्षागुर्वोः प्रायिकमेकत्वमिति; यथा तथैवाह श्रीभक्तिसन्दर्भे ( २०६ अनु० ); ( श्रीभा० ११।३।२१ )—

'तत्र भागवतान् धर्मान् शिक्षेद्गुर्वात्मदैवतः।
अमाययानुवृत्त्या यैस्तुष्येदात्मात्मदो हरिः॥' इति।

तत्रैव भगवान् देवः॥

१७   शिक्षागुरोरप्यावश्यकत्वमाह—श्रीदशमे (१०।८७।३३ )—

विजितहृषीकवायुभिरदान्तमनस्तुरगं
य इह यतन्ति यन्तुमतिलोलमुपायखिदः।
व्यसनशतान्विताः समवहाय गुरोश्चरणं
वणिज इवाज सन्त्यकृतकर्णधरा जलधौ॥

हैं। इसका विचार करते हैं—भ० र० सि० पूर्व वि० साधनभक्ति नित्य सिद्धस्य भावस्य प्राकट्यं हृदि साध्यता, नित्य सिद्ध परिकरों का जो भाव उसका साधक भक्त के हृदय में स्वयं प्रकट होना ही साध्यता है। अतएव जिस को गुरु करना है, उस में अवश्य देखें कि शुद्ध व्रजभक्ति भाव माधुर्य है या नहीं, गुरु में रागानुगीय भक्ति होना परम आवश्यक है, गुरु यदि योगी होता है, अश्रु कम्पादि का अभिनय करता है, धर्म का व्यापार करता है, एवं चरित्र हीन है, तो उसे गुरु नहीं करना चाहिये, उस से कृष्ण भक्ति नहीं मिलेगी सांसारिक घटिया वस्तु मिलेगी, इस प्रकार श्री कृष्ण रूप गुरु के आनुगत्य से स्वतः ही व्रज भक्ति के प्रति लोभ उत्पन्न होताहै। भक्ति रसामृतसिन्धु १।२।२३१ में उक्त है—नयन जल से धौत पुलकसमूह से कण्टकित देह, प्रतिपद में स्खलित वाक्य एवं चरण, अन्तर में आनन्दातिशय युक्त, शरीर में विपरीत कम्पान्वित किसी एक व्यक्ति को जवसे मैंने देखाहै, मैं नहीं जानता, तवसे क्यों मेरामन घरमें नहीं लगता है। यहाँपर जव देखा इस से स्वल्प सम्वन्ध होता है, मन क्यों नहीं लगता है इस से घर के प्रति महत्त्व हीनता; एवं घर में अनासक्ति पद से भावोत्पत्ति सूचित हुई है।

टीका—'ये गुरोश्चरणं समवहायानाश्रित्यातिलोलमदान्तमदमितं मन एव तुरगं दुर्गमसाम्याद् विजितैरिन्द्रियैः प्राणैश्च यन्तु भगवदन्तमु खीकर्त्तुं प्रयतन्ते, ते उपायखिदस्तेषु तेषूपायेषु खिद्यन्ते; अतो व्यसनशतान्विता भवन्ति । अतएव इह संसारसमुद्रे सन्ति तिष्ठन्ति दुःखमेव प्राप्नुवन्तीत्यर्थः;जलधौ अकृतकर्णधरा अस्वीकृत-नाविका वणिजो यथा तद्वत् ।'

१८ श्रीगुरुप्रदर्शित-भगवद्भक्तिभजन-प्रकारेण भगवद्धर्म्मज्ञाने सति तत्कृपया व्यसनानभिभूतौ च सत्यां शीघ्रमेव मनो निश्चलं भवतीति भावः।

अतो ब्रह्मवैवर्त्ते—

'गुरुभक्त्या स मिलति स्मरणात् सेव्यते बुधैः ।
मिलितोऽपि न लभ्येत जीवैरहमिका-परैः ॥

१६ श्रवण गुरु एवं भजन शिक्षा गुरु प्रायकर एक ही है, गुरु का कार्य ही शिक्षा देना । अशिक्षित गुरु नहीं होता है। भक्ति सन्दर्भ २०६ अनु में उक्त भा० ११।३।२२ इस प्रकार है, उक्त श्रीगुरु देव निज हितकारी परम वान्धव परमाराध्य, श्रीहरिके स्वरूपहैं,निरन्तर निष्कपट से उनके आनुगत्य करके भागवत धर्मकी शिक्षाकरे, जिस के अनुष्ठान से आत्मप्रद हरि सन्तुष्ट होते हैं वह ही भागवत धर्म है, गुरु में ही भगवान् देव रूप में नित्य बिराजित होते हैं ।

१७ शिक्षा गुरु की भी आवश्यकता है, अर्थात् शिक्षा ग्रहण अवश्यक है । श्रीभाग० में १०।८७। ७७ इन्द्रिय एवं प्राण वायु को संयमित करके भी जो लोक गुरु चरण को छोड़कर आत्म तत्त्व प्राप्ति के लिए प्रयत्न करता है वह नाविक विहीन समुद्र की नाव में चढ़ने की अवस्था की प्राप्ति करता है, जो जन गुरु चरणाश्रय न करके अति चञ्चल मन को प्राण वायु, इन्द्रिय संयम के द्वारा भगवद् अन्तर्मुखी मनको करने का प्रयत्न करता है, वह उपाय हीन हो जाता है, और अनन्त विपत्ति में पड़ जाता है, अतएव संसार समुद्र

अतएव नारदपञ्चरात्रे—

तत् पूजनस्यावश्यकत्वमुक्तम्; यथा—

'वैष्णवज्ञानवक्तारं यो विद्याद्‌विष्णुवद्‌गुरुम् ।
पूजयेद्‌वाङ् मनःकायैः स शास्त्रज्ञः स वैष्णवः ।।
श्लोकपादस्य वक्तापिः यः पूज्यः स सदैव हि ।
किं पुनर्भगवद्‌विष्णोः स्वरूपं वितनोति यः ।।' इत्यादि ।

१९ तस्मात् श्रीगुरोरावश्यकत्वम्, तच्चरणावलम्बनं विना प्रेमोत्पत्तिर्न भवतीति निष्कर्षार्थः ।

श्रीरघुनाथदासगोस्वामिपादेनोक्त-'मनःशिक्षायां' (२) यथा—

'शचीसूनं नन्दीश्वरपति-सुतत्वे गुरुवरं
मुकुन्दप्रेष्ठत्वे स्मर' इत्यादि ।

कालिकापुराणे श्यामारहस्ये—

में दुःख ही प्राप्त करता है, वणिक जिस प्रकार समुद्र की नाव में नाविक के विना यात्रा करने पर समस्या में पड़ता है, उस प्रकार जानना होगा । १८। श्रीगुरु प्रदर्शित भगवद् भक्ति भजन प्रकार से भगवद् धर्मज्ञान होने पर उनकी कृपा से विपत्ति से वह अभिभूत नहीं होता है, और उसका मन अति सत्त्वर निश्चल होता है, । ब्रह्म वैवर्त्ते में लिखा है, गुरु भक्ति से ही तत्व वोध होता है, अत बुधगण वैसा ही कहते हैं। जिस की अहमिका है, वह जीव तत्त्व वस्तु को प्राप्त करके सुखी नहीं होता है। नारद पञ्चरात्र में कहा है कि गुंरुका पूजन करना आवश्यक है, जो जन वैष्णवधर्म उपदेष्टा गुरु को विष्णु के समान् देखता है, काय वाक्य मन के द्वारा पूजा भी करता है, वह शास्त्रज्ञ वैष्णव होता है। श्लोक पाद के वक्ता को भी सदा ही पूजा करें, और जो जन भगवद् विष्णु का स्वरूप दान करता है उनका पूजन तो सवर्था आवश्यक है।

१९ अतएव श्रीगुरुदेव की आवश्यकता है, उनके चरणावलम्वन के विना प्रेमोत्पत्ति नहीं होगी, यह ही सारार्थ है, श्रीरघुनाथ दास

'मधुलोभाद्यथा भृङ्गः पुष्पात् पुष्पान्तरं व्रजेत् ।
ज्ञानलोभात्तथा शिष्यो गुरोर्गुर्व्वन्तरं व्रजेत् ॥'

स्तवावल्याञ्च ( मन:शिक्षा ३, १२ )—

यदीच्छेरावासं व्रजभुवि सरागं प्रतिजनु-
र्युवद्वन्द्वं तच्चेत् परिचरितुमारादभिलषेः ।
स्वरूपं श्रीरूपं सगणमिह तस्याग्रजमपि
स्फुटं प्रेम्णा नित्यं स्मर नम तदा त्वं शृणु मनः ॥'

'स्वयूथ-श्रीरूपानुग इह भवन् गोकुलवने
जनो राधाकृष्णातुलभजनरत्नं स लभते ॥'

( विलापकुसुमाञ्जली १४ )—

'यदवधि मम काचिन्मञ्जरी रूपपूर्व्वा
व्रजभुवि वत नेत्रद्वन्द्वदीप्तिः चकार ।
तदवधि तव वृन्दारण्यराज्ञि प्रकामं
चरणकमललाक्षा-संदिदृक्षा ममाभूत् ॥ इति ।

गोस्वामी कृत मन: शिक्षामें उक्त है—महाप्रभु को श्रीनन्दनन्दन रूप में एवंश्रीगुरुदेव को मुकुन्द प्रेष्ठ रूप में स्मरण करे ।

कलिका पुराण के श्यामारहस्य में उक्त है— मधु के लोभ से भृङ्ग जिस प्रकार एक पुष्प से पुष्पान्तर को जाता है, ज्ञान प्राप्त करने के लिए शिष्य भी एक गुरु से दूसरे गुरु के निकट गमन करे, स्तवादली में उक्त है ( मनशिक्षा ३, १२ ) व्रज में अनुराग के साथ यदि प्रति जन्म वास करने की इच्छा हो, और श्री राधाकृष्ण की परिचर्या करने का यदि अभिलास हो, तव स्वरूप श्रीरूप सनातन प्रभृति को परिकरके साथ प्रीति से नित्य स्मरण करो एवं नमस्कार करो। निजयूथ के साथ श्रीरूपके आनुगत्य से गोकुल वनमें निवास करने से ही श्रीराधा कृष्ण के भजनरत्न की प्राप्ति उसकी होगी। विलाप कुसुमाञ्जलिमें उक्तहै, जवसे मैंने व्रजभूमि में श्रीरूपमञ्जरी को नेत्र से देखा है। तव से ही श्रीवृन्दावनाधिराज्ञी श्रीराधा के चरणकमल की लाक्षा दर्शन की इच्छा मेरी हुई।

२० अत एतादृशानुगत्यं विना श्रीनन्दनन्दनस्य तथाविध-स्वरूप-प्राप्तिर्न भवति; तत्रापि श्रीरूपानुगत्यं विना श्रीराधाकृष्णातुल भजनरत्नं न लभत इति निष्कर्षार्थः।

प्रसङ्गात् आचार्य्यलक्षणं यथा ( वायुपुराणे )—
'आचिनोति हि शास्त्रार्थान् स्वाचारैः स्थापयत्यपि।
स्वयमाचरते यस्मात्तस्मादाचार्य्य उच्यते ॥'

यथा विष्णुस्मृतौ—
' परिचर्य्या-यशोलाभलिप्सुः शिष्याद्गुरु र्नहि।
कृपासिन्धुः सुसंपूर्णः सर्व्वसत्त्वोपकारकः ॥
निस्पृहः सर्वतः सिद्धः सर्वविद्याविशारदः।
सर्वसंशय-संछेत्ताऽलालसो गुरुरादृतः ।'

( गौतमीये )—
न जपो नार्चनं नैव ध्यानं नापि विधिक्रमः।
केवलं सततं कृष्णचरणाम्भोजभाविनाम् ॥' इति।

२० अतएव इस प्रकार आनुगत्य के विना श्रीनन्दनन्दन के उस प्रकार स्वरूप की प्राप्ति नहीं होगी। प्रसङ्ग से आचार्य्य लक्षण को कहते हैं—वायु पुराण में उक्त है—शास्त्र समूह का यथावत् अध्ययन, एवं तदनुरूप आचरण के द्वारा धर्म स्थापन कारी को आचार्य कहते हैं। विष्णुस्मृति में उक्त है— शिष्य से परिचर्या एवं यशोलाभ की आशा रखने वाला व्यक्ति गुरुनहि हो सकता है, जो जन कृपासिन्धु सुसम्पूर्ण, सर्व प्राणी हितकारी, सव प्रकार से निष्पृह सिद्धः, सर्व विद्या विशारद, सर्व संशय निरास कारी अलोभी गुरु को आदर प्रदान करे, गौतमीय में उक्त है—जप अर्च्चन ध्यान विधिक्रम की आवश्यकता उनको नहीं है, जो निरन्तर श्रीकृष्ण के चरण की चिन्ता में अपने को लीनकर दिया है। और भी सव नायिका के मध्यानायिका श्रेष्ठतमा है प्रायकर सकल रसोत्कर्ष मध्या में ही है। इस प्रकार मध्य कैशोर ही श्रेष्ठतम है, यह तो तृतीय कक्षा में लिखा

किञ्च,—

‘ नायिकानाञ्च सर्व्वासां मध्या श्रेष्ठतमा मता ।

प्राय:-सर्व्वरसोत्कर्षो मध्यायामेव युज्यते ।।’ इत्यादि ।

एवं मध्यकैशोर: श्रेष्ठतमः एतत्तु पूर्व्वं ( तृतीयकक्षायां) दर्शितमेव । किञ्च, त्वदीयता—मदीयतामध्ययोर्मध्ये मदीयता श्रेष्ठा ।

इयं श्रीगौरगोविन्द—लीला-दशमकक्षिका

सर्व्वश्रेष्ठतमा ज्ञेया गोप्या त्वनधिकारिणि ।।

तथाहि—

सेयं श्रीकृष्णलीला च श्रेष्ठा सर्व्वप्रदायिका ।

न दातव्या न प्रकाश्या जने त्वनधिकारिणि ।

तथाहि ( पाद्मे )—

‘ माञ्च गोपय येन स्यात् सृष्टिरेषोत्तरोत्तरा’ इति ।

श्रीभागवते प्रथमस्कन्धे ( १।१।८ )—‘ ब्रूयु: स्निग्धस्य शिष्यस्य गुरवो गुह्यमप्युत’ इति; बृहद्गौतमीये च ।।

ही है । और भी त्वदीयतामदीयतामय के मध्य में मदीयता ही श्रेष्ठा है, यह श्रीगौरगोविन्दलीलादशम कक्षा सर्व श्रेष्ठतमा है अनधिकारि को प्रदान न करे। प्रकाश भी न करे। पद्म पुराण में कथित है—मुझ को गोपन करो, जिससे यह सृष्टि उत्तर उत्तर वढ़ती रहे। भागवत के प्रथम स्कन्ध में १।१।८ में उक्त है गुरु के प्रति ममता रखने वाले शिष्य को गोपन सिद्धान्त भी कहे। बृहद् गौत मीय में भी उस प्रकार लेख है,

इति श्रीमद् राधागोविन्ददेव सेवाधिपति श्रीहरिदास गोस्वामि चरणानुजीवि श्रीराधाकृष्णदासोदीरिता भक्ति साधन दीपिका दशम कक्षा सम्पूर्णा ।

**श्रीसाधनदीपिकासमाप्ता ।।**

## श्री श्रीमद् गुरवे समर्पितमस्तु ।।

श्रीगान्धर्वा प्रसादेन हरिदासेन धीमता

पूरिता विमलाभाषा सज्जनानाञ्च तुष्टये ।।

## ॥ श्रीलराधागदाधराष्टकम् ॥

श्रीलवृन्दावनाधीशास्वरूपं सद्गुणाश्रयम्
पण्डिताख्यं प्रभुवरं वन्दे राधागदाधरम् ।१
श्रीगौराङ्गमहाभावकारकं प्रेमवर्द्धकम् ।
महाभावस्वरूपं तं वन्दे राधागदाधरम् ।२
यदास्यपद्म संदृश्य श्रीप्रभोर्व्रजभावना ।
श्रीमद्रासरसाधारं वन्दे राधागदाधरम् ।३
श्रीगौराङ्ग प्रेमसारं विद्यानिधि दयास्पदम् ।
माधवानन्दनं धीरं तं वन्दे राधिकाभिधम् ।४
श्रीशचीहृदयानन्दप्राणसर्वस्वसम्पुटम् ।
श्रीलप्रेमस्वरूपाख्यं तं वन्दे राधिकाभिधम् ।।५
श्रीनवद्वीपलीलाब्धौ शैशवे चापलंमहत् ।
कृतं येन महासौख्यात्तं वन्दे राधिकाभिधम् ।।६
नीलाचलविहारिश्रीगौराङ्गेन समंकृतम् ।।७
प्रेमाम्बुदसुधा येन तं वन्दे राधिकाभिधम् ।।७
गौराङ्गेनार्पितं गोपीनाथ पादाब्ज सेवने
नीलशैले सदावासं तं वन्दे राधिकाभिधम् ।।८
श्रीराधाभिधया गदाधर इति ख्यातंमहीमण्डले ।
यत् प्रेमाब्धिकणालवेन सकलं मग्नं जगत्सर्वदा
मत् सर्वस्वपदाम्बुजं प्रभुवरं तं लोकनाथस्य मे
कृष्णप्रेमसुधाश्रयाङ्घ्रि युगलं श्रीपण्डिताख्यंभजे ।।९

इति श्रीलभूगर्भ गोस्वामि भ्रातुष्पुत्र-
श्रीलोकनाथ गोस्वामि विरचितं
श्रीराधागदाधराष्टकं समाप्तम्

१ **वेदान्तदर्शनम् "भागवतभाष्येपेतम्"** महर्षि श्रीकृष्ण द्वैपायन व्यासदेव प्रणीत, ब्रह्मसूत्रों के अकृत्रिम अर्थ स्वरूप श्रीमद्भागवत के पद्यों के द्वारा सूत्रार्थों का समन्वय इसमें मनोरम रूप में विद्यमान है। १०५.००

२ **श्रीनृसिंह चतुर्दशी** भक्ताह्लादकारी श्रीनृसिंहदेवकी महिमा, व्रतविधानात्मक अपूर्व ग्रन्थ। ४.००

३ **श्रीसाधनामृतचन्द्रिका** गोवर्द्धन निवासी सिद्ध श्रीकृष्ण दास बाबा विरचित रागानुगीय वैष्णव पद्धति। १०.००

४ **श्रीसाधनामृतचन्द्रिका (बङ्गला पयार)** गोवर्द्धन निवासी सिद्ध श्रीकृष्णदास बाबा के द्वारा सुललित छन्दोवद्ध ग्रन्थ। १०.००

५ **श्रीगौरगोविन्दार्चन पद्धति** गोवर्द्धन निवासी सिद्ध श्रीकृष्णदास बाबा विरचित सपरिकर श्रीनन्दनन्द श्रीभानुनन्दिनी के स्वरूप निर्णयात्मक ग्रन्थ। १०.००

६ **श्रीराधाकृष्णार्चन दीपिका** श्रीजीवगोस्वामिपाद कृत श्रीराधासम्वलित श्रीकृष्ण पूजन प्रतिपादन का सर्वादि ग्रन्थ। १०.००

७ **श्रीगोविन्दलीलामृत (मूल, टीका, अनुवाद सह–2–4सर्ग)** श्रीकृष्णदास कविराज कृत रागानुगीय स्मराणाङ्ग निर्वाहक ग्रन्थ। २०१.००

८ **ऐश्वर्यकादम्बिनी (मूल अनुवाद)** श्रीवलदेव विद्या-भूषण कृत भागवतीय श्रीकृष्णलीला का क्रमबद्ध ऐश्वर्य मण्डित वर्णन, श्रीवृषभानु महाराज, एवं भानुनन्दिनी मनोरम वर्णन इसमें है। १०.००

९ **संकल्प कल्पद्रुम (सटीक, सानुवाद)** श्रीविश्वनाथ चक्रवर्त्तिपाद कृत स्वारसिकी उपासनाका प्रमुख ग्रन्थ। १०.००

१० **चतुःश्लोकी भाष्यम् (सानुवाद)** श्रीनिवासाचार्यप्रभु कृत चतःश्लोकी भागवत की स्वारसिकी व्याख्या। १०.००

११ **श्रीकृष्णभजनामृत (सानुवाद)** श्रीनरहरिसरकार ठक्कुर कृत अपूर्व धर्मीय संविधानात्मक ग्रन्थ। १०.००

१२ **श्रीप्रेमसम्पुट (मूल, टीका, अनुवादसह)** श्रीविश्वनाथचक्रवर्त्ती कृत भागवतीय रास रहस्यवर्णनात्मक हृदयग्राही ग्रन्थ १०.००

१३ **भगवद्भक्तिसार समुच्चय (सानुवाद)** श्रीलोकानन्दाचार्य प्रणीत भक्तिरहस्य परिवेषक अनुपम ग्रन्थ। १०.००

१४ **भगवद्भक्तिसार समुच्चय (सानुवाद बङ्गला)** श्रीलोकानन्दाचार्य प्रणीत, भक्तिरहस्य प्रकाशक मनोहर ग्रन्थ। १०.००

१५ **व्रजरीति चिन्तामणि (मूल, टीका, अनुवाद)** श्रीविश्वनाथचक्रवर्त्ति ठक्कुर कृत व्रजसंस्कृति वर्णनात्मक अत्युत्कृष्ट ग्रन्थ। २५.००

१६ **श्री गोविन्दवृन्दावनम् (सानुवाद)** बृहद् गौतमीय तन्त्रान्तर्गत श्रीराधारहस्य परिवेषक सर्वोत्कृष्ट ग्रन्थ। ५.००

१७ **श्रीराधारस सुधानिधि (मूल बङ्गला)** श्रीप्रवोधानन्द सरस्वतीपादकृत श्रीराधा महिमा प्रतिपादक अनुपमेय ग्रन्थ। ५.००

१८ **श्रीराधारस सुधानिधि (मूल हिन्दी)** १०.००

१६ **श्रीकृष्णभक्ति रत्नप्रकाश (सानुवाद)** श्रीराघव पण्डित रचित श्रीकृष्णभक्ति प्रकाशक अनुपम ग्रन्थ। २०.००

२० **हरिभक्तिसार संग्रह (सानुवाद)** श्रीपुरुषोत्तमशर्म प्रणीत श्रीभागवतीय क्रमबद्ध भक्ति सिद्धान्त संग्रहात्मक ग्रन्थ। ५१.००

२१ **श्रुतिस्तुति व्याख्या (अन्वय, अनुवाद)** श्रीपाद प्रबोधानन्द सरस्वती कृत वेदस्तुति की व्रजलीलात्मक व्याख्या। ४०.००

२२ **श्रीहरेकृष्ण महामन्त्र "अष्टोत्तरशतसंख्यक"** १.००

२३ **धर्मसंग्रह (सानुवाद)** श्रीवेदव्यास कृत धर्मसंग्रह श्रीमद्भागवतीय ७म स्कन्ध के अन्तिम ११, १२, १३, १४, १५ अध्याओं का वर्णन। २०.००

२४ **श्रीचैतन्य सूक्ति सुधाकर** श्रीचैतन्यचरितामृत, तथा श्रीचैतन्यभागवतीय सूक्तियों का संग्रह। १०.००

२५ **सनत् कुमार संहिता (सानुवाद)** व्रजीय रागानुगा उपासना प्रतिपादक सुप्राचीन ग्रन्थ। १०.००

※ प्रकाशित ग्रन्थ संख्या ३२

सहयोग राशि- 51/- रूपये